ा निबन्ध-संग्रह

ृतीय भाग के सम्बन्ध मे—

भारतीय पुरातत्व और इति-
ार्य तथा गवेषक की भाँति
श्रद्धा और आदर की दृष्टि से
ओझाजी के ये कई निबन्ध-आज
कई वर्षों पूर्व इन निबन्धो का
य पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ
इनमे से कई निबन्ध ऐसे भी हैं
भी प्रकाशित नही हुए हैं।
ाक रूप में प्रकाश में आने
नो, विद्यार्थियो और शोध-खोज
त बडी सहायता तो मिलेगी
न ऐतिहासिक जानकारी भी

ओझा निबन्ध-संग्रह

प्रथम भाग

आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर



[साहित्य-संस्थान, रा० वि० विद्यापीठ के इतिहास और पुरातत्व-
विभाग के तत्वावधान में सम्पादित]

लेखक

स्व० डॉ० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा



१९५४ ई०
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रकाशकः—
अध्यक्ष, साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण, मार्च १९५४
मूल्य ५)

मुद्रक—
ज० ना० मिटे
राजस्थान टाइम्स, लिमिटेड
अजमेर

प्रकाशकीय निवेदन

राजस्थान के प्राचीन साहित्य, लोकसाहित्य, इतिहास एव कला-विषयक शोध कार्य को राजस्थान के सास्कृतिक पुनरुत्थान के लिये अत्यावश्यक और सर्वथा-अनिवार्य समझ कर राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने वि० स० १९९१ में "साहित्य सस्थान" की स्थापना की थी। सस्था की योजनानुसार साहित्य-सस्थान के अन्तर्गत कई महत्वपूर्ण प्रवृतियाँ आरम्भ की गई थीं, जो अब बहुत कुछ विकसित और विस्तृत हो चुकी हैं, जैसे —

१ राजस्थान मे हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थो की खोज, २ राजस्थान मे सस्कृत के हस्त लिखित ग्रन्थो की खोज, ३ चारण-साहित्य-सग्रह, ४ लोक साहित्य-सग्रह, ५ राजस्थानी कहावत माला, ६ महाकवि सूर्यमल आसन, ७. स्व० डॉक्टर गौरीशकर हीराचन्द ओझा आसन, ८. पृथ्वीराज रासौ सम्पादन कार्य, ९ अध्ययन गृह तथा सग्रहालय, १० इतिहास एव पुरातत्व कार्य, ११ शोध-पत्रिका, एव १२ राजस्थान साहित्य आदि।

साहित्य सस्थान की उपर्युक्त विभिन्न प्रवृत्तियों में 'इतिहास एव पुरातत्व कार्य' भी एक मुख्य और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इस प्रवत्ति विशेष के द्वारा राजस्थान और भारत की पुरातन इतिहास-सामग्री की शोध-खोज करना, तथा इतिहास का कार्य करने वालो को यथा-सम्भव साधन-सुविधायें देकर आगे बढने के लिये प्रोत्साहित करने का नम्र किन्तु अत्यावश्यक प्रयत्न किया जाता है। स्व० डॉक्टर गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, साहित्य-सस्थान के काम को तथा उसके उज्वल भविष्य को देखकर अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित निबन्ध सम्पादन और प्रकाशन के लिए प्रदान कर दिये थे। स्व० डॉक्टर ओझाजी भारतीय इतिहासकारो और पुरातत्व-वेत्ताओ में प्रमुख और अग्रणी विद्वान् थे। राजस्थान की अन्धकाराच्छन्न ऐतिहासिक सामग्री को सर्व प्रथम व्यापक रूप से प्रकाश में लाने का श्रेय स्व० डा० ओझाजी को ही प्राप्त है। इसी प्रकार भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में भी स्व० डॉक्टर ओझा जी ने जो महत्वपूर्ण देन दी है, वह कभी भुलाई नही जा सकती।

स्व० डॉक्टर ओझाजी ने वर्षो के परिश्रम से तैयार किये गये अपने ये निबन्ध जिस आशा और विश्वास के साथ 'साहित्य सस्थान' को दे दिये थे, उसके अनुकूल-सस्थान कितना साबित होगा, यह तो भविष्य ही बता सकेगा, लेकिन इतना अवश्य हम यहाँ कह सकते हैं कि साहित्य सस्थान की जो

योजना और कल्पना है यदि साधन-सुविधाओ के साथ विद्वानो का सहयोग जैसा आज मिल रहा है, आगे भी मिलता रहा तो निश्चय ही हम बहुत कुछ कर गुजरने की स्थिति मे होगे। स्व० डॉक्टर ओझा जी के इन निबन्धो के सम्पादन कार्य मे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉक्टर रमाशकरजी, अध्यक्ष इतिहास विभाग काशी विश्वविद्यालय ने हमारे विभागीय सम्पादक का मार्ग प्रदर्शन कर जो उपयोगी और महत्वपूर्ण सुझाव दिये, उसके लिए सस्थान की ओर से मै उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, इसी प्रकार-महाराजकुमार डॉक्टर रघुवीरसिंह सीतामऊ और डॉक्टर दशरथ शर्मा दिल्ली ने समय समय पर जो महत्वपूर्ण सहायता दी है, उसके लिये मै उनका भी अत्यन्त आभारी हूँ। यद्यपि केवल आभार प्रदर्शित कर—उक्त दोनो विद्वान् महोदयो की साहित्य सस्थान के विकास कार्य में की गई–और की जा रही सेवा के मूल्य को नही आका जा सकता है, और सच तो यह है कि श्री महाराजकुमार और श्री दशरथजी शर्मा साहित्य-सस्थान, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ के उन प्रमुख विद्वान्–स्तम्भो मे से प्रमुख हैं, जिनके बिना 'सस्थान' का काम चल ही नही सकता हैं। इसलिये इन दोनो विद्वान महोदयो के प्रति आभार प्रदर्शित करना केवल रस्म अदायगी मात्र ही है।

"ओझा निबन्ध-सग्रह" के सम्पादन और प्रकाशन कार्य में 'साहित्य-सस्थान के इतिहास एव पुरातत्व कार्य के सयोजक श्री नाथूलालजी व्यास को जितना परिश्रम करना पडा है, उतना अन्य किसी को नही। श्री व्यास ने वर्षों तक स्व० डॉक्टर गौरीशकर जी ओझा के पास रहकर उनके काम में हाथ बटाया है इसलिये ये श्री ओझाजी की दृष्टि और मति को जितनी सही रूप मे समझ सकते है उतनी शायद ही अन्य कोई समझता हो। 'साहित्य-सस्थान' के इतिहास और पुरातत्व के काम को जमाने का प्रयत्न श्री व्यासजी का ही है। अत उनको उनके परिश्रम के लिये धन्यवाद देकर या आभार प्रदर्शित कर उनकी सेवा के मूल्य को कम करने की मेरी इच्छा नही है। श्री व्यासजी का तो यह अपना कार्य ही है।

प्रस्तुत निबन्ध-सग्रह का प्रकाशन काफी समय पूर्व कर दिया जाना चाहिये था, परन्तु सस्था की अपनी कठिनाइयो के कारण आज से पूर्व नही हो सका, और यदि अभी भी राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, के पीठ मन्त्री श्री भगवतीलाल भट्ट ने राजस्थान-सरकार मे आवेदन-निवेदन और दौड धूप कर प्रकाशन सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया होता तो न जाने कब प्रस्तुत 'निबन्ध-सग्रह' प्रकाशित होता ? श्री भट्टजी के परिश्रम से ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका है।

अन्त में मै राजस्थान सरकार, उसके मन्त्रीगण तथा शिक्षा-विभाग के अधिकारियो के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होने "ओझा निबन्ध-सग्रह" के प्रकाशन कार्य के लिये आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहन पूर्ण सहयोग दिया है। राजस्थान और भारत मे ऐतिहासिक अनुसधान के लिये काफी गुजायश और अनिवार्य आवश्यकता है। यदि प्रान्तीय सरकारो का प्रोत्साहन पूर्ण उदार सहयोग निरन्तर मिलता रहे तो इतिहास की महत्वपूर्ण कमी आसानी से दूर की जा सकती है। ऐतिहासिक अनुसधान के काम गम्भीर और गवेषणापूर्ण तो हैं ही, परन्तु अधिक व्यय और श्रमसाध्य भी है, इस कारण बिना सरकारी सहायता के ऐसे काम अधिक परिणाम कारी नही हो सकते हैं। आशा हैं, राजस्थान-सरकार और उसका शिक्षा सचिवालय ऐसी ऐतिहासिक सामग्री की शोध-खोज और प्रकाशन के लिये आवश्यक सहयोग और सहायता देते रहने में किसी प्रकार के सकोच का अनुभव नही करेंगे।

साहित्य-सस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के सभी शोध खोज के विद्वानो और विचारको का में उनके सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हूँ। यह तो उन्ही का काम है, उन्ही के लिये है। अत उन्हे ही करना है।

साहि-य-सस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर (राजस्थान)

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष —
साहित्य-सस्थान



प्राक्कथन

स्वर्गीय विद्या-वाचस्पति श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा के महत्पूर्ण निबन्धो का यह विस्तृत "ओझा-निबन्ध-सग्रह" राजस्थान विश्व विद्यापीठ, साहित्य-सस्थान, उदयपुर का एक महत्वपूर्ण एव अनूठा प्रकाशन साहस है, स्वर्गीय ओझाजी ने अपने स्वर्गवास के पूर्व अपने समस्त निबन्ध साहित्य-सस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को भेंट दे दिये थे, और तभी से इस सग्रह के प्रकाशन की आतुर कामना बनी हुई थी, ओझाजी ने अपने समस्त निबन्ध राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को इसलिये दिये थे कि वे इस सस्था को अपने ज्ञान की इस विरासत के लिए जहा पात्र मानते थे, वहाँ इनको इस बात की खुशी थी—कि उदयपुर मे एक जन प्रयत्न साध्य विश्व-विद्यापीठ की स्थापना तथा विकास किया जा रहा है।

निस्सन्देह "ओझा निबन्ध-सग्रह" के प्रकाशन में आवश्यकता मे अधिक देर हुई है। इसके कई कारण हैं, सबसे बडा कारण इसके सम्पादन क्रम का है, यह उचित ही था कि ओझाजी के समस्त लेखो के सम्पादन मे भारत-प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ताओ का सहयोग प्राप्त किया जाय, यही अभिलाषा और प्रयत्न इस ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन की देरी का भी कारण बनी, यह आभार मानना होगा कि ओझाजी के सुपुत्र प्रोफेसर श्री रामेश्वरजी ने हमारी इस, समीचीन कठिनाइयो का अनुभव किया, और आज दिन तक धैर्य्य रखा।

ओझाजी राजपूताना के इतिहास के एक भीमकाय अग्रणी थे, धुरन्धर तो वे थे ही, परन्तु राजपूताना की ऐतिहासिक सघर्ष—जर्जर मानवता के शताब्दियो तक के घटना, क्रम के एक व्यासकार थे, राजपूताने के अनेक ख्यात राज्य-वशो-उसकी बिखरी एव अनेक रण भूमियो के ओझाजी विशिष्ट ज्ञाता थे, अद्वितीय इतिहास क्षेत्रज्ञ ओझाजी थे—इसमें किसे सन्देह हो सकता है ? इन सबके उपरान्त ओझाजी पनघटो, मन्दिरो, धर्मशालाओ, खण्डहरो, गढो, किलो, और विजन स्थानो के मौन पाषण-शिलालेखो के महान् विद्यार्थी थे, भारत की प्राचीन लिपियाँ अपने सहज ही अनजान अर्थ उनके सामने मानो स्वय खोलकर रख देती थी, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने और रेकार्ड ओझाजी के लिये सहज पाठ्य थे, सच तो यह है इतिहास की प्रत्येक प्रकार की सामग्री ओझाजी की शिष्य थी, आचार्य गौरीशकर ओझा अपने इसी विशाल ज्ञान के कारण इतिहास के एक मानव-पर्यायवाची हो गये हैं।

यह सही है कि ओझाजी ने एक अग्रदूत की भांति इतिहास का प्रणयन किया हैं, वशावलियो, घटना-क्रमो और अन्य ऐतिहासिक सामग्रियो के आधार पर राजपूताना के राज्यवशो को सामने रखकर उस मतिमान ने राजपूताने के इतिहास का शिवाला खडा किया है, परन्तु यह ओझा-निबन्ध-सग्रह प्रमाणित कर देगा कि ओझाजी ने भारतीय-इतिहास की प्राचीन पगडण्डियो, खण्डहरो, ताम्र-पत्रो, और उनके विवादास्पद इतिहास-प्रसगो एव व्यक्तियो को अछूता नही छोडा है, परोक्षत ओझा ने भारतीय प्राचीन–एव मध्यकालीन इतिहास की कई मार्ग दिशायें खोली हैं, तथा कई प्रश्नो का उत्तर दिया है, एव कई कसौटियां और प्रसग-कायम किये हैं। "ओझा निबन्ध-सग्रह" के विषयो पर दृष्टिपात करते ही ऐसा प्रतीत होता हैं कि सूक्ष्म किन्तु विशाल इतिहास-नयन प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय-अतीत को एकाग्र होकर देख रहा है, रोमाञ्च और प्रेरणा इन लेखो से मिलती है, और भारतवर्ष की अतीत शताब्दियां अपने अनूठे, और अचूक व्यक्तियो को हमे आज वर्तमान जीवन के चित्रो की भांति भेंट देती है।

ओझा हमारे इतिहास का महान् ब्रह्मचारी है, और यही "ओझा-निबन्ध-सग्रह" का महत्व है।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ
पीठ-स्थविर अधिकरण
उदयपुर (राजस्थान)

जनार्दनराय नागर
पीठ-स्थविर,

विषय-सूची

———

स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का संक्षिप्त परिचय

स्व० डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा का जन्म वि० स० १९२० भाद्रपद सुक्ला २, को सिरोही प्रान्त के रोहेडा गांव में सहस्र औदिच्य जाति के हीराचन्दजी के घर में हुआ था, इनके चार पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए, इनकी पत्नी की गृह कुशलता ने इनके प्रारम्भिक आर्थिक सकट मय जीवन को व्यवस्थित कर दिया, प्रारम्भिक शिक्षा घर पर-और बादमे बम्बई मे शिक्षा प्राप्त की, वही इन्होने इतिहास, पुरातत्व तथा लिपि आदि का परिज्ञान प्राप्त किया। प्रचुरज्ञान उपलब्ध कर ये उदयपुर की ओर आये, और म० फतहसिहजी ने अपने राजकीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। इस समय तक इन्होने काफी शोध पूर्ण लेख लिखें। ई० स० १८९५ में विश्व की सर्व श्रेष्ठ भारतीय प्राचीन लिपिमाला का प्रथम सस्करण जब प्रकट हुआ, ओझाजी प्रथम कोटि के साहित्यिक गिने जाने लगे। ई० स० १९०८ में अजमेर के राजपूताना म्युजियम की स्थापना हुई, उसके ये अध्यक्ष बनाये गये और सन् ३८ तक कार्य करते रहे, इन्होने राजस्थान के तथा भारत के सभी प्राचीन स्थानो का भ्रमण किया। ई० स० १९०२ मे कर्नल टॉड के इतिहास का सम्पादन किया। १९०८ में सोलकियो का इतिहास लिखा, इसके बाद पृथ्वीराज विजय तथा कर्मचन्द वश सम्बन्धी पुस्तक का सम्पादन किया और ई० स० १९१८ मे प्राचीन लिपिमाला का वृहद् सस्करण भारतीय प्राचीन लिपिमाला का परिवर्धित सस्करण निकाला, उस पर अ० भा० हि० सा० सम्मेलन से मगलाप्रसाद पुरस्कार मिला। १९२० मे ना० प्र० पत्रिका के सम्पादक बनाये गये, सन् १९२३ से राजपूताना का इतिहास लिखने का कार्य शुरु किया, इन्होने उदयपुर, डूगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ, जोधपुर और बीकानेर राज्यो के इतिहास लिखें, मुहणोत नेणसी को ख्यात का सम्पादन किया और लगभग १५० पृष्ठो में शोध पूर्ण लेख लिखे, जो विद्यापीठ की ओर से पुस्तकाकार प्रकाशित किये जा रहे हैं।

सम्मान—ई० स० १९१४ में राय बहादुर का खिताब

,, १९२८ में महा महोपाध्याय की उपाधि

,, १९११ में दिल्ली दरबार में निमन्त्रित

,, १९२७ मे हि० सा० स० भरतपुर अधिवेशन तथा नडियाद में हुई गुजरात साहित्य सभा के सभापति

,, १९२८ मे हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद मे मध्यकालीन भारतीय सास्कृतियाँ पर तीन भाषण

,, १९३३ मे भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ से अभिनदित

,, १९३३ में ओरियन्टल कॉन्फ्रेस बडौदा मे इतिहास विभाग के अध्यक्ष

,, १९३७ में साहित्य वाचस्पति और वाचस्पति की पदवी

ई० स० १९३७ में काशी विश्वविद्यालय में डी० लिट् तथा आन्ध्र विश्व विद्यालय से पुरातत्व वेत्ता की मान्यता।

भारत के कई महात्माओ, राजाओ, नेताओ तथा विद्वानो के सम्पर्क मे रहे।

निधन वि० स० २००४ वैशाख वदि ११ को स्वग्राम रोहेडा।

———————



स्व० महामहोपाध्याय डॉ० श्री गौरीशङ्कर ओझा

ओझा निबंध संग्रह
पहला भाग
भूगोल सम्बन्धी वर्णन
१-भिन्न-भिन्न प्रदेशों के प्राचीन नाम आदि*
वंश-भास्कर तृतीय भाग की मध्य पीठिका से उद्धृत

(१) अङ्ग-

शक्ति सगम नामक तत्र में लिखा है—

॥ श्लोक ॥ वैद्यनाथ समारभ्य भुवनेशान्तगशिवे ।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्राया नहि दुष्यति ॥१॥

अर्थ—वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर तक है अत—जिसका, वहां तक, हे पार्वती ! वह अग नाम का देश यात्रा में दूषित नहीं है ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

* बूंदी के महाकवि मिश्रण चारण सूर्यमल रचित 'वशभास्कर' नामक ग्रंथ को शाहपुरा के सोदा-चारण-कवि वारहट कृष्णसिंह ने सम्पादित किया। उस समय वशभास्कर में उल्लिखित भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशो तथा अन्य देशो के प्राचीन नामो को पढ कर उनका परिचय देने की आवश्यकता जान पडी। वारहटजी ने श्री गौरीशकर हीराचन्द ओझा से जब कि वे उदयपुर में विक्टोरिया म्युजिअम के अध्यक्ष थे, आग्रह किया कि वे परिचयात्मक वर्णन तैयार करदें। तदनुसार ओझाजी ने विविध ग्रन्थो के आधार पर वशभास्कर में उल्लिखित भिन्न-भिन्न प्रदेशो के प्राचीन नामो आदि का परिचयात्मक उपरोक्त वर्णन तैयार कर वारहटजी के पास जोधपुर में भेज दिया, जहां पर वे वंशभास्कर का सम्पादन कार्य कर रहे थे। वारहटजी ने उसको वशभास्कर की तृतीय भाग की मध्यपीठिका में सधन्यवाद स्थान दिया और उक्त तृतीय भाग वि० स० १९५६ = ई० स० १८९९ में प्रताप प्रेस जोधपुर में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है, जो अप्राप्य है। इतिहास के विद्यार्थियों के लिये यह विवरण उपयोगी है अतएव उसको अविकल रूप मे उद्धृत किया गया है।

यह देश पूर्व दिशा में बगाल के पश्चिमी भाग भागलपुर के पास था, जिसकी राजधानी चम्पापुरी थी। अङ्ग वश के क्षत्रियो के निवास से देश का नाम अङ्ग हुआ।

(२) अटक—

पजाब की पश्चिमी सीमा पर अटक नाम का शहर है, जिसके नाम से अथवा अटक नदी के नाम से उसके समीप के प्रदेश का नाम पाया जाता है। [जाके (की) मन में अटक है, सो ही अटक रहा।]

(३) अनूप—

॥ श्लोक ॥ बव्हम्वुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्माऽऽमयान्विता।
देशोऽनूप इतिख्यात शास्त्रेषु च मनीषिभि ॥१॥

अर्थ—बहुत पानी, बहुत वृक्ष, वात-पित्त के रोगो से सहित होवे, उस देश को शास्त्र में बुद्धिमान् लोग अनूप देश कहते हैं।

पुराणो के अनुसार यह देश विंध्य-पर्वत के निकट और रघुवश के अनुसार नर्मदा नदी के उत्तरी तट के एक देश का नाम होना चाहिये जिसकी राजधानी माहिष्मती नगरी थी। †

(४) अन्ध्र—

॥ श्लोक ॥ जगन्नाथा दूर्द्धंभाग मर्वाक् श्रीभ्रमरात्मिकात्।
तावधन्ध्राभिधोदेश प्रोक्त श्रीशक्ति सगमे ॥१॥

अर्थ—जगन्नाथ से दक्षिण में और भ्रमरात्मिका से इस ओर अध्र नामक देश शक्ति सगम नामक तन्त्र में कहा है ॥१॥

यह तिलंगाने ‡ का प्राचीन नाम है, जिसको आध्र वश के क्षत्रियो

सम्पादकीय टिप्पण

† माहिष्मति—महेश्वर का सूचक है, जो नीमाड प्रदेश में है और इन्दौर राज्य के अन्तर्गत है। रघुवश के काल से लगा कर दसवी शताब्दि तक इसका बडा ऐतिहासिक महत्व रहा। विद्यादेवी की उपासना का यह केन्द्र था और यहाँ की महिलाएँ भी विदुषी होती थी। भगवान् आद्य शङ्कराचार्य को माहिष्मती के मण्डन मिश्र की स्त्री से शास्त्रार्थ करना पडा था। ऐसा शङ्कर दिग्विजय में उल्लेख है। शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान लोगो का निवास होने से ही इस देश का नाम अनूप पडा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

‡ तिलगाना यह तैलङ्ग का सूचक है और रामेश्वर के आस-पास होकर मद्रास प्रान्त में मिला हुआ है।

के राज्य रहने से 'आघ्र' भी कहते हैं ।

(५) अर्बुद –

आवू पर्वत के आस-पास का प्रदेश, जिसमें सिरोही का राज्य और कुछ दाता, पालनपुर और गोडवाड का हिस्सा शामिल है ।

(६) आटव्य –

यह जगल से भरे हुए देश का साधारण नाम है, जो विव्यपर्वत के अरण्य प्रदेश के लिये होना सम्भव है ।

(७) आनर्त –

काठियावाड, जिसमें कच्छ और द्वारका शामिल था ।

(८) आभीर –

।।श्लोक।। श्री कोङ्कणादधोभागे तापीत पश्चिमे परे ।
आभीर देशो देवेशि विंध्य शैले व्यवस्थित ।।१।।
।। इति शक्तिसगमतन्त्रम् ।।

अर्थ—कोकण देश से उत्तर और ताप्ती नदी से पश्चिम विंध्य पर्वत में, हे देवेशि ! (पार्वती) आभीर¶ देश है ।

यह शक्ति सगमतन्त्रमें लिखा है, जो वम्बई से सूरत तक था ।

(९) आरव –

यह अरव स्थान का नाम मालूम होता है ।

(१०) आवन्त्य –

मालवे का एक भाग जिसकी राजधानी उज्जैन थी ।

(११) उत्कल –

।।श्लोक।। जगन्नाथ· प्रान्तदेश श्चोत्कल परिकीर्तित ।।

अर्थ—जिसमें जगन्नाथपुरी है, उसको 'उत्कल' देश कहते हैं, जो इस समय उडीसा के नाम से प्रसिद्ध है ।

सम्पादकीय टिप्पण

¶ समुद्र के तटवर्ती वसनेवाली जातियो में एक जाति आभीर थी, जो पशु-पालन करती थी । उनके नाम मे यह प्रदेश 'आभीर' कहलाया । अपभ्रश की उत्पत्ति आभीर जाति मे ही मानी जाती है । आभीर का रूपातर अहीर है, जो पशु-पालन और खेती करते है । मुगलकाल में अहीरा के नाम से एक भूभाग 'अहीरवाडा' कहलाता था । पिछले युग मे जबकि मुगलो की सत्ता ढीली पड गई, यह लोग मालवा में लूट-मार कर अराजकता उत्पन्न करने लग गये थे ।

(१२) ऊर्ण –

यह किसी देश का नाम हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिल सका, परन्तु 'उरण' नामका एक नगर बम्बई अहाते के थाणा जिले में था, जो शिलारा वश के राजाओ के राजप्रतिष्ठित नगरो में से एक गिना जाता था।

(१३) ऊपर-क्षेत्र –

क्षारभूमि वाला देश तथा रेणुका आदि नवतीर्थ–*

।।श्लोक।। रेणुका सूकरः काशि कालीकाल बटेश्वरौ ।।
कालिञ्जरो महाकाल ऊपरा नवमुक्तिदाः ।।१।।
।।इति बराहपुराणम् ।।

(१४) कम्बोज –

।।श्लोक।। पञ्चनद समारभ्य म्लेच्छाद्दक्षिण पूर्वत. ।।
कम्बोज देशो देवेशि ! वाजिराशि परायण ।।१।।

अर्थ—पञ्जाब से लेकर अफगानिस्तान तक, हे पार्वती ! कम्बोज देश है, जो घोडो की गणना में श्रेष्ठ है।

(१५) कर्णाट –

।।श्लोक।। रामनाथं समारभ्य श्री रंगान्त विलेश्वरि. ।।
कर्णाट देशो देवेशि ! साम्राज्य भोगदायक ।।१।।

अर्थ—रामनाथ † से लेकर श्रीरग तक कर्णाट देश है, वह राज्य भोगदायक है और दस लाख की आय को साम्राज्य कहते हैं। यथा—

।।श्लोक।। लक्षाधिपत्य राज्यस्यात् साम्राज्य दश लक्षके।
शतलक्षे महेशानि ! महा साम्राज्यमुच्यते ।।१।।
।। इति वरदा तन्त्रे ।।‡

यह देश दक्षिण में इसी नाम से प्रसिद्ध है।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह गगा-यमुना के तटवर्ती तथा उससे मिले हुए प्रदेश का सूचक है, जिसमें उपर्युक्त नौ तीर्थ थे। उपर्युक्त श्लोक से यह बडा विस्तारवाला देश था। वैसवशी महाराज हर्षवर्द्धन, रघुवशी प्रतिहारो तथा गाहडवालो की राजधानी कन्नोज (कान्यकुब्ज) का भी ऊपर-क्षेत्र में ही समावेश हो जाता है।

† रामनाथ—रामेश्वर शिव।

‡ एतरेय ब्राह्मण में इस विषय का विशद् वर्णन है और स्पष्ट रूप से

(१६) कलिंग—

॥श्लोक॥ जगन्नाथात्पूर्व भागे कृष्णा तीरान्तग शिवे ।
कलिंग देश सप्रोक्तो वाममार्ग परायण. ॥१॥

अर्थ—जगन्नाथ से पूर्व दिशा में कृष्णा नदी के तीर तक को कलिंग देश कहते है ।

यहा जगन्नाथ से पूर्व भाग में होना सभव नहीं, क्योंकि वहा पर समुद्र है । इसके लिये जॉन डानसन अपनी किताब 'हिंदू माइथोलॉजी' में कारोमण्डल कोस्ट के समीप का प्रात लिखते है, जो उडीसा के दक्षिण का गोदावरी नदी तक का देश हो सकता है, जिसको उत्तरी सरकार भी कहते है । इस देश को कलिंग देश के क्षत्रियो के निवास से कलिंग देश कहते थे ।

(१७) कश्मीर—

अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, जिसको काश्मीर कहते है ।

(१८) कामरूप—

इस देश को इस समय कामरू देश कहते है, जिसकी राजधानी प्राग्-ज्योतिष थी । अब यह देश आसाम में गिना जाता है ।

(१९) कालवन—

(२०) कुन्तल—

॥श्लोक॥ कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्त महेश्वरि ।
श्री कुन्तलाभिधो देशे वर्णित शक्ति सगमे ॥१॥

अर्थ—कामगिरि से लेकर द्वारिका तक, हे पार्वती ! कुन्तल नामका देश शक्ति सगम तन्त्र में कहा है ॥१॥

अग्रेजी पुस्तको में महाराष्ट्र को दक्षिणी हिस्सा लिखा है, जिसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुरी (पैठण) थी । पीछे से कल्याणी (कल्याण) में राज्य करने वाले चौलुक्य अपने को कुन्तल देश के राजा मानते थे ।*

सम्पादकीय टिप्पण

बतलाया गया है, कितनी आय वाला 'राजा' कहलाता था और कितनी आय वाला 'सामन्त' आदि । वरदा तन्त्र की रचना के समय सम्भव है, राज्यों की गणना इस प्रकार से रहते हों, परन्तु अतिरागत उनके अनुसार राज्यों की गणना रहना प्रतीत नहीं होता है ।

* वर्तमान निजाम हैदराबाद राज्य का कुछ हिस्सा 'कुन्तल देश' का एक भाग हो सकता है । एवं बम्बई का भाग इलाका 'कल्याण' कहलाता था ।

(२१) कुरु –

।।श्लोक।। हस्तिनापुरमारभ्य कुरुक्षेत्राञ्च दक्षिणे ।।
पान्चाल पूर्व भागेतु कुरुदेश प्रकीर्त्तितः ।।१।।

अर्थ—हस्तिनापुर से लेकर कुरुक्षेत्र के दक्षिण और पान्चाल देश के पूर्व भाग को कुरुक्षेत्र कहते हैं । यह थानेश्वर के आस-पास है, जिसमें कुरुदेश प्रसिद्ध है । ¶

(२२) कुलात –

यवन देश विशेष, जो किलात के नाम से प्रसिद्ध है ।

(२३) केतुक –

(२४) केरल –

इसी देश को 'उग्र' भी कहते थे, 'उग्रा केरल पर्याया' इति हेमचन्द्र वर्तमान कनाड़ा (कानडा, कन्नड प्रदेश) और उससे मिले हुए कुछ अंश मलाबार का नाम केरल देश था (कावेरी से पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच का प्रदेश) ।‡

(२५) कौशल –

यह उत्तर कौशल और दक्षिण कौशल नाम के दो देश थे, जिनमें उत्तर कौशल अयोध्या के राज्य को कहते थे और दक्षिण कौशल उडीसा से दक्षिण-पश्चिम में विन्ध्य के निकट था ।

(२६) खुरासान –

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२७) ख्वारजम –

यवन देश विशेष, एक सूबे का नाम है और अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(२८) गक्खर –

सम्पादकीय टिप्पण

¶ भारत की वर्तमान राजधानी दिल्ली और उसका समीपवर्ती भूभाग भी कुरु प्रदेश के अन्तर्गत माना जाता था ।

‡ इस प्रदेश के नाम से वहां के निवासियों की भाषा कन्नड़ी कहलाती है, जो अब भी प्रयोग में आती है । वर्तमान समय में यह प्रदेश मद्रास सूबे में है ।

यवन देश विशेष, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है और वहा के रहनेवाले 'गक्खरी' कहलाते है ।†

(२९) गान्धार –

पञ्जाब का कुछ पश्चिमी हिस्सा और अफगानिस्तान का पूर्वी हिस्सा मिलकर पहले गान्धार देश कहलाता था, जिसकी सीमा पश्चिम में लमगान और जलालाबाद, उत्तर में स्वात और बुनेर की पहाडिया, पूर्व में सिन्धु नदी और दक्षिण में काला बाग के पहाड होने चाहिये । शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में कन्दहार को गान्धार लिखा है, परन्तु अग्रेज विद्वानो के मत से यह विरुद्ध है ।

(३०) गोनर्द –

वराहमिहर के अनुसार गोनर्द दक्षिण के किसी देश का नाम होना चाहिये, परन्तु इसका ठीक पता नहीं लगता । गोनर्द एक वश का भी नाम था, जिसने कश्मीर पर राज्य किया था––तथा दक्षिण में गोनर्द नाम का एक पर्वत भी है, उसके नाम से देश का नाम भी होना सम्भव है ।

(३१) चीन –

प्रसिद्ध चीन देश, जो इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(३२) चौल –

।।श्लोक।। द्रविड तैलगयोर्मध्ये चौलदेश प्रकीर्तित ।।

अर्थ––द्रविड और तिलगाना के बीच के देश को चोल कहते थे। जॉन डासन् अपनी पुस्तक 'हिंदू मॉइथालोजी' में इस देश को हिंदुस्थान के दक्षिण में तन्जोर के निकट होना लिखते है, जहा से कारोमण्डल शुरू होता है ।

(३३) जगल –

बीकानेर राज्य में जगल* नामक नगर था, जिससे बीकानेर के

सम्पादकीय टिप्पण

† झेलम और चिनाव नदियो के बीच के प्रदेश को मध्यकाल मे गक्खर देश कहते थे ।

* महाभारत में भी इसका उल्लेख है और कुरुदेश से मिला हुआ बतलाया है । वर्तमान बीकानेर राज्य की स्थापना के पूर्व यह प्रदेश 'जागल' कहलाता था, इसके भी पूर्व यह भूप्रदेश अजमेर के चाहमानो के आधीन था और इसीलिये उनकी एक उपाधि जागलेश की भी थी । जहा परमारो

राजा अबतक 'जगलधरा के बादशाह' कहलाते हैं। अथवा वन प्रदेश में बीकानेर का राज्य जमाया गया, जिससे 'जगलधरा के बादशाह' कहलाते हो।

(३४) जालधर –

व्यास और सतलज नदियों के बीच का प्रदेश।

(३५) टक –

पञ्जाब का एक हिस्सा जो कश्मीर से दक्षिण-पश्चिम को है। राजा अलखान ने यह देश कश्मीर के राजा को दिया था।

(३६) डाहल –

चेदि देश का यह दूसरा नाम है। जबलपुर के आस-पास को चेदि कहते थे, जिसकी राजधानी (त्रिपुर) तेवर थी।

(३७) तगण –

वराहमिहर ने हिन्दुस्तान के उत्तरी-पूर्वी विभाग में रहने वाली तगण नाम की जाति लिखी है। यदि यह शब्द तगण के लिये होवे तो दक्षिण में वह एक देश का नाम है।

(३८) तर्जिक –

जिसको तार्पिक भी लिखा है और इसका आधुनिक नाम ताजिक है। प्राचीन काल में अरबो को ताजिक कहते थे, इस कारण से अरब स्थान का नाम 'तर्जिक' होना सम्भव है। आर्यावर्त में इस नाम का देश होना पाया नहीं जाता।

(३९) ताम्रलिप्त –

वर्तमान 'तमलक' प्रदेश, जो सेलाई नदी और हुगली नदी के सगम के पास है।

(४०) तुपार –

तुखार नामक म्लेच्छदेश। वराहमिहिर के अनुसार 'तुपार' हिन्दुस्तान के उत्तर पश्चिमी हिस्से के एक देश का नाम था। इस देश के राज्यकर्ता 'तुपार' जाति के थे, इससे यह नाम प्रसिद्ध हुआ।

(४१) तूर्ण –

की एक शाखा सांखला वंश का अधिकार था और उन्हीं की सहायता से विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक भाग में जोधपुर के राठौड़ वंशी राव जोधा के एक पुत्र बीका ने उधर का भूभाग प्राप्त कर अपने नाम से बीकानेर के नवीन राज्य की स्थापना की थी।

(४२) तैलग –

॥श्लोक॥ श्रीशैलतुसमारभ्य चोलेशान मध्यभागत ।
तैलग देशो देवेशि ! ध्यानाऽध्ययन तत्पर ॥ १ ॥

अर्थ—श्री शैल से लेकर चोल देश के मध्यभाग तक, हे पार्वती ! तैलग देश है, जहाँ के निवासी ध्यान और पढ़ने में तत्पर रहते है ॥१॥

इसका प्राचीन नाम आन्ध्र देश था।

(४३) त्रिगर्त –

सुशर्मा राजा का देश, जिसको इस समय जालन्धर कहते है। पजाब का पूर्वी हिस्सा, जिसमें अधिकतर सतलज और सरस्वती नदियो के बीच का प्रदेश होना चाहिये । इस देश में तीन नदियो और तीन शहर (जालन्धर, धोव और कागडा) होने के कारण इसको 'त्रिगर्त' कहते है ।

(४४) दशेरक –

वराहमिहर के अनुसार तो 'दशेरक' या 'दाशेरक' हिन्दुस्तान के उत्तर में रहने वाली एक जाति का नाम था । यदि देश का नाम हो तो जिस देश में वह जाति निवास करती थी, उसी देश का नाम 'दशेरक' होना चाहिये, परन्तु शब्दार्थ चिन्तामणि कोष में मरू देश का नाम 'दशेरक' लिखा है ।

(४५) दार्व –

वराहमिहर हिन्दुस्तान के उत्तर-पूर्वी विभाग में रहने वाली एक जाति का नाम 'दार्व' लिखते है, जिनके निवास से यदि यह कोई देश का नाम होवे तो वह देश हिन्दुस्तान के ईशान कोण में चीन के पूर्व भाग में होना चाहिये ।

(४६) द्रविड –

॥श्लोक॥ कर्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्ज्जरा राष्ट्रवासिन ॥
आन्ध्राश्च द्राविडा पञ्च विन्ध्यदक्षिण वासिन ॥ १ ॥
इति स्कन्दपुराणम् ॥

अर्थ—'कर्णाट,' 'तैलङ्ग,' 'गुर्ज्जर,' † 'राष्ट्र' (महाराष्ट्र) और 'आन्ध्र' विध्याचल से दक्षिण दिशा में इन पाँच देशो में निवास करनेवालोको 'पञ्चद्राविड' कहते है । इससे तो उन पाँचो देशो की द्रविड सज्ञा पाई जाती है, जो मद्रास से लेकर कन्या कुमारी तक फैला हुआ है ।

(४७) धाटि –

इसका अपभ्रश 'धाट्' मालूम होता है, जो भारतवर्ष के पश्चिमी भाग में

सम्पादकीय टिप्पण

† गुर्ज्जर—गुजरात ।

बाढमेर से आगे पाया जाता है, जहाँ के घोड़ो का उत्तम होना प्रसिद्ध है।

(४८) नेपाल –

अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

(४९) पञ्चनद –

पञ्जाब।

(५०) पञ्चाल –

पञ्चालक्षत्रियो के निवास से इस देश का नाम पञ्चाल प्रसिद्ध है और विष्णुपुराण के चौथे अश में १९वें अध्याय के मत से राजा हर्यश्व के- मुद्गल, सृन्जय, वृहदिषु, प्रवीर और काम्पील नामक पाँच पुत्र हुए। पिता ने कहा कि मेरे आधीन पाँचो देशो की रक्षा करेंगे। इसी से उन पाँचो का नाम 'पाञ्चाल' हुआ, जिससे यह पाञ्चाल देश प्रसिद्ध है। इसकी सीमा तत्रशास्त्र में इस प्रकार लिखी है।

कुरूक्षेत्रात् पश्चिमेतु तथा चोत्तरभागत ॥
इन्द्रप्रस्थान्महेशानि ! दशयोजन जनकद्वये ॥१॥
पञ्चालदेशोदेवेशि ! सौन्दर्य गर्वभूषित. ॥२॥

अर्थ—कुरूक्षेत्र से पश्चिम तथा उत्तर के भाग में हे पार्वती ! दिल्ली से १२ योजन पर सुन्दरता के गर्व से भूषित ऐसा पाञ्चाल देश है और राजशेखर के कथनानुसार गङ्गा और यमुना के बीच का देश 'दुआब' * का नाम पाञ्चाल होना चाहिये।

(५१) पाड्य –

॥श्लोक॥ कम्बोजाद्दक्षभागेतु इन्द्रप्रस्थाच पश्चिमे।
पाण्ड्यदेशो महेशानि ! महाशूरत्व कारक ॥१॥

सम्पादकीय टिप्पण

* गङ्गा और यमुना के बीच का देश 'दुआब,' 'पाञ्चाल' कहलाता हो, ऐसा पाया नही जाता। दुआब का नाम अन्तर वेद तो लिखा हुआ मिलता है। राजशेखर कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल का समकालीन था। यही नही, वह महेन्द्रपाल का शिक्षागुरु था। उसने काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, बाल रामायण, बालमहाभारत विद्धशालभंजिका नाटिका आदि ग्रथो की रचना की थी। महेन्द्रपाल का राज्य समय वि० सं० ९५०–९६४ ई० स० ८९३–९०८ निश्चित है। अनुमान से राजशेखर का भी यही समय स्थिर होता है। संभव है कि उसके समय (वि० सं० की दसवीं शताब्दी) में दुआब पाञ्चाल कहलाता हो।

अर्थ—कम्बोज से दक्षिण भाग में और दिल्ली से पश्चिम में हे पार्वती! बहुत शूरवीरो वाला पाड्य देश है।

जॉन डॉनसन् का मत इससे विरुद्ध है, क्योंकि वह इस देश को हिन्दुस्तान के दक्षिण में लिखता है जिसकी राजधानी 'मदुरा' थी।

(५२) पेशोर—

यह पिशावर शहर का नाम है, जो भारतवर्ष के उत्तरी भाग में विद्यमान है।

(५३) प्रस्थल—

(५४) प्राग्ज्योतिष—

एक शहर का नाम है, जो कामरू देश में नरकासुर की राजधानी थी, जिस (नरकासुर) को श्रीकृष्ण ने मारा था।

॥श्लोक॥ तत्रेवहिस्थितो ब्रह्मा प्राङ् नक्षत्रमसर्जह ॥
तत प्राक्ज्योतिषाख्येय पुरी शक्रपुरीसमा ॥१॥

अर्थ—वहां स्थित होकर ब्रह्मा ने पहले नक्षत्र बनाये थे, इस कारण से उस नगर का नाम प्राग्ज्योतिष हुआ, जो इन्द्र की पुरी अमरावती के समान है।

(५५) प्राच्य—

शरावती नदी की सीमा से पूर्व और दक्षिण का देश।

(५६) फारस—

पारस देश, जिसको इस समय 'पर्शिया' कहते हैं। वहां घोडे बहुत अच्छे होते हैं।

(५६) वग्गड—

यह प्रान्त इस समय 'डूगरपुर-बासवाडा' के राज्यो में बटा हुआ है, जिसको इस समय 'वागड' कहते हैं।

(५८) वङ्ग—

॥श्लोक॥ रत्नाकरसमारभ्य ब्रह्मपुत्रान्दाग शिवे ॥
वङ्गदेशोमया प्रोक्त सर्व सिद्धि प्रदर्शक ॥१॥

अर्थ—समुद्र से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक हे पार्वती! मैंने बग देश कहा है, वह सर्वसिद्धियो को दिखाने वाला है (वङ्गालका पूर्वी हिस्सा)।

(५९) बदक्शा—

यवन देश विशेष, जो अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

(६०) बल्क –

यह 'बलख' का नाम मालूम होता है, जो अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(६१) बुलगान –

यवन देश विशेष ।

(६२) ब्रह्मा –

भारतवर्ष के पूर्व में अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।

(६३) मगध –

।।श्लोक।। व्यासेश्वर समारभ्य तप्तकुण्डान्तग शिवे ! ।।
मगधाख्यो महादेशो यात्राया नहि दुष्यति ।।१।।

अर्थ—व्यासेश्वर से लेकर तप्तकुण्ड पर्यन्त हे पार्वती ! यात्रा में दूषित नहीं है, ऐसा मगध देश है ।।१।। जिसकी राजधानी पटना है ।

(६४) मद्र –

।।श्लोक।। वैराटपाण्ड्ययोर्मध्ये पूर्व दक्षिण क्रमेणतु ।
मद्रदेश समाख्यातो माद्रीहातत्र तिष्ठति ।।१।।

अर्थ—वैराट् से पूर्व और पाण्ड्य से दक्षिण इनके बीच में जहाँ अहो ! माद्री स्थित है ।।१।।

अग्रेजी पुस्तको में व्यास और झेलम नदियो के बीच के देश को 'मद्र' लिखा है ।

(६५) मरू –

मारवाड, जहाँ के ऊँट उत्तम होते है ।

(६६) महाराष्ट्र –

नर्मदा और कृष्णा नदी के बीच का प्रदेश, जहाँ मराठी बोली जाती है ।

(६७) मालव – ‡

सम्पादकीय टिप्पण

‡ मालवेका सूचक है । 'मालव' नामक जाति का वहाँ निवास होने से इस प्रदेश का नाम 'मालव' पडा । वि० स० की प्रथम शताब्दी के आस-पास वहाँ प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य था, ऐसा मालव गणो के सिक्को से जो जयपुर राज्य के उणियारा ठिकाने के कर्कोटक नगर से मिले है, पाया जाता है ।

(६८) मिथिला –

।।श्लोक।। गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यानकशिवे ! ।।
विदेहभूःसमाख्याता तैरभिक्ता भिधः सतु ।।१।।

अर्थ—गण्डकी नदी की तीर से चम्पारण्य तक, हे पार्वती ! जनकभूमि है जिस को तिरहुत भी कहते हैं ।

(६९) मुर्गाब –

रूसी तुर्किस्तान की एक नदी जो अफगानिस्तान के सफेद कोह नामक एक पहाड में से निकलती है ।

(७०) मुल्तान –

।।श्लोक।। करतोयासमारभ्य हिंगुलाजान्तक शिवे ? ।।
मुल्तान देशोदेवेशि ! महाम्लेच्छ परायण ।।१।।

अर्थ—अटक नदी से लेकर हिंगुलाज तक, हे पार्वती ! महाम्लेच्छ देश 'मुल्तान' है ।।१।। यह अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है ।।

(७१) मूलिक –

पुराणो के अनुसार दक्षिण का एक देश ! आध्रवश के राजा गौतमी पुत्र सातकर्णी के आधीन देशो में से एक 'मुल्क' देश भी था, ऐसा उसी के पुत्र मूलू भाई के लेख से पाया जाता है ।

(७२) मूशिक – †

मलावार किनारे का कीलोन और कन्याकुमारी के बीच के देश ।

(७३) मेवात –

यह अब भी इसो नाम से प्रसिद्ध है* ।

(७४) लम्पाक –

काबुल नदी के उत्तर का देश जो 'लम्पाक' नाम से प्रसिद्ध है ।

(७५) लमगान –

यवन देश विशेष, जिसका सस्कृत में 'लमगान' नाम था ।

(७६) वनायु –

सम्पादकीय टिप्पण

† सिन्ध का एक प्रदेश भी मुशिक नामक जाति के नाम पर विख्यात था ऐसा यूनानी इतिहासकारो से पता चलता है ।

* मेवात-अलवर राज्य के अन्तर्गत एक भूभाग है, जहाँ के निवासी मेवात या मेवाती कहलाते है ।

देश विशेष, जहाँ के घोड़े उत्तम होते हैं।

(७७) वाल्हीक –

।।श्लोक।। कबोजदेशमारभ्यमहाम्लेच्छात्तुपूर्वगे ।।
वाल्हीक देशोदेवेशि ! अश्वोत्पत्ति परायण ।।१।।

अर्थ--कम्बोज देश से लेकर फारस से पूर्व में, हे पार्वती ! घोडो की उत्पत्ति में श्रेष्ठ वाल्हीक देश है ।। १ ।। इसको इस समय 'वलख' कहते है ।

(७८) वासक –

(७९) विदर्भ –

।।श्लोक।। भद्रकाली महापूर्वे रामदुर्गाच्चपश्चिमे ।।
श्री विदर्भाभिधो देशो वैदर्भीतत्रतिष्ठति ।।१।।

अर्थ—महाभद्रकाली से पूर्व, रामदुर्गा से पश्चिम में श्रीविदर्भ नामक देश है, जहाँ वैदर्भीदेवी स्थित है ।।१।।

इसको इस समय 'बरार' कहते हैं, जो हैदराबाद के नवाव ने गवर्नमेंट को फौज खर्च में दिया है । इसकी प्राचीन राजधानी कुण्डिनपुर (कुण्डपुर) थी ।

(८०) विन्ध्य –

विन्ध्याचल का प्रदेश ।

(८१) विराट् –

।।श्लोक।। वैदर्भदेशादूर्द्धञ्च इन्द्रप्रस्थाच्चदक्षिणे ।।
मरूदेशात्पूर्वभागे विराट परिकीर्तित ! ।।

अर्थ--विदर्भ देश से ऊपर, दिल्ली से दक्षिण और मरूदेश (मारवाड) से पूर्व में विराट्देश है ।।१।।

इसकी राजधानी विराट् नगर होने से विराट् देश प्रसिद्ध हुआ था, जिसको मत्स्य देश भी कहते थे। यह 'विराटपुर' वैराट् देश के नाम से इस समय जैपुर में है ।*

सम्पादकीय टिप्पण

* विराट् नाम के कुछ और भी स्थान है, जिसमें एक उदयपुर राज्य के अन्तर्गत विराट् नामक प्रदेश है, जो अजमेर-मेरवाडा के जिले मे मिला हुआ है । यह अब भी वैराट् नाम से प्रसिद्ध है । जिसका मुख्य स्थान बदनोर है, जिसका नाम वर्द्धनपुर लिखा हुआ मिलता है । पन्द्रहवीं शताब्दी मे चित्तौड के महाराणा लक्षसिंह (लाखा) ने वहाँ पर बसने वाले मेरों का जो उपद्रव और लूटमार करते थे, दमन कर वैराट् का गढ तोड दिया और उसके स्थान

(८२) शतद्रू –

सतलज नदी अथवा उसके किनारे का देश।

(८३) शाल्व –

महाभारत में एक देश का नाम लिखा है, परन्तु इसका पता नहीं लगता।

(८४) सगर –

(८५) सचोर –

जो इस समय 'सांचोर' के नाम से जोधपुर का एक परगना प्रसिद्ध है।

(८६) समस्थली –

यह अन्तर्वेद देश, जिसकी राजधानी मेनपुरी थी।

(८७) सावर –

यह देश का नाम नहीं पाया जाता, किन्तु गॉव का नाम हो सकता है अथवा 'सौवीर' का 'सावर' लिखा हो तो उत्तरी सिन्धू का नाम होना चाहिये।

(८८) सुमील –

(८९) सूकर (क्षेत्र)

सोरम नामक गगाघाट तथा सोरम प्रान्त का नाम सूकर है।

(९०) सूर्यारक –

(९१) सौराष्ट्र –

॥श्लोक॥ कोकणात्पश्चिमेतीर्थं समुद्र प्रान्त गोचर ॥
हिंगुला जान्तको देवि ! दशयोजन देशक. ॥
सौराष्ट्र देशोदेवेशि ! तस्मात्तुगुर्जराभिध ॥१॥

अर्थ—कोकण से पश्चिम का तीर्थ जो समुद्र प्रांत तक मालूम होता है और जिसका अन्त हिंगुलाज तक है, ऐसा दस योजन में फैला हुआ, हे देवि ! सौराष्ट्र नामक देश है, उसके आगे गुर्जर नामक देश है, यह काठियावाड के दक्षिणी भाग का नाम है।

सम्पादकीय टिप्पण

मे बधनोर बसाया। बधनोर के रेवत दर्वाजे बाहर एक चट्टान पर गुप्त कालीन लेख भी खुदा हुआ है, जो अभी तक विद्वानो की दृष्टि में नही आया है।

(९२) स्तबकार –

(९३) स्वर्णगिरि –

यह मारवाड के एक प्रान्त 'जालोर' के पर्वत का नाम हैं। इसी पर्वत के नाम से चहुवाणो की एक शाखा 'सोनिगरा' प्रसिद्ध हुई है।

———

२—राजपूताने के भिन्न-भिन्न विभागों के प्राचीन नाम—

'राजपूताना' नाम अंग्रेजो का रक्खा हुआ है। जिस समय उनका सम्बन्ध इस देश के साथ हुआ, उस समय बहुधा यह सारा देश, भरतपुर राज्य को छोड़कर, राजपूत राजाओं के अधीन था, जिससे उन्होंने गोंडवाना, तिलिंगाना के ढङ्ग पर इसका नाम 'राजपूताना' अर्थात् 'राजपूतों का देश' रक्खा। राजपूताना के प्रथम और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस देश का नाम 'राजस्थान' या 'रायथान' रक्खा जो राजाओं या उनके राज्यों के स्थान का सूचक है, परन्तु अंग्रेजों के पहले यह सारा देश उक्त नाम से कभी प्रसिद्ध रहा हो, ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। अतएव वह नाम भी कल्पित ही है क्योंकि 'राजस्थान या उसके प्राकृत (लौकिक) रूप 'रायथान' का प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिये हो सकता है। सारे राजपूताना के लिये पहले किसी एक नाम का प्रयोग होना पाया नहीं जाता, उसके कितने एक अंशों के तो प्राचीन काल में समय-समय पर भिन्न-भिन्न नाम थे और कुछ विभाग अन्य बाहरी प्रदेशों के अन्तर्गत थे।

जांगलदेश[1]

वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड़ (जोधपुर राज्य) का उत्तरी हिस्सा, जिसमें नागोर आदि परगने हैं, प्राचीन काल में 'जांगल देश' कहलाता था।

---

1 जांगल देश के लक्षण ये बतलाए जाते हैं कि जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो, उसको जांगल देश जानना चाहिये' (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः। स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः—शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२९)। भाव प्रकाश में लिखा है कि 'जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षों की कमी हो और शमी, कैर, बिल्व, आक, पीलु और बेर के वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं। (आकाशः शुभ्र उच्चश्च स्वल्पपानीयपादपः। शमीकरीरबिल्वार्कपीलुकर्कंधुसंकुलः॥ देशो वातालो जांगलः स्मृतः (वही पृ० ५२९)।

इन लक्षणो से राजपूताना के बालूवाले किसी प्रदेश का नाम जागलदेश होना अनुमान किया जा सकता है।

महाभारत में कहीं देश या वहाँ के निवासियो[1] का सूचक 'जांगल' नाम अकेला (जागल[2]) मिलता है तो कहीं 'कुरु' और 'मद्र' देशो (निवासियो) के साथ जुडा हुआ ('कुरूजागला'[3] 'माद्रेयजांगला[4])मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशो के नाम समास में दिए हुए पाये जाते है, जो परस्पर मिले हुए होते हैं। जैसे, 'कुरूपाचाला' आदि। अतएव माद्रेयजागला:' और 'कुरूजागला.' का आशय यही है कि 'मद्र[5]। और 'कुरू[6]' देशो से जुडा हुआ 'जांगल देश'। मद्र और कुरू दोनो जागल के उत्तर में थे, इसलिये उनसे दक्षिण में जांगल देश होना चाहिये।

बीकानेर के राजा जागल देश के स्वामी होने के कारण अपने को

---

(1) सस्कृत मे देशो के नामो के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नही रहता,तब वे बहुधा बहुवचन में मिलते है जैसे कि 'पाचाला:, 'जागला': 'दशार्णा' आदि। इसका कारण यह है कि देशो के नाम बहुधा उनके निवासियो के नाम पर रखे गए है।

(2) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गला कुरूवर्णका· (महाभारत, भीष्मपर्व; अध्याय ६, श्लोक ५६—कुभकोण सस्करण। पैत्र्य राज्य महाराज कुरूवस्ते स जाङ्गला. वही, उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो० ७)।

(3) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरूजागलान् (वही वनपर्व, अ० १०, श्लो० ११)। तत. कुरूश्रेष्ठमुपेत्य पौश प्रदक्षिण चक्रुरदीनसत्वा। त ब्राह्मणा श्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरूजागलानाम्। स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्न सहैव तैभ्रातृभि धर्म राजः तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघ कुरुजागलानाम् (वही, वनपर्व, अ० २३, श्लो० ५-६)

(4) तत्रेमे कुरुपाञ्चाला: शाल्वा माद्रेयजाङ्गला· वही; वनपर्व, अ० ६, श्लोक० ३९।

(5) पजाव का वह हिस्सा जो चिनाव और सतलज नदियो के बीच में है। इडि० एटि०, जि, ४०, पृ० २८।

इस समय बीकानेर राज्य (जागल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश मे नहीं मिलता, परन्तु सभव है कि प्राचीन काल में या तो मद्र की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो, या जागल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र से जा मिलती हो।

(6) 'कुरू' के लिये देखो आगे पृ० ३३२। (ना०प्र०पत्रिका, काशी, नवीन सस्करण, भाग २ स० ३, स ६७८)

'जागलधर (जागल देश) के बादशाह' कहते है जैसा कि उनके राज्यचिह्न में लिखा रहता है।[1]

जागल देश की राजधानी 'अहिछत्रपुर'[2] थी जिसको इस समय नागौर[3] कहते है और जो जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग में है।

---

(1) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न में 'जय जगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

(2) 'अहिछत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरो का होना हिन्दुस्तान में पाया जाता है। उत्तरी पाँचाल देश की राजधानी अहिछत्र थी जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्सग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील, बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १, पृ०२००)। जैन लेखक जागल देश की राजधानी अहिछत्र बतलाते है (इडि० एटि०, जि०४०, पृ०२८)। कर्नल टॉड के गुरू यति ज्ञानचन्द्र के सग्रह (माडल मेवाड में) में मुझे एक सूची २५ देशो तथा उनकी राजधानियो की मिली, जिसमें भी जागल देश की राजधानी 'अहिछत्र' लिखी है। भैरणमत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिछत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है (एपि०इडि०, जि०३,पृ० २३५) इसी तरह और भी 'अहिछत्र' नाम के नगरो का उल्लेख मिलता है (बबई गैजेटिअर, जि०१, भाग २ पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(3) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर मानने का पहला कारण यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृतरूप है। नागपुर का अर्थ 'नाग का नगर' और 'अहिछत्रपुर' का अर्थ 'नाग है छत्र जिस नगर का' है। नाग और अहि दोनो एक ही आशय (साँप) के सूचक हैं। सस्कृत के लेखक नामो का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दो का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणो में विशेषकर 'हस्तिनापुर' नाम मिलता है परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १।८।४५, ४।३१।३०, १०।५७।८) या 'गजाह्वय' पुर (भागवत, १।९।४८, १।१५।३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिये नागसाह्वयपुर (७।१।८१४।६५।२०) और नागपुर (५।१४।७।५) नामो का प्रयोग भी मिलता है क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनो एक ही के सूचक है। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय वि०स० १२२६ फाल्गुन वदि तीज के बीजोलिया (उदयपुर राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामन्त का अहिछत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्रश्रीवत्सगोत्रे भूदहिछत्रपुरे पुरा। सायतोनतमामत, पूर्णतल्ले

इन लक्षणो से राजपूताना के बालूवाले किसी प्रदेश का नाम जागलदेश होना अनुमान किया जा सकता है।

महाभारत में कहीं देश या वहां के निवासियो[1] का सूचक 'जागल' नाम अकेला (जागल [2]) मिलता है तो कहीं 'कुरु' और 'मद्र' देशो (निवासियो) के साथ जुडा हुआ ('कुरूजांगला'[3] 'माद्रेयजागला [4])मिलता है। महाभारत में बहुधा ऐसे देशो के नाम समास में दिए हुए पाये जाते है, जो परस्पर मिले हुए होते हैं। जैसे, 'कुरूपाचाला ' आदि। अतएव माद्रेयजागला' और 'कुरूजागला ' का आशय यही है कि 'मद्र[5]। और 'कुरू[6]' देशो से जुडा हुआ 'जागल देश'। मद्र और कुरू दोनो जागल के उत्तर में थे, इसलिये उनसे दक्षिण में जांगल देश होना चाहिये।

बीकानेर के राजा जागल देश के स्वामी होने के कारण अपने को

---

(1) सस्कृत में देशो के नामो के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नही रहता,तब वे बहुधा बहुवचन में मिलते है जैसे कि 'पाचाला., 'जागला': 'दशार्णा' आदि। इसका कारण यह है कि देशो के नाम बहुधा उनके निवासियो के नाम पर रखे गए है।

(2) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गला कुरूवर्णका (महाभारत, भीष्मपर्व; अध्याय ६, श्लोक ५६—कुभकोण सस्करण। पैत्र्य राज्य महाराज कुरूवस्ते स जाङ्गला' वही, उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लो० ७)।

(3) तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरूजागलान् (वही वनपर्व, अ०१०, श्लो०११)। तत. कुरूश्रेष्ठमुपेत्य पौश प्रदक्षिण चक्रुरदीनसत्वा।त ब्राह्मणा श्चाभ्यवदन्प्रसन्ना मुख्याश्च सर्वे कुरूजागलानाम्। स चापि तानभ्यवदत्प्रसन्न' सहैव तैर्भ्रातृभि धर्म राज तस्थौ च तत्राधिपतिर्महात्मा दृष्ट्वा जनौघ कुरुजागलानाम् (वही, वनपर्व, अ०२३, श्लो०५-६)

(4) तत्रेमे कुरूपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गला' वही; वनपर्व, अ० ६, श्लोक० ३६।

(5) पजाव का वह हिस्सा जो चिनाव और सतलज नदियो के वीच में है। इडि० एटि०, जि, ४०, पृ० २८।

इस समय वीकानेर राज्य (जागल) का उत्तरी हिस्सा मद्र देश मे नही मिलता, परन्तु सभव है कि प्राचीन काल में या तो मद्र की सीमा दक्षिण में अधिक दूर तक हो, या जागल की उत्तरी सीमा उत्तर में मद्र से जा मिलती हो।

(6) 'कुरु' के लिये देखो आगे पृ० ३३२। (ना०प्र०पत्रिका, काशी, नवीन सस्करण, भाग २ स० ३, स ६७८)

'जागलधर (जागल देश) के बादशाह' कहते हैं जैसा कि उनके राज्यचिह्न में लिखा रहता है।[1]

जागल देश की राजधानी 'अहिछत्रपुर'[2] थी जिसको इस समय नागौर[3] कहते हैं और जो जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग में है।

---

(1) बीकानेर राज्य के राज्यचिह्न मे 'जय जगलधर बादशाह' लिखा रहता है।

(2) 'अहिछत्रपुर नाम के एक से अधिक नगरो का होना हिन्दुस्तान मे पाया जाता है। उत्तरी पाँचाल देश की राजधानी अहिछत्र थी जिसका वर्णन चीनी यात्री हुएन्सग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सी-यु-की' में किया है (बील, बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, जि० १, पृ०२००)। जैन लेखक जागल देश की राजधानी अहिछत्र बतलाते हैं (इडि० एटि०, जि०४०, पृ०२८)। कर्नल टॉड के गुरू यति ज्ञानचन्द्र के सग्रह (माडल मेवाड में) में मुझे एक सूची २५ देशो तथा उनकी राजधानियो की मिली, जिसमें भी जागल देश की राजधानी 'अहिछत्र' लिखी है। भैरणमत्ति के शिलालेख में सिंधुदेश में अहिछत्रपुर नामक नगर का होना लिखा है(एपि०इडि०, जि०३,पृ० २३५) इसी तरह और भी 'अहिछत्र' नाम के नगरो का उल्लेख मिलता है (बबई गैजेटिअर; जि०१, भाग २ पृ० ५६०, टिप्पण ११)।

(3) जोधपुर राज्य के नागौर नगर को जागल देश की राजधानी अहिछत्रपुर मानने का पहला कारण यह है कि नागौर 'नागपुर' का प्राकृतरूप है। नागपुर का अर्थ 'नाग का नगर' और 'अहिछत्रपुर' का अर्थ 'नाग है छत्र जिस नगर का' है। नाग और अहि दोनो एक ही आशय (सांप) के सूचक हैं। सस्कृत के लेखक नामो का उल्लेख करने में उनके पर्याय शब्दो का प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं। पुराणो मे विशेपकर 'हस्तिनापुर' नाम मिलता है परन्तु भागवत में उसके स्थान में 'गजसाह्वयपुर' (भागवत, १।८।४५, ४।३१।३०, १०।५७।८) या 'गजाह्वय' पुर (भागवत, १।९।४८,१।१५।३८) नाम भी है। महाभारत में हस्तिनापुर के लिये नागसाह्वयपुर (७।१।८१४।६५।२०) और नागपुर (५।१४।७।५) नामो का प्रयोग भी मिलता है क्योंकि हस्ती, नाग और गज तीनो एक ही के सूचक है। दूसरा कारण यह है कि चौहान राजा सोमेश्वर के समय वि०स० १२२६ फाल्गुन वदि तीज के बीजोलिया (उदयपुर राज्य में) के चट्टान पर के लेख में चौहान राजा सामन्त का अहिछत्रपुर में राज करना लिखा है (विप्रश्रीवत्सगोत्रे भूदहिछत्रपुरे पुरा। सामन्तोनतसामत, पूर्णतल्ले

सपादलक्ष

जांगल देश की राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) के आसपास के छोटे से प्रदेश का प्राचीन नाम सपादलक्ष[1] था। राजपूताने में चौहानो का प्रथम अधिकार उसी प्रदेश पर रहा, जिससे वे 'सपादलक्षीयनृपति' (सपादलक्ष के राजा) कहलाए। फिर उनकी राजधानी शाकभरी (साभर) नगर हुई, जिससे वे 'शाकभरीश्वर' (संभरी नरेश)' भी कहलाते हे। उनकी तीसरी राजयानी अजमेर हुई। समय पाकर उनके राज्य का विस्तार बढ़ता गया। और विग्रहराज (वीसलदेव) चौथे के समय से तो राजपूताने के बाहर के कितने एक प्रदेश (देहली, हांसी आदि) भी उनके राज्य के अधीन हो गये थे, परन्तु सामान्य रूप से जितना देश उनके अधिकार में रहा, वह सारा ही-सपादलक्ष[2] कहलानें लगा। उसके अन्तर्गत जागल (जोधपुर राज्य के उत्तरी

नृपस्तत्त (श्लोक १२)। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से पाया जाता है कि वासुदेव (सामन्त का पूर्वज) शिकार को गया, जहाँ एक विद्याधर की कृपा से शाकभरी (साभर) की झील उसको नजर आई" (सर्ग ४)। इससे पाया जाता है कि साभर की झील चौहानो की मूल राजधानी 'अहिछत्रपुर' से वहुत दूर न थी, ऐसी दशा में नागौर ही 'अहिछत्रपुर' हो सकता है।

(1) नागौर के आस पास के इलाके (नागौर पट्टी) को वहां के लोग अब तक 'स्वाजक' या 'सवाजक' कहते है, जो सपादलक्ष का ही अलौकिक रूप है। तीन भिन्न-भिन्न देशो के नाम सपादलक्ष मिलते है, जिनमें से एक तो गढवाल, कुमाऊँ आदि प्रदेशो का, जैसा कि गया से मिले हुए राजा अशोकचल्ल के छोटे भाई कुमार दशरथ के समय के गया के लेख से पाया जाता है (इडि० एटि०; जि०१०, पृ० ३४६) एपि० इडि०, जि० १२, पृ० ३०।) दूसरा साभर और अजमेर के चौहानो के अधीन के सारे देश का नाम जो उनके शिलालेखो तथा ऐतिहासिक पुस्तको में मिलता है (देखो आगे पृ० ३३१, टिप्पण १-५) और तीसरा दक्षिण मे था जिसका उल्लेख केवल कनडी भाषा के प्रसिद्ध कवि पप के रचे हुए 'विक्रमार्जुन विजय' (पपभारत नामक कनडी काव्य में जो शक मवत् ८६३ (वि० म ९९८) के आम पाम वना था, मिलता है (गौरीशकर हीराचन्द ओझा—सोलकियो का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, पृ२०६)।

(2) देव मोमेश्वर द्रष्टु गज श्री रुद्रकठन। आत्मजाभ्यामिव 'यश प्रतापाभ्यामिवान्वित। मपादलक्षमानिन्ये महामात्यैर्महीपति (पृथ्वीराज विजय; मर्ग ८, श्लो०५७५८)। मपादलक्षमामर्द नमृत्तुन मया (नृपा')नक (मोलकी कुमारपाल का चितौड का शिलालेख, (एपि० इडि० जि० २ पृ० ४२३)।

विभाग सहित), जयपुर राज्य[1] का शेखावाटी से लगाकर रणयभोर से कुछ दक्षिण तक का प्रदेश जिसमें कोटा रियासत का उत्तरी भाग भी है, मेवाड का माडलगढ[2] (मडल कर दुर्ग) से लगाकर सारा पूर्वी हिस्सा[3], बूंदी राज्य का पश्चमी अश, किशनगढ का राज्य तथा अजमेर का सारा प्रदेश था। गुजरात के सोलकी (चौलुक्य) राजाओ के समय के शिलालेखो तथा ऐतिहासिक सस्कृत पुस्तको में अजमेर के चौहानो को कही सपादलक्ष[4] और कहीं जागल देश[5] का राजा कहा है, जिससे पाया जाता है कि–प्राचीन जागल देश चौहानो के विस्तृत राज्य के अन्तर्गत हो जाने के कारण पीछे से सपादलक्ष में गिना जाने लगा।

---

(1) सवत् १२४४ श्रावणपूर्व सपादलक्षे (जयपुर राज्य के वीसलपुर का शिलालेख, अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज के समय का–कनिंगहाम, आर्किया लाजिकल सर्वे, रिपोर्ट, जि० ६, प्लेट २१)।

(2) श्रीमानस्ति सपादलक्षविषय शाकभरीभूषणस्तत्रश्रीरतिधाममण्डल-कर नामास्नि दुर्गंमहत् ।१। म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तेक्ष-तित्रासाविन्ध्यनरेन्द्रदो परिमल स्फर्जंत्त्रिवर्गोजसि। प्राप्तो मालवमडले वहुपरीवार पुरीमावसद्यो धारामपठज्जिनप्रमितिवाक् शास्त्र महावीरत ।।५।। (जैन विद्वान् आशाधर रचित 'धर्मामृतशास्त्र।)

(3) ओ स० १२२५ ज्येष्ठ वदि १३ अद्येह श्रीसपादलक्षमडले महाराजा धिराज परमेश्वर . शाकभरीभूपालश्रीप्तिथिम्विदेव विजयराज्य (मेवाड के पूर्वी हिस्से के धौड गाँव के रूठी राणी के मदिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे (पृथ्वीदेव, पृथ्वीभट) के समय का शिलालेख)।

(4) सपादलक्षमामर्व (ऊपर टिप्पण १)। सपादलक्ष सहभूरलक्षैराना-कभूपाय नतायदत्त (प्रवन्धचिन्तामणि, पृ० १६०)।

(5) किमङ्ग ? जागलपते सौप्तिकप्रस्तावोपश्लोकमनाकार्णतवान् भवान् प्रल्हादनदेव विरचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग,' पृ० ३)। दण्डे मण्डपिका हैमी सहमत्तैर्मतगजै। दत्वा पादं गले येन जाङ्गलेशादगृह्यत (कीर्ति कौमुदी, सर्ग २, श्लो०५३)। हृदिप्रविष्टयद्बाण क्लिष्टेनाघूर्णित शिर। जागलक्षोणिपालेन व्याचक्षाणे परैरपि—
(वही स०२, श्लो०४६)। गूर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर ने अपनी 'कीर्ति कौमुदी' में गुजरात के सोलकी राजा कुमारपाल और अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनाक आनल्लदेव) के वीच की लडाई के प्रसग में चौहान राजा को जागलक्षोणिपाल अर्थात् 'जागल देश का राजा' कहा है (सर्ग २, श्लो०४६)। परन्तु उसी ग्रन्थकार ने अपने 'सुरथोत्सवकाव्य' में गुजरात के चोलुक्य राजा

कुरु

महाभारत में कुरु देश का नाम कभी अकेला[1] मिलता है और कभी उसके साथ जागल[2] और पाचाल[3] के नाम जुडे हुए मिलते है। जागल दक्षिण में और पाचाल पूर्व में उससे जुडा-हुआ था और वे दोनो कभी कभी कुरुराज्य के अधीन[4] भी रहे थे। कुरु देश में पटियाला राज्य के पूर्वी (आधे, हिस्से से लगाकर यमुना के पूर्व तक के और थानेश्वर के कुछ उत्तर से लगाकर देहली से कुछ दक्षिण तक के प्रदेश का

जयसिंह (सिद्धराज) के और चौहान आना के युद्ध प्रसग में आना को सपादलक्ष का राजा कहा है (दृप्त सोऽपि सपादलक्षनृपति. पादानर्ति शिक्षित—सर्ग १५, श्लोक २२) मेरूतुग ने बहुत जगह सपादलक्ष ही नाम दिया है, जागल कही नही।

(1) देखो (पृ. टि—) पृ० ३२८ टिप्पण २ (ना. प्र. प., नवीन सस्करण, काशी भाग २ सख्या ३, स १९७८)।

(2) देखो (पृ टि) पृ० ३२८ टिप्पण ३ („ „)।

(3) तत्रेमे कुरूपाञ्चाला शाल्वा माद्रेयजागला (महाभारत, भीष्मपर्व, अ० ९, श्लो० ३९)।

पाचाल अतर्वेद (गगा और यमुना के बीच के प्रदेश) के वडे हिस्से का नाम था(आर्य? अदूरवर्त्तिनी भगवत्ययोध्या। इसे अन्तर्वेदीभूषण पाचाला—राजशेखर बालरामायण, अक १०)। पाचाल के दो विभाग थे, जो उत्तरी और दक्षिणी पाचाल कहलाते थे। उत्तरी पाचाल की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसके खडहर वरेली से २० मील पश्चिम में पाए जाते है। दक्षिणी पाचाल की राजधानी कांपिल्य नगर गगा के तट पर था, जिसको इस समय कपिल कहते है और जो करीब२ वदाऊं के सामने है (देखो खड्गविलास प्रेस का छपा टॉड राजस्थान, प्रथम खड, पृ० ४५)।

कोई-कोई पाचाल को पंजाव का प्राचीन नाम मानते है परन्तु वह भ्रम ही है। पजाव कभी पाचाल नही कहलाया। उसका प्राचीन नाम पचनद मिलता है। (कृत्स्नपञ्चनद चैव तथैवामरपर्वतम्—महाभा०, सभापर्व, अ०३५, श्लो० ११)। अथपञ्चनद गत्वा नियतो नियताशन। (वही, वन प०, अ०८० श्लो०८४)।

(4) देखो (पृ टि.) पृ० ३२८, टिप्पण २। (ना.प्र.प, नवीन सस्करण काशी भाग२, स १९७८)। (मैकडॉनल ओर कीथ, वैदिक इडेक्स, जि० १, पृ० १९९)।

समावेश होता था[1]। उसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गगा के तट पर मेरठ जिले में (मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व में) थी। यह नगर गगा के प्रवाह से नष्ट हो गया। जिससे परीक्षित के सातवें वशधर निचक्रु ने कौशावी को अपनी राजधानी बनाया[2] उसकी दूसरी राजधानी इद्रप्रस्थ (पुरानी देहली) पाडवो के समय में स्थिर हुई थी। राजपूताने का केवल अलवर राज्य का उत्तरी हिस्सा जिसमें तहसील तिजारा आदि है, कुरु देश के अन्तर्गत था।

कुरु देश को कुरुक्षेत्र[3] भी कहते हैं। कौरव-पाडवो का प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध इसी धर्म क्षेत्र में हुआ था।

मत्स्य

मत्स्य देश कुरुक्षेत्र से दक्षिण और शूरसेन से पश्चिम मे था। उसमें अलवर राज्य की तहसील अलवर, राजगढ, टहला आदि उक्त राज्य के पश्चिमी और दक्षिणी हिस्से तथा अलवर से मिला हुआ जयपुर राज्य का बहुत-सा अश था। महाभारत के समय उक्त देश का राजा 'विराट' था, जिसके नाम से उक्त देश की राजधानी विराट् या विराट् नगर कहलाई हो। विराट नगर को इस समय वैराट् कहते है और वह जयपुर राज्य के अतर्गत उक्त नाम की तहसील का मुख्य स्थान है। वह राजपूताने के प्राचीन नगरो में से एक है जहा मौर्यवशी राजा अशोक के लेख मिले हैं[4]।

शूरसेन

मत्स्य देश से पूर्व में 'शूरसेन देश' था। उसके अन्तर्गत मथुरा के आस-पास का प्रदेश (मथुरामडल, व्रज), अलवर राज्य का पूर्वी हिस्सा जिसमें तहसील रामगढ, गोविन्दगढ आदि है, भरतपुर और धौलपुर के राज्य तथा करौली राज्य का बहुत सा अश (उत्तरी) था। उसकी राजधानी मथुरा (मधुपुरी) थी।

---

(1) तैत्तिरीय आरण्यक मे कुरु (कुरुक्षेत्र) की सीमा दक्षिण मे खाडव (वन), उत्तर में तूर्घ्न और पश्चिम में परीणह का होना लिखा है (वही, जि. १, पृ० १७०)।

(2) विष्णु पुराण, अश ४, अध्याय २१।

(3) कुरुक्षेत्र को समतपचक भी कहते थे जिसका कारण ऐसा माना जाता है कि वही परशुराम ने क्षत्रियो को मारकर उनके रुधिर मे पाँच नद्द भरे थे (महाभारत, आदि प०, अ०२, श्लो० १-७)।

(4) कनिंगहाम, कॉर्पस् इक्रिपशन इडिकेरम्, जि० १, पृ०९६-९७।

राजन्य देश

मथुरा के आस-पास के प्रदेश से कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिन पर खरोष्ठी या ब्राह्मी लिपि में 'राजञाजनपदस' (राजन्यजनपदस्य–राजन्य देश का–सिक्का) लेख है[1]। ये सिक्के मथुरा के (उत्तरी) क्षत्रपो के सिक्को की शैली के है और उन पर के खरोष्ठी लिपि के लेख से पाया जाता है कि वे विदेशी राजाओ के चलाए हुए हो। सम्भव है कि मथुरा के आस-पास के प्रदेश अर्थात् शूरसेन देश पर क्षत्रपो का अधिकार होने से पूर्व वहाँ के स्वामी राजन्य अर्थात् क्षत्रिय (राजपूत) थे जिससे उस देश का नाम राजन्य देश भी रहा हो। 'राजन्य देश' शूरसेन या उसके एक विभाग का नाम होना चाहिए।

शिवि

चित्तौड के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर में 'मध्यमिका' नामक प्राचीन नगरी के खडहर हैं। उसको इस समय 'नगरी' कहते हैं। वहाँ से मिले हुए कई एक ताँबे के सिक्को पर ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस–पास की ब्राह्मी लिपि में–'मझिमिकाय शिविजनपदस, (मध्यमिकाया शिबिजनपदस्य—शिबि देश की मध्यमिका का–सिक्का) लेख है,[2] इस पर से अनुमान होता है कि उस समय मेवाड या उसका चित्तौड के आसपास का अश 'शिवि[3] नाम से प्रसिद्ध था। पीछे से वह देश मेवाड (मेदपाट) के अन्तर्गत हो गया या उस नाम से प्रख्यात हुआ और उसका मूल नाम तक लोग भूल गए।

मेद्पाट

उदयपुर राज्य के शिलालेखो तथा ऐतिहासिक पुस्तको में उस राज्य या देश का नाम 'मेदपाट'[4] मिलता है और लोग उसको 'मेवाड' कहते

---

(1) वी० ए० स्मिथ, कैटलॉग् ऑफ दी कॉइंस इन् दी इण्डिअन् म्यूजिअम, कलकत्ता पृ० १६४–६५,१७९–८०।

(2) कनिंगहाम आर्किआलॉजिकल सर्वे, रिपोर्ट जि० ६, पृ० २०३।

(3) हिन्दुस्तान मे शिवि नाम के एक से अधिक देश पाए जाते हैं, शिवि नाम का एक देश लाहौर और मुलतान के बीच था (वहीं, जि० १४, पृ० १४५)। वराहमिहिर ने भारत के दक्षिणी विभाग मे शिबिर (शिवि) नाम देश भी बतलाया है (कर्कटकवनवासिशिबिर फणिकार कोंकणाभीरा —बृहत्संहिता अध्याय १४, कूर्म विभाग, श्लो० १२)।

(4) नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन सस्करण), भाग १, पृ० २६८, टिप्पण ५२।

है। उस देश पर पहले मेद (संस्कृत में) अर्थात् मेव या मेर जाति का अधिकार रहने से उसका नाम मेदपाट (मेवाड) पडा। मेवाड का एक हिस्सा अब तक 'मेवल' कहलाता है तथा मेवो के राज्य का स्मरण दिलाता है। मेवाड के देवगढ की तरफ के इलाके में और अजमेर-मेरवाडा के मेरवाडा प्रदेश में, जिसका अधिकतर अंश मेवाड से ही लिया गया है, अब तक मेरो की आबादी अधिक है। कितने एक विद्वान मेर (मेव, मेद) लोगो की गणना हूणो में करते हैं, परन्तु मेरलोग शाकद्वीपी ब्राह्मणो की नाईं अपना निकास ईरान की तरफ से बतलाते हैं और मेर (मिहिर) नाम भी वही सूचित करता है, जिससे सम्भव है कि वे पश्चिमी क्षत्रपो के अनुयायी या वंशज हो।

प्राग्वाट्

करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड के गुहिलवंशी राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है जिसमें उनको 'प्राग्वाट'[1] का राजा कहा है। अतएव प्राग्वाट् मेवाड (मेदपाट) का ही दूसरा नाम होना चाहिये। संस्कृत के शिलालेखों[2] तथा पुस्तकों[3] में 'पोरवाड' महाजनो के लिये 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है। वे लोग अपना निकास मेवाड के 'पुर' कसबे से बतलाते हैं जिससे सम्भव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाट् वंशी कहते रहे हो।

वागड[4]

डूंगरपुर और बांसवाडा राज्यो से मिलने वाले शिला-लेखो में उक्त राज्यो

---

(1) प्राग्वाटेवनिपालभालतिलक श्रीहंसपालोभवत्तस्मादभूभृदमूत सत्य-समिति, श्रीवैरिसिंहाभिध। इंडि० एंटि०, जि० १८ पृ० २१७।

(2) प्राग्वाटान्वयमुकुल कुटजप्रसूनविशदयशा (एपि० इंडि०, जि० ८, पृ० २०९) श्रीमदणहिलपुरवास्तव्य श्रीप्राग्वाटजातीय ठ० श्रीचण्डपसुत (वही, पृ० २१९)।

(3) प्राशु प्राग्वाटवंशो भूत्पुरे गुर्जरभूभुजाम (सोमेश्वररचित कीर्ति-कौमुदी, सर्ग ३, श्लोक १)।

(4) वागड के स्थान पर 'वागट' और 'वार्गट' पाठ भी मिलते है (जयति श्रीवागट संघ —राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) मे रक्खी हुई एक जैन मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १०५१ का लेख—अप्रकाशित) वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्र कुलसंभव (हर्षनाथ का लेख, एपि० इंडि० जिल्द

का सम्मिलित नाम 'वागड़'[1] मिलता है और वहाँ के लोगो में वे दोनो राज्य अब तक 'वागड' नाम से ही प्रसिद्ध है । मेवाड का छप्पन जिला' भी जो डूगरपुर राज्य की सीमा से मिला हुआ है, पहले 'वागड' के अन्तर्गत था[2]। 'वागड' नाम की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं मिलता । डूगरपुर और बाँसवाडा के ब्राह्मणो का कथन है कि वागड शब्द 'वाक्जड' शब्द का अपभ्रश है क्योंकि वहाँ की भाषा जड़ अर्थात् कठोर है परन्तु उनका यह कथन कल्पित सा प्रतीत होता है । वागड की भाषा गुजराती है, जिसको जड नहीं कह सकते । उसमें वागड़ से मिलता हुआ 'वगडा' शब्द जंगल के अर्थ में प्रचलित है । सम्भव है कि 'वागड' नाम 'वगड़ा' (वग्गल–जगल) शब्द से निकला हो। राजपूताने का वागड देश पहाडो तथा जगलो से भरा हुआ है । कच्छ राज्य का एक हिस्सा तथा बीकानेर राज्य का एक अश भी वागड़ कहलाता है । सम्भव है कि वे भी पहले वहाँ जगल होने से ही उक्त नाम से प्रसिद्ध हुए हो ।

मरू

संस्कृत में मरू और धन्व[3] (धन्वन्) दोनो शब्द मरूस्थली अर्थात् रेगिस्तान के सूचक मिलते हैं । सामान्य रूप से मरू शब्द राजपूताना के तथा उससे मिले हुए सारे रेगिस्तान का सूचक हो सकता है ।

इस रेगिस्तान के स्थान में पहले सागर (समुद्र) था[4], परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणो से भूमि ऊँची हो जाने से सागर का जल दक्षिण में हटकर समुद्र में मिल गया और रेते का पुंजमात्र रह गया, जिसको मरूकातार' भी कहते थे । यह भी कहा जाता है कि दक्षिण सागर के सेतु बँधवाने को राजी हो जाने पर रामचद्र ने उसे डराने के लिये खेंचा

२, पृ० १२२), राजपूताने में वहुत से ब्राह्मण वागडिये या वागडे कहलाते है ।

(1) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३१, टिप्पण ३०–३१ ।

(2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २८–२६ ।

(3) समानौ मरुधन्वानौ (अमरकोश, काड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५) । देशाम्तान्वन्वशैलद्रुमस (ग) हनमरिद्धीर वाहूपगटान (फ्लीट, गुप्त इन्सक्रिप-शन, पृ० १४६) ।

(4) राजपूताना के रेगिस्तान में सीप, शख, कौडी आदि परिवर्तित पाषाण रूप में (Fossil) मिलते है, जो पहले वहा जल का होना बत-लाते है । रेगिस्तान बन जाने के पीछे भी सिन्धु की सहायक नदी

हुआ अपना अमोघ वाण इधर फेंका, जिससे समुद्र सूख गया[1]। व्यवहारिक सकेत में 'मरू' नाम 'मारवाड' (जोधपुर राज्य) का सूचक माना जाता है। परन्तु जयसिंह सूरि अपने हमीरमदमर्दन नाटक में आबू के परमार राजा धारावर्ष और जालोर के सोनगेर (चौहान) उदयसिंह आदि

घग्गर की एक धारा, जिसको राजपूताने में हाकडा कहते हैं, वीकानेर और जोधपुर राज्यो में वहती हुई सिंध में जाकर सिंधु नदी में मिल जाती थी। जोधपुर, मालानी आदि परगनो में कई गावो मे ईख पेरने के पत्थर के कोल्हू अब तक पडे हुए मिलते हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि पहले यहा हाकडा नदी वहती थी, उसके तट पर गन्नो की खेती होती थी, जिनसे गुड वनाया जाता था। यदि उक्त नदी का प्रवाह वहाँ न होता तो उन रेतीले प्रदेशो में ऐसे वडे घाणो (कोल्हूओ) की सम्भावना ही कैसे होती। पीछे जमीन ऊँची हो जाने के कारण हाकडा का वहना वन्द हो गया, इतना ही नही किंतु मूल घग्गर नदी ही रेगिस्तान में लुप्त हो गई। अव केवल उसके प्राचीन वहाव के मार्ग के चिह्न ही दृष्टिगोचर होते हैं और उसका थोडासा जल वीकानेर राज्य के हनुमानगढ इलाके तक ही आता है जिससे गेहू आदि पैदा होते हैं। उसको वहा वाले कग्गर नदी कहते हैं। इस नदी के सूख जाने के विषय में लोकोक्ति है कि 'वे पानी मुल्तान गए' जो समय चूककर पछताने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। उसकी रोचक और उपदेशपूर्ण कथा यह प्रसिद्ध है कि किसी समय उस प्रदेश के किसी राजा ने एक लक्खी वणजारे (लाख वैलो पर माल ढो ले जानेवाले व्यापारी) की स्त्री हर ली और उसके पति के वहुत प्रार्थना करने पर भी न लौटाई। वणजारा इस अत्याचार का वदला लेने की प्रतिज्ञा करके गया और जहाँ नदी का मोड इधर था, वही कई वर्षो तक उसने अपने लाखो वैल इसी काम पर लगा दिए कि नदी के प्रवाह में वालू डालकर इधर की भूमि ऊँची करदी जाय। उसका परिश्रम सफल हुआ और जल का प्रवाह दक्षिण न होकर पश्चिम की तरफ हो गया।

इस पर अपने देश को उजडता देख राजा वहुत गिडगिडाया और उसकी स्त्री को लौटाने लगा, किन्तु वणजारे ने यही उत्तर दिया कि वे "पानी मुलतान गये।"

(1) तस्य तद्वचन श्रुत्वा सागरस्य महात्मन। मुमोच त शर दीप्त पर सागरदर्शनात् ॥३२॥ तेन तन्मरुकान्तार पृथिव्या किल विश्रुतम्।

तीन राजाओ को 'मरूदेश' का राजा बतलाता है[1]। अतएव 'मरूदेश' की सीमा आबू के राज्य (अर्बुद देश) तक होनी चाहिये। इस समय खास 'मरू (मारवाड)' में जोधपुर राज्य के शिव, मालाणी और पच पद्रा के परगने ही माने जाते हैं। मरू के स्थान में 'मरूस्थल,'[2] 'मरूस्थली', 'मरूमडल'[3], तथा 'मारु'[4] शब्दो का प्रयोग भी मिलता है।

अर्बुद

यह प्राचीन मरूदेश का एक अश था। परमारो के राज्य के समय उसमें सिरोही राज्य, जोधपुर राज्य का कितना एक अश, दाता राज्य[5] और पालनपुर[6] राज्यो का समावेश होता था। अर्बुद देश की राजधानी चन्द्रावती आबू के नीचे थी।

माड

राजपूताना के शिलालेखो में माड[7] नाम जेसलमेर राज्य का सूचक मिलता है और वहा वाले अबतक अपने देश को 'माड' ही कहते हैं।

निपातित शरोयत्र वज्राशनिसमप्रभ ॥३३॥ (वाल्मिकीय रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग २२)

(1) श्रीसोमसिंहोदय सिंहधारा वर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथै। दिशोऽष्ट जेतु स्फुटमष्टवाहुस्त्रिभि समेतैरभवत्प्रभुर्न्न (हमीरमदमर्दन, पृ० ११)

(2) मरूस्थल्या यथा वृष्टि (महाभारत)।

(3) प्रवन्ध चिन्तामणि पृ० २७५।

(4) वही पृ० २४३।

(5) दाता राज्य इस समय गुजरात मे गिना जाता है, परन्तु पहले वह आवू के राज्य का ही अश था। दाता आवू के नीचे है और उसकी सीमा सिरोही राज्य से मिली हुई है। वहा के राणा आवू के परमार राजा धारावर्ष के ही वशज है।

(6) पालनपुर का राज्य भी इस समय गुजरात मे गिना जाता है परन्तु पहले आबू के परमारो के राज्य के अन्तर्गत था। इतना ही नहीं किन्तु पालनपुर शहर आबू के राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रल्हादनदेव ने वसाया था। उसका प्राचीन नाम 'प्रल्हादनपुर' था जिसका अपभ्रंश 'पालनपुर' है। (प्रल्हादन [illegible] श्री अर्बुदाचलविभु स बभूव पूर्वम्। तेन स्वनामविदित [illegible]पापनापम् सस्थापित पुरमिद मुदित प्रजाटच) (हम्मीरमदमर्दन[illegible], १३)।

(7) येन प्राप्ता [illegible] (प्रतिहारवंशी [illegible] [illegible] का घटियाले का शिलालेख—एपि० इण्डि०, जि० ९, पृ० २८०)

वहाँ की स्त्रियां विशेषकर 'मांड' राग गाती हैं जिससे सम्भव है कि उक्त राग का नाम 'माड देश' के नाम पर से पडा हो ।

वल्ल

'माड' के सम्बन्ध में उद्धृत किये हुए घटिआले के वि० स० ९१८ के शिलालेख के अवतरण में 'वल्लमाड्यो,' पद में वल्ल और माड देशो के नाम समासरूप में दिये हैं जिससे अनुमान होता है कि ये दोनो देश एक दूसरे से मिले हुए थे । जैसलमेर के राज्य का प्राचीन नाम 'माड' था यह ऊपर बतलाया जा चुका है । जैसलमेर के राजाओ के पूर्वज भट्टिक (भाटी) देवराज का पहले इस देश पर राज्य था, ऐसा नीचे त्रवणी देश के वृतान्त में बतलाया जायगा । इसलिये अनुमान होता है कि वल्ल देश, जैसलमेर राज्य से मिले हुए उसके दक्षिण अथवा पूर्व के जोधपुर राज्य के किसी हिस्से का नाम होना चाहिये । अबतक ऐसे साधन उपस्थित नहीं हुए, जिनसे इस देश के ठीक स्थान का सन्तोष-जनक निर्णय हो सके ।

त्रवणी

जोधपुर से मिले हुए मण्डोर के प्रतिहार [पढिहार, परिहार] राजा बाउक के वि० स० ८९४ के शिलालेख में 'त्रवणीवल्लदेशयो' समासान्त पद है जिससे पाया जाता है कि त्रवणी और वल्ल देश भी परस्पर मिले हुए थे । उस लेख में उक्त राजा के पूर्वज शिलुक के वर्णन में लिखा है कि 'उसने त्रवणी और वल्ल देशो में (अपनी) सीमा स्थिर की (अर्थात् उनको अपने राज्य में मिला लिया) और वल्ल मण्डल (देश) के राजा भट्टिक देवराज को पृथ्वी पर पछाडकर उसका छत्र छीन लिया'' । काव्य-मीमासा आदि अनेक ग्रथो का कर्ता प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो वि० स० ९३७ और ९७७ के बीच विद्यमान था, अपनी काव्यमीमासा में त्रवण

---

(1) तत श्रीशिलुको जात पुत्तो दुर्व्वारविक्रम ।
येन सीमा कृता नित्यास्य (त्र) वणीवल्लदेशयो ॥ [१८]
भट्टिक देवराज यो वल्लमण्डलपालक ।
निपात्य तत्क्षण भूमौ प्राप्तवान् छ (० वाच्छ) त्रचिह्नक ॥ [१९]
रायल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, ई० स० १८९४, पृ० ६ । उक्त जर्नल में उस लेख का जो सवत् छपा है वह अशुद्ध है । ऊपर दिया हुआ सवत् राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में रक्खे हुए मूल लेख से दिया गया है ।

देश की गणना भारत के पश्चिमी विभाग के देशों में[1] करता है और भिन्न-भिन्न देशो के लोगो से बोली जाने वाली भिन्न-भिन्न भाषाओं का वर्णन करते हुए सुराष्ट्र और त्रवण आदि के लोगो का सुन्दरता के साथ अप-भ्रश और सस्कृत का बोलना बतलाता है[2] । इसलिये त्रवणी या त्रवण देश, वल्ल से मिला हुआ, जोधपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में, जो सुराष्ट्र (सोरठ, काठियावाड) से उत्तार में है, होना चाहिये । यद्यपि त्रवणी देश के स्थान का निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो सका, तो भी सम्भव है कि जोधपुर राज्य के मालाणी जिले या उससे मिले हुए किसी विभाग का वह सूचक हो ।

गुर्जर या गुर्जरत्रा

इस समय राजपूताने के दक्षिण का देश ही, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है गुजरात (गुर्जर) कहलाता है जो सस्कृत गुर्जरत्रा से मिलता है, परन्तु प्राचीन काल में गुर्जर या गुर्जरत्रा देश में केवल वर्तमान गुजरात का ही नहीं; किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर से दक्षिण तक के सारे पूर्वी हिस्से का भी समावेश होता था। गुर्जरत्रा नाम का अर्थ 'गुर्जरो (गूजरो) से रक्षित' होता है इसलिये यह नाम उक्त देश पर पहले किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति का राज्य रहने से पडा होगा (जैसे मेद या मेव से मेदपाट या मेवाड) । परन्तु वहाँ पर गुर्जर जाति का राज्य कब हुआ और कब तक रहा इसका अब तक कोई पता नहीं लगा। प्राचीन शोध के विद्वानो ने इस विषय में जो कुछ लिखा है, वह केवल कपोल कल्पना ही है । चीनी यात्री हुएन्साग ने अपनी यात्रा की पुस्तक 'सि-यु-कि' में मालवे (१) के पीछे क्रमश· ओचलि (१), कच्छ, वलभी आनदपुर, सुराष्ट्र (सोरठ) और गुर्जर देशो का वर्णन किया है । गुर्जर देश के विषय में उसने लिखा है कि 'वलभी के देश से १८०० ली(३०० मील) के करीब उत्तर में जाने पर गुर्जर राज्य में पहुँचते है। यह देश अनुमान ५००० ली (८३३ मील) के घेरे में है । उसकी राजधानी—जिसको 'भीनमाल' कहते है, ३०ली (५ मील) के घेरे में है। जमीन की पैदा-वार और लोगो की रीत-भात सुराष्ट्र (सोरठ) वालो से मिलती हुई

---

(1) देवसभाया परत पश्चाद्देश। तत्न देवसभसुराष्ट्रदशेरकत्रवण भृगुकच्छ कच्छीयानर्तार्बुदब्राह्मणवाह यवन प्रभृतयो जनपदा (काव्यमीमासा पृ० ९४)।

(2) सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये पठन्त्यर्पितसौष्ठवम् ।
अपभ्रशावदशानि ते संस्कृतवचास्यपि ।। (वही, पृ० ३४) ।

है । आवादी घनी है । लोग घनाढय और सम्पन्न है । वे वहुधा नास्तिक (वौद्ध धर्म को न मानने, वैदिक धर्म को माननेवाले) है । वौद्ध धर्म के अनुयायी थोडे ही है । यहाँ एक सघाराम (वोद्धो का मठ) है, जिसमें अनुमान १०० श्रवण (वौद्ध साधु) रहते है, जो हीनयान[1] और सर्वास्तिवाद[2] निकाय के माननेवाले है । यहाँ कई दहाई देव-मन्दिर है, जिनमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के लोग रहते है । राजा क्षत्रिय जाति का है । उसकी अवस्था २० वर्ष की है । वह वुद्धिमान और साहसी है । उसकी वौद्ध धर्म पर दृढ आस्था है और वह वुद्धिमानो का वडा आदर करता है[3] ।

हुएन्साग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील वतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश वहुत वडा था और उसकी लम्वाई अनुमान ३०० मील होनी चाहिये । उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमाल, श्रीमाल) जोधपुर राज्य के दक्षिण में है जो गुजरात से मिला हुआ है । हुएन्साग वहाँ के राजा को क्षणि लिखता है परन्तु उसके नाम या जाति का परिचय नहीं देता । वह ई० सन् ६४१ (वि० स० ६६८) के आसपास भीनमाल आया था, जहाँ के रहनेवाले[4] (भिल्लमालकाचार्य) ज्योतिषी व्रह्मगुप्त ने शक स० ५५० (वि० स० ६८५) में अर्थात् हुएन्साग के वहाँ आने से १३ वर्ष पूर्व व्राह्मण (व्रह्म) स्फुट [सिद्धान्त] नामक ग्रथ लिखा, जिसमें उसने वहाँ के राजा का नाम व्याघ्रमुख और उसका वश

---

(1) जैनो में जैसे दो फिर्के दिगवरी और श्वेताम्वरी है, वैसे ही वोद्धो मे महायान, हीनयान और मध्यमयान नाम के तीन फिर्के थे । मध्यमयान के अनुयायी वहुत कम थे और अव तो कही कोई नही रहा ।

(2) वौद्ध धर्म में कर्मकाड के विचार मे चार सम्प्रदाय या शाखा भेद है, जिनको निकाय कहते है । ये सम्प्रदाय आर्यसघिक, आर्यस्थविर, आर्य समति और सर्वास्तिवाद कहलाते है इनमे से प्रत्येक के अवातर भेद कई एक है ।

(3) सेम्य्अल वील, 'वुद्धिस्ट रेकर्डज आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' जि० २० पृ० २६६–७० ।

(4) इडि एंटि०, जि० १७, पृ० १६२ । शकर वालकृष्ण दीक्षित । भारतीय ज्योतिषा चा प्राचीन आणि अर्वाचीन इतिहास (मराठी), पृ० १२७ ।

चाप[1] (चापोत्कट, चावडा) बतलाया गया है। हुएन्सांग के समय भीनमाल का राजा व्याघ्रमुख या उसका पत्र हो। चावडो का राज्य भीनमाल पर कब तक रहा, इसका ठीक-ठीक अनुसधान अब तक नहीं हुआ, परन्तु वि० स० ७९६[2] के आसपास तक तो वे ही वहाँ के राजा थे यह

---

(1) श्रीचापवशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणा ।
पचाशत्सयुक्तैर्वर्षशतै पचभिरतीतै (५५०) ।।७।।
ब्राह्म स्फुटसिद्धान्त सज्जनगणितगोलविप्रीत्यै ।
त्रिशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।८।।
(ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय २४)

(2) लाट के सोलकी सामन्त पुलकेशी (च्यवनिजनाश्रय) का एक दानपत्र कलचुरि सवत् ४९० (वि० स० ७९६) का मिला है (विएना ओरिएँटल काग्रेस का कार्य-विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २३०) जिसमें उसके विषय में लिखा है कि 'ताजिको' (अरबो, मुसलमानो) ने तलवार के बल से सैधव (सिन्ध), कच्छेलल (कच्छ), सौराष्ट्र (सौरठ), चावोटक (चापोत्कट, चाप, चावडे), मौर्य (मोरी), गुर्जर आदि के राज्यो को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओ को जीतने की इच्छा से प्रथम नवसारिका (नवसारी) पर आक्रमण किया, उस समय घोर सग्राम कर उस (पुलकेशी) ने ताजिको को विजय किया। उस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ (उसके स्वामी) ने उसको चार खिताब दिए। अब तक के शोध से चावडो (चावटोक, चापोत्कट चाप) का तीन जगह अधिकार होने का पता चलता है। पहला भीनमाल में, दूसरा अनहिलवाडे (पाटण) पर और वढवाण (काठियावाड मे) पर। भीनमाल पर तो चावडो का अधिकार वि० स० ६८५ के पूर्व से चला आता था जैसा कि ब्रह्मगुप्त के कथन से पाया जाता है। अनहिलवाडे (पाटण) का राज्य चावडा वनराज ने वि० सं० ८२१ मे अनहिलवाडा वसाकर स्थापित किया। वढ़वाण के चाप (चावडा) वशी सामन्त धरणीवराह का हड्डाला मे मिला हुआ दानपत्र शक सवत् ८३६ (वि० स० ९७१) का है जिसमे उक्त राजा के पूर्व के चार नाम और है। उनमे से सब से पहले (विक्रमार्क) का वि० स० ८९१ के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है। पुलकेशी के ताम्रपत्र के चावोटक (चावडो) का सबध इन सौराष्ट्र के चावडो से है भी नही, क्योकि उसमें सौराष्ट्र की विजय के बाद चावडो के राज्य का नष्ट करना लिखा है। मुसलमानो की ऊपर लिखी हुई चढाई वि० स० ७८८–७९६ के बीच किसी समय हुई थी क्योकि पुलकेशी अपने बडे भाई मंगलराज्य के पीछे उसकी जागीर का

निश्चित है । वि० स० ७९६ और ८६५ के बीच किसी समय चावडों से रघुवन्शी प्रतिहारो (पडिहारो, परिहारो) ने गुर्जर देश का राज्य छीन लिया । फिर उन्होंने अपने बाहुबल से कन्नौज का प्रबल राज्य अपने राज्य में मिला लिया जिसके पीछे उनकी राजधानी कन्नौज हो गई । इससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते है । चावडो के समय गुर्जर देश कहाँ से कहाँ तक था, इसका कोई उल्लेख (सिवाय हुएन्तसग के उपर्युक्त कथन के) नहीं मिलता । प्रतिहार राजा भोजदेव (पहले) के वि० स० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि 'उसने गुर्जरत्राभूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (जिले) का सिवा गाव[1] दान किया' । यह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना जिले के सिवा गाँव के एक टूटे हुए मदिर से मिला था । इस ताम्रपत्र का डेंडवानक जिला, जोधपुर राज्य के उत्तरी-पूर्वी हिस्से का नाम डीडवाना है और सीवा गाव डींडवाना से ७ मील पर का सेवा गाँव है । कालिजर से मिले हुए नवीं शताब्दी के आसपास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मण्डल (देश) के मगलानक (गाँव) से निकले हुए[2] जेंडुक के बेटे देद्दक की बनाई हुई मडपिका के प्रसग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख है । मगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मगलाना गाँव है जो मारोठ से १९ मील पश्चिम में और डींडवाने से कुछ ही दूरी पर है । इन दोनो लेखो से पाया जाता है कि गुर्जरत्रा या गुर्जर देश की उत्तरी सीमा जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा के पास तक थी ।

जिस समय प्रतिहारो का राज्य गुर्जर देश तथा कन्नौज पर रहा

स्वामी हुआ था और मगलराज का दानपत्र शक सवत् ६५३ (वि० स० ७८८) का मिला है (इडि० एटि०, जि० १३, पृ० ७५) । ऐसी दशा मे मुसलमानो की उक्त चढाई के समय चावडे भीनमाल के अतिरिक्त और कही नही थे ।

(1) गुर्ज्जरत्राभूमौ डेण्ड्वानकविषयसम्ब (म्ब)द्धसिवाग्रामाग्रहारे० (एपि० इडि०, जि० ५, पृ० २११) । मूल म सवत् अशुद्ध छपा है । हमने राजपूताना म्यूजिअम् (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल ताम्रपत्र से ऊपर सवत् दिया है ।

(2) श्रीमद्गुर्ज्जरत्रामण्डलान्त पातिमगलानकविनिर्गत० (वही, पृ० २१०)

चाप[1] (चापोत्कट, चावडा) बतलाया गया है। हुएन्सांग के समय भीनमाल का राजा व्याघ्रमुख या उसका पुत्र हो। चावडों का राज्य भीनमाल पर कब तक रहा, इसका ठीक-ठीक अनुसंधान अब तक नहीं हुआ, परन्तु वि० सं० ७९६[2] के आसपास तक तो वे ही वहाँ के राजा थे यह

---

(1) श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणां ।
पंचाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पंचभिरतीतैः (५५०) ।।७।।
ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितगोलविप्रीत्यै ।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ।।८।।
(ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, अध्याय २४)

(2) लाट के सोलंकी सामन्त पुलकेशी (च्यवनिजनाश्रय) का एक दानपत्र कलचुरि संवत् ४९० (वि० सं० ७९६) का मिला है (विएना ओरिएँटल कांग्रेस का कार्य-विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २३०) जिसमें उसके विषय में लिखा है कि 'ताजिकों' (अरबों, मुसलमानों) ने तलवार के बल से सैंधव (सिन्ध), कच्छेल्ल (कच्छ), सौराष्ट्र (सौरठ), चावोटक (चापोत्कट, चाप, चावडे), मौर्य (मोरी), गुर्जर आदि के राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओं को जीतने की इच्छा से प्रथम नवसारिका (नवसारी) पर आक्रमण किया, उस समय घोर संग्राम कर उस (पुलकेशी) ने ताजिकों को विजय किया। उस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ (उसके स्वामी) ने उसको चार खिताब दिए। अब तक के शोध से चावडों (चावटोक, चापोत्कट चाप) का तीन जगह अधिकार होने का पता चलता है। पहला भीनमाल में, दूसरा अनहिलवाडे (पाटण) पर और बढवाण (काठियावाड में) पर। भीनमाल पर तो चावडों का अधिकार वि० सं० ६८५ के पूर्व से चला आता था जैसा कि ब्रह्मगुप्त के कथन से पाया जाता है। अनहिलवाडे (पाटण) का राज्य चावडा वनराज ने वि० सं० ८२१ में अनहिलवाडा बसाकर स्थापित किया। बढ़वाण के चाप (चावडा) वंशी सामन्त धरणीवराह का हड्डाला से मिला हुआ दानपत्र शक संवत् ८३६ (वि० सं० ९७१) का है जिसमें उक्त राजा के पूर्व के चार नाम और हैं। उनमें से सब से पहले (विक्रमार्क) का वि० सं० ८९१ के आसपास विद्यमान होना स्थिर होता है। पुलकेशी के ताम्रपत्र के चावोटक (चावडों) का संबंध इन सौराष्ट्र के चावडों से है भी नहीं, क्योंकि उसमें सौराष्ट्र की विजय के बाद चावडों के राज्य का नष्ट करना लिखा है। मुसलमानों की ऊपर लिखी हुई चढाई वि० सं० ७८८–७९६ के बीच किसी समय हुई थी क्योंकि पुलकेशी अपने बडे भाई मंगलराज्य के पीछे उसकी जागीर का

निश्चित है। वि० स० ७६६ और ८६५ के बीच किसी समय चावडो से रघुवन्शी प्रतिहारो (पडिहारो, परिहारो) ने गुर्जर देश का राज्य छीन लिया। फिर उन्होने अपने बाहुबल से कन्नौज का प्रबल राज्य अपने राज्य में मिला लिया जिसके पीछे उनकी राजधानी कन्नौज हो गई। इससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते है। चावडो के समय गुर्जर देश कहाँ से कहाँ तक था, इसका कोई उल्लेख (सिवाय हुएन्तसग के उपर्युक्त कथन के) नहीं मिलता। प्रतिहार राजा भोजदेव (पहले) के वि० स० ६०० के दानपत्र में लिखा है कि 'उसने गुर्जरत्राभूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (जिले) का सिवा गाव[1] दान किया'। यह दानपत्र जोधपुर राज्य के डीडवाना जिले के सिवा गाँव के एक टूटे हुए मदिर से मिला था। इस ताम्रपत्र का उँडवानक जिला, जोधपुर राज्य के उत्तरी-पूर्वी हिस्से का नाम डींडवाना है और सीवा गाव डींड्वाना से ७ मील पर का सेवा गाँव है। कालिजर से मिले हुए नवीं शताब्दी के आसपास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मण्डल (देश) के मगलानक (गाँव) से निकले हुए[2] जेंदुक के बेटे देद्दक की बनाई हुई मडपिका के प्रसग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किए जाने का उल्लेख है। मगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मगलाना गाँव है जो मारोठ से १६ मील पश्चिम में और डींडवाने से कुछ ही दूरी पर है। इन दोनो लेखो से पाया जाता है कि गुर्जरत्रा या गुर्जर देश की उत्तरी सीमा जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा के पास तक थी।

जिस समय प्रतिहारो का राज्य गुर्जर देश तथा कन्नौज पर रहा

स्वामी हुआ था और मगलराज का दानपत्र शक सवत् ६५३ (वि० स० ७८८) का मिला है (इडि० एटि०, जि० १३, पृ० ७५)। ऐसी दशा मे मुसलमानो की उक्त चढाई के समय चावडे भीनमाल के अतिरिक्त और कहीं नही थे।

(1) गुर्ज्जरत्राभूमौ डेण्ड्वानकविषयसम्ब(म्ब)द्धसिवाग्रामाग्रहारे० (एपि० इडि०, जि० ५, पृ० २११)। मूल म सवत् अशुद्ध छपा है। हमने राजपूताना म्यूजिअम् (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल ताम्रपत्र से ऊपर सवत् दिया है।

(2) श्रीमद्गुर्ज्जरत्रामण्डलान्त पातिमगलानकविनिर्गत० (वही, पृ० २१०)

उस समय दक्षिण (कोंकन) पर राष्ट्रकूटो (राठौडो) का राज्य था। राठौडो के राज्य की उत्तरी सीमा गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा से मिली हुई थी और ये दोनो पडोसी एक दूसरे से बराबर लडते रहे[1]।

---

(1) दक्षिण के राठौड राजा ध्रुवराज के पुत्र गोविन्दराज (तीसरे) के गाँव (नासिक जिले के डिडोरी तालुके मे) मे मिले हुए शक सवत् ७३० (वि० सं० ८६५) के दानपत्र मे उसके पिता ध्रुवराज के विषय में लिखा है कि 'गौडराज्य की लक्ष्मी को सहसा अपने हाथ करने पर मत्त बने हुए वत्सराज को उस (ध्रुवराज) ने अपने अजेय सैन्य से मरू (मारवाड) के मध्य मे भगाया और गौड के राजा से जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने थे, वे उससे छीन लिये, इतना ही नही किन्तु साथ ही उसके दिगतव्यापी यश को भी, (हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्त-प्रवेश्याचिराद्दुर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव(ब)लैर्यो वत्सरो(रा)ज ब(ब)लैं। गौडीय शरदिन्दुपादधवल छत्रद्वय को(के)वल तस्मान्नाहृत तद्य-शोपि ककुभा प्राते स्थित तत्क्षणात्-इडि० एटि०, जि० ११, पृ० १५७। यही श्लोक उक्त गोविंदराज तीसरे के राधनपुर से मिले हुए शक स० ७३० (वि० स० ८६५) के दानपत्र मे उसके पिता ध्रुवराज के सबध मे मिलता है–एपि० इडि०, जि० ६, पृ० २४३। लाट देश पर शासन करने वाले राठौड सामन्त कर्कराज के बडौदा से मिले हुए शक स० ७३४ (वि० स० ८६९) के दानपत्र मे उक्त कर्कराज के विषय मे लिखा है कि–उसका भुज पिटे हुए मालव (मालवा के राजा) की रक्षा के निमित्त गौड (बिहार) और वग (बगाल) के राजाओ को जीतकर दुष्ट बने हुए गुर्जरेश्वर (गुर्जर देश के राजा) के लिये अर्गल (रोक, आड) सा हो गया' अर्थात् उसने मालवा के राजा को गुर्जर देश के राजा से बचाया (गौडेन्द्रवगपतिनिर्जयदुर्व्विदग्धसद्गूर्ज्जरेश्वरदिगर्गलता च यस्य। नीत्वा-भुजं विहतमालवरक्षणार्थं स्वामी तथान्यमपि राज्यछ(फ)लानि भुक्ते-इडि० एंटि०, जि० १२, पृ० १२ पृ० १६०)। ऊपर के दोनो ताम्रपत्रो में गौडदेश की राज्यलक्ष्मी छीननेवाले राजा का नाम वत्सराज दिया है और उसका मारवाड मे भागना लिखा है, जिससे पाया जाता है कि वह मारवाड का राजा था। तीसरे ताम्रपत्र मे उसका गौड और वग के राजाओ को जीतकर दुष्ट बनना लिखने के साथ उसको गूर्जरेश्वर अर्थात् गुर्जर देश का राजा कहा है। वत्सराज प्रतिहार वश का राजा और गुर्जर देश का स्वामी था और सभव है कि उसीने चावडो से भीनमाल का राज्य छीना हो। ग्वालियर से मिले हुए प्रतिहार राजा भोज के समय के शिलालेख

राठौड़ो का राज्य लाट देश तक ही था,इसलिये गुर्जर देश के प्रतिहारों के राज्य की दक्षिणी सीमा लाट[1] की उत्तरी सीमा अर्थात् मेढी नदी तक होनी चाहिये । ऐसी दशा में जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा पूर्वी हिस्सा तथा उसके दक्षिण का मेढी नदी तक का वर्तमान गुजरात का हिस्सा गुर्जर देश कहलाता था, परन्तु अब जोधपुर का कोई भी अंश गुजरात में नहीं गिना जाता। अब तो राजपूताने के दक्षिण के पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दमण (पुर्तगालवालों का) तक का सारा प्रदेश, तथा काठियावाड और कच्छ, गुजरात में गिना जाता है, जहां गुजराती भाषा बोली जाती है ।

मालव (मालवा)

मालव जाति के लोगों ने प्राचीन अवंती[2] और आकर[3] देशो पर अपना अधिकार जमाया, तब से उनके अधीन के उक्त देशो का सम्मिलित

मे वत्सराज का बलपूर्वक भिंडी के वंश का साम्राज्य छीनना लिखा है (आर्किआलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिआ, ई० स० १९०३-४, पृ० २८०-१)। शायद भिंडी गुर्जर देश के चावडो का मूल पुरुष हो। इसी तरह दक्षिण के राठौड़ो तथा प्रतिहारो के परस्पर लड़ने के और भी उदाहरण मिलते है ।

(1) लाट देश की उत्तरी सीमा बम्बई हाते के खेडा जिले मे बहनेवाली मेढी नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्रपत्रादि मे पाया जाता है । सामान्य रूप मे मही और तापी नदियों के बीच का देश लाट माना जाता है (देशो की सीमाए बदती घटती रही है) ।

(2) मालवे का पश्चिमी हिस्सा जिसकी राजधानी उज्जैन (उज्जयिनी थी) ।

(3) मालवे का पूर्वी हिस्सा । महाक्षत्रप रुद्रदामन् के शक संवत् ७२ (वि० संवत् २०७) से कुछ ही बाद के जूनागढ (काठियावाड मे) के लेख मे 'पूर्वापराकरावती' लिखा है । कालिदास अपने मेघदूत में अवंती से पूर्व के देश को दशार्ण कहता है और उसकी राजधानी विदिशा (भेलसा-ग्वालियर राज्य मे) होना बतलाता है । सम्भव है कि आकर के अन्तर्गत दशार्ण देश हो ।

नाम मालव (मालवा) हुआ । राजपूताने के परतावगढ, कोटा और झालावाड राज्य तथा टोक[1] राज्य के छवडा, पिरावा और सीरोज[2] के इलाके पहले मालव देश के अन्तर्गत थे, जैसा कि वहाँ से मिलने-वाले शिलालेखो से पाया जाता है।

ना प्र प, काशी, (नवीन सस्करण),
भाग २, सख्या ३, स० १९७८वि०

---

(1) राजपूताने मे केवल टोक का राज्य ही ऐसा है जिसके अलग अलग हिस्से एक दूसरे से मिले हुए नही हैं । टोक (खास) और अलीगढ के जिले तो प्राचीन काल मे सपादलक्ष के अन्तर्गत थे । नीवाहेडा मेदपाट (मेवाड) का हिस्सा था और छवडा, पिरावा आदि मालव के अन्तर्गत थे ।

(2) परतावगढ, कोटा और झालावाड के राज्यो से जो शिलालेख मिलते हैं, उनसे उन राज्यो का पहले मालवे के अन्तर्गत होना पाया जाता है । कोटे का थोडा सा उत्तरी हिस्सा मालवा के परमारो के पडोसी चौहानो के अधिकार मे था और सपादलक्ष में गिना जाता था ।

प्रकरण दूसरा

इतिहास और पुरातत्त्व

१-भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास[1] की सामग्री ।

यह कहना अनुचित न होगा कि शृङ्खलाबद्ध लिखा हुआ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, और ईसवी सन् की १८वीं शताब्दी के मध्य तक उसके लिये सामग्री एकत्रित करने का उद्योग भी हुआ हो-ऐसा पाया नहीं जाता। ई० स० १७८४ में सर विलिअम जोन्स के यत्न से एशिया खण्ड के इतिहास, साहित्य आदि विषयो की शोध के लिये 'एशिआटिक् सोसाइटी' नाम की सभा कलकत्ते में क़ायम हुई, तभी से हमारे यहाँ के प्राचीन इतिहास की सामग्री की खोज और उसके सग्रह का काम शुरू हुआ, और अब तक अनेक विद्वानो के श्रम तथा गवर्नमेण्ट की उदार सहायता से बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो गई। वह किस प्रकार की है और यहाँ के प्राचीन इतिहास के लिये कहाँ तक उपयोगी हो सकती है यह बात बतलाने का प्रयत्न इस लेख में किया जाता है।

उक्त सामग्री को हम नीचे लिखे हुए चार मुख्य विभागो में बाँट सकते है,-

(क)-हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तकें।

(ख)-यूरोप, चीन, तिब्बत, और सीलोन वालो की तथा मुसलमानो की लिखी हुई प्राचीन पुस्तकें।

(ग)-प्राचीन शिला लेख और ताम्रपत्र।

(घ)-प्राचीन सिक्के मुद्रा तथा शिल्प।

(क) हमारे यहाँ की प्राचीन पुस्तके।

(अ)— पुराण-जिन प्राचीन राजाओ के नाम, आज तक के मिले हुए प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के या विदेशियो के लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थो में नहीं मिलते, उनकी शृखलाबद्ध वंशावलियां कितने एक पुराणो में मिल जाती हे, अतएव हमारे यहाँ के विशेष प्राचीन इतिहास के लिये तो केवल

---

(1) 'प्राचीन इतिहास' से हमारा अभिप्राय बहुत प्राचीन काल से लगाकर मुसल्मानो के हाथ से हिन्दुराज्यो के अस्त होने, अथवा उनकी स्वतन्त्रता नष्ट होने के समय तक के इतिहास से है।

पुराण ही सहायक हो सकते है। १८ पुराणो मे से वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माड और श्रीमद्भागवत ये पाँच इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है[1] क्योकि इनमें सूर्य, चन्द्र, यादव, शिशुनाग, नद, मौर्य, सुग, काण्व, आध्रभृत्य आदि वशो के राजाओ की शृङ्खलाबद्ध वशावलियाँ तथा किसी-किसी का कुछ चरित्र भी मिल जाता है, और शिशुनाग नद, मौर्य, सुग, कण्व तथा आध्रभृत्य वश के राजाओ में से बहुधा प्रत्येक का राजत्वकाल तथा ई० स० की चौथी-शताब्दी मे राज्य करने वाले प्रतापी गुप्तवश तक के राजवशो का पता भी इनसे लगता है, परन्तु बडी त्रुटि यह है कि कोई साल-सवत् इनमें नही दिया और भिन्न२ प्रदेशो पर राज्य करने वाले कई समकालीन राजवशो का एक दूसरे के बाद होना लिख दिया है, ऐसी स्थिति में पुराणो में दिये हुए समस्त राजाओ का राज्य-समय ठीक-ठीक निश्चय करना अशक्य है। ये सब पुराण कई बार छप चुके है, परन्तु उत्तमता के साथ छपे हुए थोडे ही है, इसलिये 'हार्वर्ड ओरीएटल् सीरीज' में छपे हुए सस्कृत ग्रन्थो की शैली पर इनका संपादन होना इतिहास के लिये बहुत आवश्यक है।

(आ)—रामायण और महाभारत—इनमें रघु और कुरु वशो का वृत्तान्त, जो उपर्युक्त पुराणो में सक्षेप से लिखा हुआ है, विस्तार से मिलता है, और इनके लिखे जाने के समय की इस देश की दशा, लोगो की सामान्य स्थित, युद्ध-प्रणाली आदि कई आवश्यकीय बातो का पता भी इनसे भली भाँति लगता है। ये कई बार छप चुके है।

(इ)—राजतरगिणी—ठीक ऐतिहासिक रीति से लिखा हुआ हमारे यहाँ केवल यही एक ग्रन्थ हे, जिसमें काश्मीर का इतिहास है। इसका प्रथम खण्ड अमात्य चपक के पुत्र कल्हण पडित ने ई० स० ११४८ में लिखा था, जिसमें गोमद (प्रथम) से लगाकर सुस्सल के पुत्र जयसिह तक का वृत्तान्त है। यह पुस्तक इतिहास के लिये बडी ही उपयोगी है। कल्हण ने वहाँ के प्रथम राजा गोनद का भारत युद्ध के समय अर्थात् कलियुग सवत् ६५३ (ई० स० से २४४८ वर्ष पूर्व) में विद्यमान होना मान लिया है (जो वास्तव में उस समय से बहुत पीछे हुआ था), जिससे समय की पूर्ति के लिये उस (कल्हण) को कितने ही राजाओ का राज्य समय मनमाना अधिक धरना पडा, यहाँ तक कि रणादित्य (तुजीन तीसरे) का तो उसने ३०० वर्ष राज्य करना लिखदिया है। कल्हण के लेखानुसार प्रसिद्ध मौर्य वशी राजा अशोक का समय उसके वास्तविक समय से करीब १००० वर्ष पूर्व और मिहिरकुल (हूण) का ११०० से अधिक वर्ष पूर्व

---

(1) ई० स० १८९७ के बम्बई (वेकटेश्वर प्रेस) के छपे हुए भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व मे कलकत्ते मे अग्रेजो का राज्य स्थापित होने और

मानना पडता है। ऐसी दशा में कर्कोटक वंश के पूर्व के राजाओं का जो राजत्वकाल उसने माना है, वह विश्वास योग्य नहीं माना जा सकता। भारतवर्ष के दूसरे प्रदेश वालों की अपेक्षा काश्मीर वालों में इतिहास का प्रेम विशेष रहा, जिससे उन्होंने अपने देश का शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिख रक्खा है। ई० स० ११८२ में जोनराजB नामक पंडित ने राजतरंगिणी का दूसरा खण्ड लिखा, जिसमें जहां से कल्हण ने छोड़ा था, वहां से प्रारम्भ कर अपने समय तक का उसने इतिहास दिया है। इस (दूसरे खण्ड) में जयसिंह से लगा कर कोटाराणी तक का (जिसके साथ कश्मीर के हिन्दू राज्य की समाप्ति हुई) हिन्दू राज कर्त्ताओं का और उसके बाद मुसलमानों का वृत्तान्त है। जोनराज के बाद उसके शिष्य श्रीवर पंडित ने ई०स० १४७७ में राजतरंगिणी का तीसरा खण्ड लिखा और उसके पीछे प्राज्यभट्ट ने चौथा खण्ड लिखकर अकबर के कश्मीर विजय के समय तक का वृत्तान्त पूर्ण कर दिया। राजतरंगिणी के ये चारों खण्ड प्रथम कलकत्ते में एशिआटिक् सोसाइटी ने छपवाए थे, जिसके बाद ई० स० १८९२ में डाक्टर स्टीन (M A. Stein PH D) ने कल्हण रचित प्रथम खंड को बडी शुद्धता के साथ बम्बई में छपवाया, फिर पं०दुर्गाप्रसादजी (महामहोपाध्याय) जयपुर वाले ने तथा (उनके देहान्त के बाद) प्रोफेसर पीटर्सन ने ये चारों खण्ड बम्बई की संस्कृत सीरीज में प्रकाशित किए।

(ई) -ऐतिहासिक काव्य आदि—पुराणों में ई० स० की तीसरी शताब्दी के करीब तक राज्य करने वाले राजवंशों की वंशावलियां मिलती हैं, जिसके पीछे ई० स० की छठीं शताब्दी तक के राजाओं का हमारे यहां कुछ भी लिखित इतिहास नहीं मिलता। फिर ई० स० की सातवीं शताब्दी में तथा उसके बाद समय-समय पर कितने एक ऐतिहासिक काव्य, नाटक, चरित आदि के ग्रन्थ लिखे गए जिनसे भी कुछ२ ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रह किया जा सकता है, ऐसी पुस्तकों में से नीचे लिखे हुए ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं —

(१)—हर्ष चरित—यह एक गद्य काव्य है, जिसको प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट ने, जो कन्नौज और थाणेश्वर के प्रसिद्ध बैशवंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) का आश्रित था, ई० स० की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचा था। इस में उक्त

अष्टकौशल्या (पार्ल्यामेंट) से राज्य प्रबन्ध होने का भी वर्णन दिया है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो वह सारा पर्व थोडे ही समय का बना हुआ प्रतीत होता है। उसके रचयिता ने उपर्युक्त पुराणों से जो वृत्तान्त उद्धृत किया है, उसको भी अपनी तरफ से बढा-घटाकर अविश्वसनीय बना दिया है। अतएव प्राचीन इतिहास के लिये वह सर्ग निरुपयोगी है।

आवश्यकता है कि यहाँ 'रघुवश' का अभिप्राय किस और कहाँ के राजवश से है।

एकलिंग महादेव मेवाड के राजाओ के इष्टदेव हैं इतना ही नहीं, किन्तु वे मेवाड के राज्य के स्वामी और मेवाड के राजा उनके दीवान (प्रतिनिधि) माने जाते है। इसीसे राजपूताने में मेवाड (उदयपुर) के महाराणा 'दीवान' या 'दीवानजी' नाम से भी प्रसिद्ध है। एकलिंगजी के पुजारी, वहाँ के मठ के अधिपति (महत) और मेवाड के राजाओ के परम्परागत गुरु, बापा रावल से लगा कर महाराणा भीमसिंह के समय के आसपास तक[38] लकुलीश सम्प्रदाय के ये कनफटे साधु (नाथ) ही थे। इनको राज्य की तरफ से हजारों रुपयो की जागीर मिली हुई थी। अतएव जिस रघुवंश की कीर्ति को ये साधु (नाथ) हिमालय से सेतु तक फैलाते थे वह रघु का वश मेवाड का राजवश ही हो सकता है। दूसरा कोई नहीं। बापा रावल के सिक्के और नरवाहन के समय की उक्त प्रशस्ति से तो यही पाया जाता है कि बापा से नरवाहन तक अर्थात् वि० स० ७९१ से १०२८ तक मेवाड़ के राजा सूर्यवंशी माने जाते थे। इसके पीछे प्राचीन

---

38 एकलिंगजी के मठाधिपति लकुलीश सम्प्रदाय के नाथो का आचरण पीछे बिगड गया और वे स्त्रियाँ रखने और मद्य-माँस का सेवन करने लगे। महाराणा भीमसिंह के समय के आस पास उनको वहाँ से अलग किया गया और उनके स्थान पर सन्यासी नियत किए गए। तब से एकलिंगजी के पूजारी और वहाँ के मठाधिपति सन्यासी होते चले आते है। उनको 'गोसाईं' कहते हैं।*

---

* एकलिंगजी के पुजारी महाराणा भीमसिंह (वि० स० १८३४–१८८५ = ई० स० १७७८–१८२८) के समय नाथ सम्प्रदाय के साधु नही थे। एकलिंगजी के मदिर की कचहरी के सामने की ओझा बाव नामक वापिका की महाराणा सग्रामसिंह (द्वितीय, वि० स० १७६७–९० = ई० स० १७१०–३४) के समय की प्रशस्ति से पाया जाता है कि उस समय वहाँ का महन्त अर्थात् पुजारी दसनामी दडी सन्यासी था। इससे अनुमान होता है कि वि० स० की अट्ठारहवी शताब्दी में नाथ साधुओ को वहाँ से हटाकर दण्डी स्वामी नियत किये गये और अब भी वहा के दडी सन्यासी ही महन्त है। वही के समाधा नामक स्थान के स्मारक मदिर की वि० स० १७०८ (ई० स० १६५१) की प्रशस्ति से भी यही बात विदित होती है।
(सम्पा० टि०)

इतिहास के अधकार की दशा में, कई दूसरे राजवशो की नाई[39] उनके वश की उत्पत्ति के विषय में भी एक दूसरी कल्पना भी खडी हो गई ।

---

39 हिंदुस्तान के भिन्न-भिन्न राजवशो का प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण पिछले इतिहास या प्रशस्ति लेखको ने उनकी उत्पत्ति के विषय में कई एक दूसरे से भिन्न कल्पनाएँ की है परन्तु जब उनके प्राचीन शिलालेख या ताम्रपत्र आदि मिल जाते है तभी विदित होता है कि अमुक समय अमुक राजवश की उत्पत्ति अमुक रीति से मानी जाती थी ।

दक्षिण के सोलकियो के शक स० ६४० (ई० स० १०१८) से लगाकर शक स० १२४० (ई० स० १३१८) तक के अनेक ताम्रपत्रो एवम् शिलालेखो में उनको चन्द्रवशी और पाण्डवो की सन्तान लिखा है परन्तु ई० स० १०८५ के आसपास कल्याण के सोलकी राजा विक्रमादित्य (छठे) के राजपडित प्रसिद्ध कश्मीरी कवि बिल्हण ने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' नामक सोलकियो के इतिहास का काव्य लिखा । उसमे उनकी उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि "एक समय जब कि ब्रह्मा सध्यावदन कर रहे थे इद्र ने आकर पृथ्वी पर धर्मद्रोह के बढन और देवताओ को यज्ञ-विभाग न मिलने की शिकायत कर उसके निवारण के लिये एक वीर पुरुष उत्पन्न करने की प्रार्थना की । इस पर ब्रह्मा ने सध्याजल से भरे हुए चुलुक (अजली, चुल्लू) की ओर ध्यानमय दृष्टि दी । उस चुलुक से त्रैलोक्य की रक्षा करनेवाला एक वीर पुरुष (चौलुक्य = सोलकी) उत्पन्न हुआ" । यदि बिल्हण को दक्षिण के सोलकियो के अपने समय से पहले के या अपने समय के ही शिलालेख या ताम्रपत्र मिल जाते और उनमें उनका चन्द्रवंशी (पाण्डवो की सतान) होना लिखा मिल जाता तो सभव है कि वह वैसा ही लिखता और ब्रह्मा के चुलुक से चौलुक्य (सोलकी) की उत्पत्ति मानने की क्लिष्ट कल्पना न करता । गुजरात के सोलकियो की प्रशस्तियाँ आदि लिखनेवालो को दक्षिण के सोलकियो के पुराने शिलालेख और दानपत्र देखने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो, जिससे अनहिलवाडे के सोलकी राजा कुमारपाल के समय के चित्तौड के किले के लेख और वडनगर की वि० स० १२०८ (ई० स० ११५१) की प्रशस्ति एव त्रिलोचनपाल के श० स० ६७२ (१०५१) के दानपत्र के तय्यार करनेवाले पडितो ने वही ब्रह्मा के चुलुक से चौलुक्य का उत्पन्न होना बतलाया, परन्तु प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र (हेमाचार्य) ने, जो कुमारपाल के समय तक जीवित थे, दक्षिण के सोलकियो के ताम्रपत्रादि के अनुसार सोलकियो का

मुहणोत नैणसी अपनी ख्यात के प्रारम्भ में ही मेवाड़ के राजाओ के विषय में लिखता है कि "सीसोदिये प्रारम्भ में गहिलोत (गुहिलोत) कहलाते थे। पहले इनका राज्य दक्षिण में नासिक त्र्यंबक की तरफ था। इनके पूर्वज सूर्य की उपासना करते थे। मंत्र ध्यान करने पर सूर्य आ प्रत्यक्ष होता था, जिससे कोई जोधा उसको जीत न सकता था। उसके पुत्र न हुआ।

चन्द्रवंशी और पाण्डवो की सन्तान होना लिखा है। इसी तरह वि० स० १४९७ (ई० स० १४४०) के आसपास जिनहर्षगणि ने 'वस्तुपालचरित' रचा, जिसमें सोलकियो को चन्द्रवशी माना है। इन दोनो जैन विद्वानो के उक्त कथन से अनुमान होता है कि गुजरात के ब्राह्मण विद्वानो की अपेक्षा जैन विद्वानो में इतिहास का ज्ञान अच्छा था। चेदि के हैहय (कलचुरी) वशी राजा युवराजदेव (दूसरे) के समय की बिल्हारी (जबलपुर ज़िले में) की प्रशस्ति बनानेवाले कवि ने प्रसगवशात् सोलकियो की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा है कि "भरद्वाज के वीर्य से महाबली भारद्वाज (द्रोण) उत्पन्न हुआ। उसने अपना अपमान करनेवाले राजा द्रुपद को शाप देने के लिये अपने चुलुक में जल लिया तो उसमें से साक्षात् विजय की मूर्ति-रूप एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिससे चौलुक्य (सोलकी) वंश चला।" पृथ्वीराज-रासो के कर्ता ने आबू पर्वत पर वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से चालुक्क (सोलंकी) का उत्पन्न होना बतलाया और आज-कल के सोलकी चन्द्रवशी होने की पुरानी बात को न जानने से अपने को अग्निवंशी ही कहते है (सोलकियो की उत्पत्ति के विषय की ऊपर लिखी हुई सब बातो के मूल प्रमाणो के लिये देखो, मेरा बनाया हुआ 'सोलकियो का प्राचीन इतिहास', प्रथम भाग, पृ० ३–१३ और नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन सस्करण, भाग १, सख्या २, पृ० २०७–२१८।

इसी तरह राठौड वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी भिन्न२ कल्पनाएँ मिलती है। दक्षिण के राठौड राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय शक स० ७८२ (ई० स० ८६०) के कोनूर के शिलालेख मे (एपि० इन्डि०, जि० ६, पृ० २९), गोविंदराज (चौथे, सुवर्णवर्ष) के शक स० ८५२ (ई० स० ९३०) के खम्भात से मिले हुए दानपत्र में (एपि० इडि०, जि० ७, पृ० ३७), उसी राजा के शक स० ८५५ (ई० स० ९३३) के सागली से मिले हुए दानपत्र में (इन्डि० ऐंटि० जि० १२, पृ० २४९) कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष के शक स० ८८० (ई० स० ९५८) के कर्हाड के दानपत्र में (एपि० इडि०, जि० ४, पृ० २८२) और कर्क-

उसने पुत्र के लिये सूर्य से विनती की तब सूर्य ने कहा कि अवा देवी की जात बोलो और पुत्र की इच्छा करो जिससे गर्भ रहेगा। राजा ने जात बोली राणी के गर्भ रहा। जब राणी जात देने को चली, राजा की सूर्य की उपासना मिट गई, शत्रुओ ने उस पर हमला कर दिया। राजा लडाई में

राज (दूसरे,—अमोघवर्ष) के शक स० ८६४ (ई० स० ९७२) के खर्डा के दानपत्र में राठौडो का यदुवशी (यादव) होना लिखा है। राठौड राजा इन्द्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) के शक स० ८३६ (ई० स० ९१४) के बगमुरा से मिले हुए दो दानपत्रो मे (बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० १८, पृ० २५७, २६१) और कृष्णराज (तीसरे, अकालवर्ष) के शक स० ८६२ (ई० स० ९४०) के देवली से मिले हुए दानपत्र में (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० १९२, १९३) राठौडो का चन्द्रवश की यदु शाखा के सात्यकि के वश में होना लिखा है। हलायुध पडित ने अपनी रची हुई 'कविरहस्य' नामक पुस्तक में उसके नायक राठौड राजा कृष्णराज को सोमवश (चन्द्रवश का भूषण कहा है (बम्बई गैजेटियर, जि० १, भाग २, पृ० २०८–२०९)। दक्षिण के कलचुरी (हैहय) वशी राजा विज्जल के वर्तमान शक स० १०८४ (ई० स० ११६१) के मनगोलि के शिलालेख में राठौडो को दैत्यवशी लिखा है (एपि० इन्डि०, जि० ५, पृ० २०)। राठौडो के भाट उनके मूल पुरुष को राक्षस (? असुर) हिरण्यकशिपु की सन्तान कहते है (राजस्थान रत्नाकर, तरग १ पृ० ८८) कर्नल टॉड ने इन्द्र की राठ (रीढ की हड्डी) मे उनके मूलपुरुष का उत्पन्न होना लिखा है (टॉड राजस्थान, कलकत्ते का छपा, जि० २, पृ० २) और वर्तमान समय के राठौड अपने को सूर्यवशी रामचन्द्र के पुत्र कुश की सन्तान मानते है।

इसी तरह वर्तमान चौहान अपने को पृथ्वीराजरासो के अनुसार अग्निवशी मानते है, परन्तु अजमेर के अढाई दिन के झोपडे मे, जो वास्तव में चौहान राजा आना (अर्णोराज) के द्वितीय पुत्र राजा वीसलदेव (विग्रहराज) का सरस्वती-मन्दिर था, मिली हुई एक बडी शिला से, जिसपर किसी अज्ञात कवि के बनाए हुए चौहानो के इतिहास के किसी काव्य का प्रारम्भ का भाग खुदा है, पाया जाता है कि उस समय चौहान सूर्य्यवशी माने जाते थे (कोकी रत्नप्रकियानार्क्षी दक्षिण-मीक्षणम् मुररिपोर्देवो रवि पातु व ॥३३॥ तस्मात्नमा नस्वनदण्ड्योनिर-भूज्जनस्य स्खलत स्वमार्गे। वश स दैवोद्गमो नृपाणामनुद्गर्तनोघुणकीट-रध ॥३४॥ समुत्थितोर्कादनरण्ययोनिरत्नप्रपुन्नागवदत्रयास। आश्चर्य्य-

काम आया और उसका गढ़ बांसला शत्रुओ ने ले लिया । राणी अबाजी की जात देकर नागदागाँव में आ ठहरी । वहाँ उसको अपने पति के मारे जाने के समाचार मिले । वह चिता बनवाकर सती होने को तय्यार हुई तो उसे रोकने के लिये ब्राह्मण ने कहा कि सगर्भा स्त्री के सती होने का निषेध है । आपके दिन भी पूरे होने आए है । इससे वह रुक गई । पद्रह बीस दिन बाद उसके पुत्र हुआ । फिर १५ दिन हो जाने पर उसने स्नान किया और चिता तय्यार करवाई । राणी जलने को चली । लडका उसकी गोद में था । वहाँ कोटेश्वर महादेव के मदिर में ब्राह्मण विजयादित्य पुत्र के लिये आराधना किया करता था । उसको बुला कर राणी ने वस्त्र में लिपटा हुआ वह लड़का दे दिया । विजयादित्य ने उसे माल (दौलत) समझ कर ले लिया । इतने में लड़का रोया तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं इस राजपूत के लड़के को लेकर क्या करूँ, बडा होने पर यह शिकार में जानवर मारेगा और दुनिया से लडाई झगडे करेगा, मै पाप में पडूंगा और मेरा धर्म जाता रहेगा, इसलिये यह दान मुझसे लिया नहीं जाता । इस पर राणी ने उससे कहा कि तुमने कहा सो ठीक

मत प्रसरत्कुशोयम् वशोर्थिनां श्रीफलता प्रयाति ॥३५॥ आधिव्याधिकुवृतदुर्गतिपरित्यक्तप्रजास्तत्र ते सप्तद्वीपभजो नृपा समभवन्निक्ष्वाकुरामादय । ॥३६॥ तस्मिन्नथारिविजयेन विराजमानो राजानुरजितजनोजनि चाहमान । ॥३७॥) इसी तरह अजमेर के अन्तिम सम्राट् प्रसिद्ध पृथ्वीराज के समय मे कश्मीरी कवि जयानक (जयरथ) रचित पृथ्वीराजविजय महाकाव्य में जगह-जगह पर चौहानो को सूर्य, रघु, इक्ष्वाकु आदि का वशज कहा है (काकुस्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत् पुराभवत्रिप्रवरम् रघो कुलम् । कलावपि प्राप्य स चाहमानता प्ररूढतुर्यप्रवरम् बभूव तत् ॥२॥७१॥. • भानोप्रतापोन्नतितन्वगोत्रगुरोर्निजेन नृपतेर्जज्ञे सुतो जन्मना ॥७।५०॥) आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए सिरोही के राजाओ के पूर्वज लुढदेव (राव लुभा) के समय के वि० सवत् १३७७ के शिलालेख में चौहानो को चन्द्रवशी कहा है (निजायुधैर्दैत्यवरान्निहत्य सन्तोपयत्क्रोधयुतम् तु वच्छम् [वत्सम्] वच्छयास्तदाराधनतत्पराश्च चन्द्रस्य चन्द्रवश्या ॥८) । कर्नल टॉड ने चौहानो को अग्निवंश मानकर भी उनके गोत्रोच्चार मे उन्हें सोमवशी कहा है (टॉड राजस्थान, जि० २, पृ० ४८६) ।

यहाँ केवल तीन राजवशो के उदाहरण ही दिए गए है । अन्य राजवशो की भी उत्पत्ति यो ही भिन्न२ प्रकार से लिखी मिलती है । विस्तार-भय से उसका उल्लेख नही किया गया ।

है, परन्तु यदि मैं सती होकर जलती हूँ तो मेरा यह वचन है कि इस लडके के वंश में जो होंगे वे १० पुश्त तक तेरे कुल के आचार का पालन करेंगे और तुझको बडा आनन्द देंगे। तब विजयादित्य ने उस लडके को रख लिया। फिर राणी ने उसको धन, भूषण आदि दिया और वह सती हो गई। विजयादित्य के उस लडके के वंशजो ने १० पीढी तक ब्राह्मण धर्म का पालन किया और वे नागदा[40] (नागर) ब्राह्मण कहलाए। विजयादित्य का वह सूर्यवंशी पुत्र गुहिलोत (गुहिल) सोमदत (सोमादित्य) कहलाया। उसके पीछे सीलावत (शीलादित्य) आदि हुए[41]।" यही कथा मेवाड की पुरानी ख्यातो में भी मिलती है और कर्नल टॉड ने भी बहुत कुछ इसीको उद्धृत किया है[42] परन्तु उसमें गुहादित्य (गुहिल) के पिता को वलभीनगर (काठियावाड़) का अंतिम राजा शीलादित्य माना है, जिसके समय में वलभी का राज्य नष्ट हुआ था और उसकी माता का नाम पुष्पावती दिया है। शीलादित्य का नाम न तो मुंहणोत नैणसी की ख्यात में और न मेवाड की ख्यातो में ही मिलता है। गुहिल का वल्लभी के अंतिम राजा शीलादित्य के वंश में होना भी संभव नहीं, क्योंकि उसका गुप्त सं० ४४७ (वि० सं० ८२३ = ई० स० ७६६-६७) का अलीना का ताम्रपत्र मिल चुका है[43] और मेवाड के राजवंश का शीलादित्य (शील) जो गुहिल से पांचवी पुश्त में हुआ, वि० सं० ७०३ में मेवाड का राजा था, यह सामोली गाँव (मेवाड के भोमट जिले) से मिले हुए उक्त राजा के शिलालेख से निश्चित है। नैणसी के लेख और मेवाड की ख्यातो से यही पाया जाता है कि ब्राह्मण विजयादित्य का पालित पुत्र (गुहिल, गुहदत्त), जो मेवाड़ के राजवंश का मूलपुरुष हुआ, सूर्यवंशी क्षत्रिय था, जैसा कि बापा रावल के सिक्के और नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति से पाया जाता है। मूहणोत नैणसी की लिखी कथा कितनी पुरानी है, यह निश्चित नहीं, परन्तु यह कहा जा सकता है कि वह वि० सं० १७०५ से पूर्व लोगो में परम्परा से प्रसिद्ध चली आती थी क्योंकि नैणसी अपनी ख्यात में, कई जगह, वृत्तान्त भेजने या लिखवानेवाले का नाम और उसके लिखने का संवत् भी

40 नागदा ब्राह्मण नागर है। जैसे प्रश्नोरे नागर ब्राह्मण जो मन्दसौर में जा बसे मन्दसौर (दशपुर) के नाम से दसोरे (दशपुरे) कहलाए वैसे ही वडनगर (आनन्दपुर) के रहनेवाले नागर जो नागदा में आ बसे, उक्त नगर के नाम से नागदे कहलाए।

41 मूंहणोत नैणसी की मारवाडी भाषा की ख्यात, पृ० १।

42 टॉड राजस्थान, पृ० २३७-३८।

43 फ्लीट, गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १७३-८०।

देता है जिससे पाया जाता है कि उसकी ख्यात वि० स० १७०६ और १७२५ के बीच में लिखी गई। नैणसी के कथन की छाया राजा शक्तिकुमार के समय के वि० सं० १०३४ के शिलालेख में पाई जाती है क्योंकि उसमें लिखा है कि "आनदपुर (बडनगर) से निकल हुए ब्राह्मणो (नागरो) के कुल को आनन्द देनेवाला महीदेव गुहदत्त जिससे गुहिलवश चला[44] विजयी है।" 'महीदेव' के अर्थ के विषय में विद्वानो मे विवाद है। कोई उसका अर्थ 'ब्राह्मण' और कोई 'राजा' करते है, परन्तु नैणसी की कथा के अनुसार विजयादित्य के पालित पुत्र (गुहिल) और उसके वंशजो को चाहे ब्राह्मण कहो, चाहे क्षत्रिय कहो, बात एक ही है।

ई० स० की १५वीं शताब्दी के अन्त के आस-पास तक के शिलालेखों आदि के देखने से यही पाया जाता है कि एक ही समय का एक लेखक तो गुहिल के वशजो को ब्राह्मण लिखता है तो उसी समय का दूसरा लेखक उनको क्षत्रिय बतलाता है।

रावल समरसिह के समय के वि० स० १३३१ के चित्तौड के और १३४३* के आबू के शिलालेखो के रचयिता नागर ब्राह्मण वेदशर्मा कवि ने पहले लेख में बापा को विप्र[45] (ब्राह्मण) कहा है और दूसरे में कहा है कि "ब्रह्मा के सदृश हारीत से बप्पक (बापा) ने पैर के कडे के मिस से क्षात्र तेज प्राप्त किया और अपनी सेवा के छल से ब्रह्मतेज मुनि

---

44 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महीदेव ।
जयति श्रीगुहदत्त प्रभव श्रीगुहिलवशस्य ॥
(इन्डि० एन्टि०, जि० ३९, पृ० १९१)

45 जीयादानन्दपूर्वं तदिह पुरमिलाखण्डसौदर्यशोभि-
क्षोणीप्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमध कुर्व्वदुच्चै समृध्या।
यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनीक्षिप्तयूपो
बप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत(सीष्ट) हारीतराशे ॥
चित्तौड का लेख, श्लोक ६ (भावनगर इस्क्रिप्शन्स, पृ० ७५)

इस लेख में बापा का आनन्दपुर (वडनगर-गुजरात में) से आकर हारीत राशि की चरण-सेवा करना लिखा है, जो विश्वास योग्य नही, क्योकि शिलादित्य, अपराजित, महेंद्र और बापा (कालभोज) की राज-

---

* आबू के अचलेश्वर शिवालय के मठ में महारावल समरसिह के समय की प्रशस्ति है, वह वि० स० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १२८५) की है, वि० स०—१३४३ की नही। (सम्पा० टि०)

को दे दिया"[46] अर्थात् बापा ने क्षात्र धर्म धारण किया।[47] परन्तु उसी रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३५ का एक जैन शिलालेख चित्तौड़ के किले से मिला है जिसमें उक्त रावल के पिता तेजसिंह की राणी जयतल्लदेवी के द्वारा श्याम पार्श्वनाथ का मंदिर बनाए जाने का उल्लेख है। उसमें ऊपर के दोनों लेखों के विरुद्ध गुहिलवंशी राजा सिंह को क्षत्रिय लिखा है[48]। रावल समरसिंह के पीछे महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के वि० सं०

धानी नागदा नगर ही थी। ऐसी दशा में बड़नगर से आना और हारीत रिशि की सेवा कर राज्य पाना कैसे सम्भव हो सकता है। ऐसे ही उक्त लेख में बापा को गुहिल का पिता बतलाया है वह भी स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि उक्त चित्तौड़ के लेख से ३०३ वर्ष पूर्व की नरवाहन के समय की प्रशस्ति में बापा का गुहिलवंशी राजाओं में चन्द्रमा के समान होना लिखा है जो अधिक विश्वास योग्य है। अनुमान होता है पुराने इतिहास से परिचित न होने के कारण प्रशस्ति के कर्ता ने गुहिल से भी पहले आकर नागदे में बसनेवाले विजयादित्य आदि नागरों की कथा का सम्बन्ध मिलाने के लिये नागरों के मूलस्थान आनन्दपुर (बड़नगर) से बापा के आने की कल्पना कर डाली हो।

46 हारीतात्किल बप्पकोऽहिवलयव्याजेन लेभे मह
क्षात्रं धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात्।
एतेऽद्यापि महीभुजः क्षिति तले तद्वंशसंभूतय
शोभंते सुतरामुपात्तवपुषः क्षात्रा हि धर्म्मा इव ॥११॥
आबू का शिलालेख (इंडि० एंटि०, जि० १६, पृ० ३४७)

इस लेख में बापा का हारीत की सेवा कर राज्यश्री पाना भी लिखा है (हारीत शिवसंगमंगविगमात्प्राप्त स्वसेवाकृते बप्पाय प्रथिताय सिद्धिनिलयो राज्यश्रिय दत्तवान् ॥१०॥) जो सर्वदा असम्भव है। मेवाड़ का राज्य तो गुहिलवंशियों के अधिकार में गुहिल से जो, बापा का आठवाँ पूर्वपुरुष था, चला आता था, जैसाकि हमने आगे बतलाया है।

47 नैणसी की ख्यात में गुहिलवंशियों का उसकी माता सती के वचनानुसार १० पुश्त तक ब्राह्मणों के आचार-विचार का पालना लिखा है। बापा गुहिल का ८वाँ वंशधर था ऐसा हमारे शोध में पाया जाता है। यहाँ दो पुश्त का अंतर पड़ता है जिसका कारण या तो जो वंशावली शिलालेखों में मिलती है, उसमें एक नाम का छूट जाना या नैणसी की ख्यात की संख्या में भूल का हो जाना हो।

48 क्षत्रियगुहिलपुत्रसिंह० (इंडि० एंटि०, जि० ३६, पृ० १८६)

१५१७ की कुंभलगढ़ की बडी प्रशस्ति में, जहां राजवश-वर्णन के पहले पुरानी प्रसिद्धियो के अनुसार मेवाड के कुछ राजाओ का हाल दिया है वहां उपर्युक्त चितौड के वि० स० १३३१ के लेख का वही श्लोक उद्धृत कर[49] वापा को विप्र (ब्राह्मण) कहा है और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग-माहात्म्य' में 'उक्त च पुरातनै कविभि', कहकर वि० स० १०३४ के आटपुर (अहाड) के लेख का वही श्लोक उद्धृत किया है जिसमें गुहदत्त को आनन्दपुर (बडनगर) से निकले हुए ब्राह्मणो (नागरो) के वश को आनन्द देनेवाला लिखा है[50] । परन्तु उसी महाराणा कुभकर्ण के पिता महाराणा मोकल ने अपनी महाराणी वाघेली (बघेली) गौरांबिका के पुण्य के निमित्त एकलिंगजी से ६ मील दूर शृगी ऋषि के स्थान पर वि० स० १४८५ में एक वापी वनवाई जिसकी प्रशस्ति के रचयिता योगीश्वर कविराज वाणीविलास ने, कुभलगढ़ की प्रशस्ति और एकलिंग-माहात्म्य के विरुद्ध, उक्त महाराणा मोकल के दादा क्षेत्र (क्षेत्रसिंह, खेता) को 'क्षत्रियवशमडनमणि' लिखा है[51] । महाराणा कुभकर्ण के द्वितीय पुत्र रायमल के राज्य के समय एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिणद्वार की वि०स० १५४५ की प्रशस्ति में बापा को 'द्विज'[52] और उसी महाराणा के समय के बने हुए 'एकलिंग माहात्म्य' (एकलिंग पुराण) में 'ब्राह्मण' लिखा है परन्तु उसके विरुद्ध उसी महाराणा के राजत्वकाल के वि० स० १५५७ (न कि १५९७ जैसा कि छपा है) के नारलाई गांव (जोधपुर राज्य के गोडवाड

49 जीयादानदपूर्वम्० (देखो ऊपर, टिप्पण ४५)।

50 आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुला० (देखो ऊपर टिप्पण ४४)

51 एव सर्दमकटक समगमद्भूमडल भूपति
हमीरो ललनास्मर सुरपदं सपाल्य काश्चित्समा ।
सम्यग्वर्महर तत स्वतनय सुस्थाप्य राज्ये निजे
क्षेत्र क्षत्रियवशमडनमणि प्रत्यर्थिकालानलं ।।५।।

शृगी ऋषि के स्थान की प्रशस्ति (अप्रकाशित)

52 श्रीमेदपाटभुवि नागह्रदे पुरेभू-
द्वाप्पो द्विजः शिवपदार्चितवृत्ति ।

(भावनगर इस्क्रिप्शस, पृ० ११८)

ऐसे ही महाराणा कुभकर्ण रचित 'रसिकप्रिया' नामक 'गीतगोविंद' की टीका में वापा को 'द्विज' वतलाया है (श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्य श्री-बप्पनामा द्विजपुङ्गवोभूत् । हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपोऽभवद्य. ।।५।।

जिले में) के जैनमंदिर के शिलालेख में गुहिदत्त (गुहदत्त) बप्पाक (बापा), खुम्माण आदि राजाओं को सूर्यवंशीय लिखा है।[53]

इस प्रकार एक ही समय के ब्राह्मण-लेखक तो गुहिलवंशियों का ब्राह्मण होना, और जैन तथा साधु-लेखक सूर्यवंशी और क्षत्रिय होना बतलाते हैं। इस भिन्नता का कारण मूंहणोत नैणसी की पुस्तक से ऊपर उद्धृत की हुई कथा से स्पष्ट हो जाता है।

बापा रावल का समय।*

इस सिक्के के समय के लिये बापा रावल का समय निश्चय करना आवश्यक है। पुराने राजाओं का समय निर्णय करने में उनके शिलालेख और दानपत्र बड़ी सहायता देते हैं क्योंकि उनमें बहुधा उनका निश्चित संवत् दिया हुआ होता है परन्तु बापा के राजत्वकाल का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। अतएव अन्य साधनों से उसका निर्णय करना पड़ता है। उपर्युक्त वि० सं० १०२८ की राजा नरवाहन के

53 श्रीमेदपाटदेशे। श्रीसूर्यवंशीयमहाराजाधिराजश्रीसि(शी)लादित्यवंशे श्रीगुहिदत्तराउलश्रीबप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये। राणाहमीरश्रीषे(खे)तसिंह श्रीलखमसिंहपुत्रश्रीमोकलमृगांकवंशोद्योतकारक अतुलमहाबलराणा श्रीकुम्भकर्ण-पुत्रश्रीरायमल्लविजयमानप्राज्यराज्ये

(भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० १४१)

* मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश और बापा रावल क्षत्रिय वर्ण का था या विप्रवंशी, इस विषय में यथेष्ट चर्चा हो चुकी है। दसवीं शताब्दी के पूर्व के शिलालेखों आदि में तो इस विषय का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेखों में से एकलिंगजी के नाथों के मन्दिर की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति में गुहिलवंश के राजा रघुवंशी होने का संकेत है, जो सूर्यवंश की उपशाखा है। अभी थोड़े ही वर्ष हुए सम्भवतः मेवाड़ के नागदा से ही एक त्रुटित प्रशस्ति मिली है, जिसका कुछ भाग नष्ट हो गया है, परन्तु उक्त प्रशस्ति मेवाड़ के राजा वैरट ? के समय की पाई जाती है, जो मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का समकालीन था। सौभाग्य से इस प्रशस्ति का संवत् का भाग सुरक्षित रह गया, जिससे पाया जाता है कि वह प्रशस्ति वि० सं० १०८३ (ई० स० १०२६) की है। उसमें उनको सूर्यवंशी बतलाया है। यह प्रशस्ति उदयपुर के विक्टोरिया म्यूजियम में सुरक्षित है और अप्रकाशित है।

(सपा० टि०)

समय की प्रशस्ति के राजवर्णन के प्रारम्भ में बप्पक (=बापा) का वर्णन होने से इतना तो निश्चित है कि बापा उक्त संवत् से पहले किसी समय हुआ। मेवाड़ का राजा महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) बड़ा ही वीर तथा विद्वान् भी था। उसके समय से पहले ही मेवाड़ के प्राचीन राजाओं की शुद्ध और शृंखलाबद्ध वंशावली अलभ्य हो गई थी और जनश्रुति या किस्से कहानियों में उनके जो नाम मिलते थे वे ही उपलब्ध थे। इसलिये उसको ठीक करने का यत्न वि० सं० १५१७ में जब कुंभलमेर (कुंभलगढ़) में मामादेव के मन्दिर की विस्तृत प्रशस्ति बनाई गई, किया गया था। क्योंकि उस प्रशस्ति में जनश्रुति के आधार पर पहले कुछ प्रसिद्ध राजाओं का हाल लिखने के बाद 'अनेक प्राचीन प्रशस्तियों के आधार पर राजवंश का वर्णन करना' लिखा है[54]। परन्तु जितनी प्रशस्तियाँ उक्त वंश की इस समय मालूम हुई हैं उतनी उस समय देखी और पढ़ी गई हों ऐसा पाया नहीं जाता। क्योंकि उसके 'राजवर्णन' में जो वंशावली दी है उसमें पुराने राजाओं की नामावली अपूर्ण ही है। उसके पीछे उसी राजा[55] ने कन्ह व्यास[56] की सहायता से "एकलिंग-माहात्म्य" बनाया जिसमें कितने एक राजाओं के वर्णन में तो पहले की प्रशस्तियों के कुछ श्लोक ज्यों के त्यों धरे हैं और बाकी के नए बनाए हैं। कहीं-कहीं तो "यदुक्तं पुरातनैः कविभिः" (जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है) लिखकर उन श्लोकों की प्रामाणिकता दिखाई है। महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) को किसी प्राचीन प्रशस्ति या पुस्तक से बापा रावल का समय ज्ञात हो गया था जो उक्त 'माहात्म्य' में नीचे लिखे अनुसार दिया है—

यदुक्तं पुरातनैः कविभिः ॥

आकाशचन्द्रदिग्गजसंख्ये संवत्सरे बभूवाद्यः।
श्रीएकलिंगशंकरलब्धवरो बाप्पभूपालः ॥

---

54 अथ राजवर्ण्णनं ॥
अतः श्रीराजवंशोत्रप्रव्यक्तं [प्रोच्यते] धुना।
चिरंतनप्रशस्तीनामनेकानामतः क्षणात् (? मवेक्षणात्) ॥१३८॥
(कुम्भलगढ की प्रशस्ति)

55 इति महाराजाधिराजरायरायाराणेरायमहाराणाश्रीकुम्भकर्णमहेंद्रेण विरचिते मुखवाद्यक्षीरसागरे राजवर्णनो नाम [अध्यायः]।
महाराणा कुम्भकर्ण के समय का 'एकलिङ्गमाहात्म्य'।

56 श्रीकुम्भदत्तसर्वार्था गोविंदकृतसत्पथा। पंचाशिकार्थम् (? केयं) व्यासेन कह्नव्यासेन कीर्तिता ॥ (वही)

अर्थ—जैसा कि पुराने कवियो ने कहा है—

सवत् ८१० में श्रीएकलिंग शकर से प्राप्त वर राजा वाप्प (वापा) पहला [प्रसिद्ध राजा] हुआ।

इस श्लोक से इतना ही पाया जाता है कि वापा स० ८१० में हुआ। यह निश्चय नहीं होता कि उक्त सवत् में उसकी गद्दीनशीनी हुई या उसने राज्य छोडा या उसकी मृत्यु हुई। इतना ही निश्चय है कि उक्त पुस्तक की रचना के समय वापा का स० ८१० में होना माना जाता था और यह स० पहले के किसी शिलालेख, ताम्रपत्र या पुस्तक से लिया गया था क्योकि उसके साथ यह स्पष्ट लिखा है कि 'पुराने कवि ऐसा कहते है।'

महाराणा कुभकर्ण (कुभा) के दूसरे पुत्र रायमल के राज्य समय में 'एकलिंग माहात्म्य' नाम की दूसरी पुस्तक बनी जिसको 'एकलिंग पुराण' भी कहते है। उसमें वापा के समय के विषय में यह लिखा है कि—

राज्य दत्त्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागत ।
खचन्द्रदिग्गजाख्ये च वर्षम् नागह्रदे मुने ॥२१॥
क्षेत्रे च भुवि विख्याते स्वगुरोर्गुरुदर्शनम् ।
चकार स समित्पाणिश्चतुर्थाश्रममाचरन् ॥२२॥

(एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय २०)

अर्थ—हे मुनि, संवत् ८१० में, अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर हाथ में समिध[57] लिए वह (वापा) अपने गुरु के पृथ्वी में प्रसिद्ध नागह्रद क्षेत्र (नागद) अथर्व—विद्याविशारद[58] [गुरु] के पास पहुँचा और उसने गुरु का दर्शन किया।

इस कथन से पाया जाता है कि वि स० ८१०[59] में वापा ने अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास धारण किया। वापा के राज्य छोडने का यह

---

57 तद्विज्ञानार्थम् स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्। (मुण्डकोपनिषद् १।२।१२) जिज्ञासु ज्ञान के लिये गुरु के होम की अग्नि के लिये समिध (लकडी) हाथ में लेकर उसके पास जाया करते थे।

58 राजाओं के गुरु और पुरोहितो के लिये अथर्व विद्या (मत्र, अभिचार आदि) में निपुण होना आवश्यक गुण माना जाना था (रघुवश १।५९, ८।४, कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ० १५)

59 बीकानेर दरबार के पुस्तकालय में फुटकर बातो के सग्रह की

संवत् स्वीकार करने के योग्य है क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभकर्ण (कुभा) के एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है कि यह संवत् कपोल-कल्पित नहीं किंतु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मोरियो (मौर्यवंशियो) से चित्तौड का किला लिया यह प्रसिद्धि चली आती है[60]। चित्तौड़ के किले के निकट 'मानसरोवर' नामक तालाब है जिसको लोग राजा मान मोरी का बनाया हुआ बतलाते है।

एक पुस्तक है जिसमे मुहणोत नैणसी की ख्यात का एक भाग भी है। उसमें चन्द्रावतो (सीसोदियो की एक शाखा) की बात भी है, जहाँ राणा भावणसी (भुवनसिंह) के पुत्र चन्द्रा से लगाकर अमरसिंह हरिसिंघोत तक की वंशावली दी है और अन्त में दो छोटे २ संस्कृत काव्य है। इनमें से पहले में रावल बापा से लगाकर राणा प्रताप तक की वंशावली है जिसमें बापा का शक संवत् ६८५ (वि० सं० ८२०) में होना लिखा है—

बापाभिध सम(भ)वत् वसुधाधिपोसौ
पचाष्ठषट्परिमितेथ स(श)कद्रकालो(ले)।

डॉ० टेसीटोरी सम्पादित 'डिसक्रिप्टिव कॅटलाग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मनुस्क्रिप्टस्', भाग २ (बीकानेर स्टेट) पृ० ६३।

इसमे दिया हुआ बापा का समय ऊपर दिये हुए दोनो एकलिंग-माहात्म्यो के समय से १० वर्ष पीछे का है और उसके लिये कोई प्रमाण नही दिया।

60 हर हारीत पसाय सातवीसाँ वर तरणी
मगलवार अनेक चैत वद पचम परणी।
चित्रकोट कैलास आप वस परगह कीधो
मोरीदल मारेव राज राया गुर लीधो।

मुहणोत नेणसी की ख्यात, पत्रा दूसरा, पृ० १॥

नागहृदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभो।
चक्रे बाप्पोऽर्चन चास्मै वरान् रुद्रो ददौ ततः ॥९॥
चित्रकूटपतिस्त्व स्यात्वद्वश्यचरणाद्ध्रुवम्।
मा गच्छताच्चित्रकूट सततिः स्यादखण्डिता ॥१०॥

तत स निर्जित्य नृप मोरी-
जातीयभूपम् मनुराजसज्ञम्।
गृहीतवाश्चिश्रितचित्रकूटं
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती ॥१८॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

उस पर वि० स० ७७० का उक्त राजा का शिलालेख कर्नल टॉड के समय विद्यमान था जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'टॉड राजस्थान' के अन्त में छपा है और जिसमें उक्त राजा मान के पूर्वजो की नामावली भी दी है। उक्त लेख से निश्चित है कि चित्तौड का किला स० ७७० तक तो मान[61] मोरी के अधिकार में था जिसके पीछे किसी समय बापा ने उसे मोरियो से लिया हो। यह समय ऊपर दिए हुए बापा के राज्य छोडने के सवत् ८१० के निकट आ जाता है। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७८४ में बापा का चित्तौड लेना माना है, वह भी करीब-करीब मिल जाता है। तीसरी बात यह है कि मेवाड में यह जनश्रुति चली आती है कि बापा ने 'सवत् एके एकाणुए' अर्थात् स० १९१[62] में राज पाया। मेरे सग्रह में सवत् १७३८ भाद्रपद शुक्ला ८ गुरुवार की लिखी हुई महाराणा कुभकर्ण के समय के एकलिंग माहात्म्य की पुस्तक है। उनमें जहां बापा का समय ८१० दिया है वहाँ हसपद (टूटक का चिह्न) देकर हाशिये पर किसी ने "तत. शशिनन्दचन्द्र स० १९१ वर्षे" लिखा है जो उक्त जनश्रुति के अनुसार ही है। यदि इस जनश्रुति का प्रचार किसी वास्तविक सवत् के आधार पर हुआ हो तो उसके लिये केवल यही कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन लिपि में ७ का अंक पिछले समय के १ के अक का सा होता था जिससे किसी प्राचीन पुस्तक आदि में बापा का समय ७९१ लिखा हुआ रहा हो जिसको पिछले समय में १९१ पढ कर बापा का उक्त सवत् में राज पाना मान लिया गया हो। मेवाड के राजा शीलादित्य के सवत् ७०३ के शिलालेख में ७ का अक वर्तमान १ के अक से ठीक मिलता

---

61 मेवाड में यह प्रसिद्धि चली आती है कि बापा ने चित्तौड का राज्य मानमोरी से लिया था। राजप्रशस्ति में भी वैसा ही लिखा है (देखो टिप्पण ६०, श्लोक १८)। वहाँ 'मनुराज' लिखा है जो 'राजा मान' का सूचक है।

62 यह जनश्रुति पुरानी है क्योकि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में बापा का सवत् १९१ मे राज्य पाना लिखा है—

चित्रकूटपस्तिसत्वम् स्या ॥१०॥ (ऊपर टिप्पण ६० में)
प्राप्येत्यादिवगान् बाप्प एकस्मिन् शतके गते।
एकाग्रनवतिमृष्टे माने पक्षवलक्षके ॥११॥
सप्तमीदिवसे बाप्प स पचदशवत्सर ।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्राज्यवानभूत् ॥१२॥
राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

संवत् स्वीकार करने के योग्य है क्योंकि प्रथम तो महाराणा कुंभकर्ण (कुभा) के एकलिंग-माहात्म्य से पाया जाता है कि यह संवत् कपोल-कल्पित नहीं किंतु प्राचीन आधार पर लिखा गया है। दूसरी बात यह है कि बापा ने मोरियो (मौर्यवशियो) से चित्तौड का किला लिया यह प्रसिद्धि चली आती है[60]। चित्तौड के किले के निकट 'मानसरोवर' नामक तालाब है जिसको लोग राजा मान मोरी का बनाया हुआ बतलाते है।

एक पुस्तक है जिसमे मुहणोत नैणसी की ख्यात का एक भाग भी है। उसमें चन्द्रावतो (सीसोदियो की एक शाखा) की बात भी है, जहाँ राणा भावणसी (भुवनसिंह) के पुत्र चन्द्रा से लगाकर अमरसिंह हरिसिंघोत तक की वशावली दी है और अन्त में दो छोटे २ सस्कृत काव्य है। इनमें से पहले में रावल बापा से लगाकर राणा प्रताप तक की वशावली है जिसमे बापा का शक सवत् ६८५ (वि० स० ८२०) में होना लिखा है--

बापाभिध सम(भ)वत् वसुधाधिपोसौ
पचाष्ठषट्परिमितेथ स(श)कंद्रकालौ(ले)।

डॉ० टेसीटोरी सम्पादित 'डिसक्रिप्टिव कॅटलाग ऑफ वार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मनुस्क्रिप्टस्', भाग २ (बीकानेर स्टेट) पृ० ६३।

इसमे दिया हुआ बापा का समय ऊपर दिये हुए दोनो एकलिंग-माहात्म्यो के समय से १० वर्ष पीछे का है और उसके लिये कोई प्रमाण नही दिया।

60 हर हारीत पसाय सातवीसाँ वर तरणी
मगलवार अनेक चैत वद पचम परणी।
चित्रकोट कैलास आप वस परगह कीधो
मोरीदल मारेव राज राया गुर लीधो।

मुहणोत नेणसी की ख्यात, पत्रा दूसरा, पृ० १॥

नागहृदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभो।
चक्रे बाप्पोऽर्चन चास्मै वरान् रुद्रो ददौ ततः ॥९॥
चित्रकूटपतिस्त्व स्यात्वद्वंश्यचरणाद्ध्रुवम्।
मा गच्छताच्चित्रकूट सतति· स्यादखण्डिता ॥१०॥

तत स निर्जित्य नृप मोरी-
जातीयभूपम् मनुराजसज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रितचित्रकूट
चक्रेत्र राज्यं नृपचक्रवर्ती ॥१८॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

उम पर वि० स० ७७० का उक्त राजा का शिलालेख कर्नल टॉड के समय विद्यमान था जिसका अग्रेजी अनुवाद 'टॉड राजस्थान' के अन्त में छपा है और जिसमें उक्त राजा मान के पूर्वजो की नामावली भी दी है। उक्त लेख से निश्चित है कि चित्तौड का किला स० ७७० तक तो मान[61] मोरी के अधिकार में था जिसके पीछे किसी समय वापा ने उसे मोरियो से लिया हो। यह समय ऊपर दिए हुए वापा के राज्य छोडने के सवत् ८१० के निकट आ जाता है। कर्नल टॉड ने वि० सं० ७८४ में वापा का चित्तौड लेना माना है, वह भी करीव-करीव मिल जाता है। तीसरी वात यह है कि मेवाड में यह जनश्रुति चली आती है कि वापा ने 'सवत् एके एकाणुए' अर्थात् स० १९१[62] में राज पाया। मेरे सग्रह में सवत् १७३८ भाद्रपद शुक्ला ८ गुरुवार की लिखी हुई महाराणा कुभकर्ण के समय के एकलिंग माहात्म्य की पुस्तक है। उनमें जहां वापा का समय ८१० दिया है वहाँ हसपद (टूटक का चिह्न) देकर हाशिये पर किसी ने "तत. शशिनन्दचन्द्र स० १९१ वर्षे" लिखा है जो उक्त जनश्रुति के अनुसार ही है। यदि इस जनश्रुति का प्रचार किसी वास्तविक सवत् के आधार पर हुआ हो तो उसके लिये केवल यही कल्पना की जा सकती है कि प्राचीन लिपि में ७ का अक पिछले समय के १ के अक का सा होता था जिससे किसी प्राचीन पुस्तक आदि में वापा का समय ७९१ लिखा हुआ रहा हो जिसको पिछले समय में १९१ पढ कर वापा का उक्त सवत् में राज पाना मान लिया गया हो। मेवाड के राजा शीलादित्य के सवत् ७०३ के शिलालेख में ७ का अक वर्तमान १ के अक से ठीक मिलता

---

61 मेवाड में यह प्रसिद्धि चली आती है कि वापा ने चित्तौड का राज्य मानमोरी से लिया था। राजप्रशस्ति मे भी वैसा ही लिखा है (देखो टिप्पण ६०, श्लोक १८)। वहाँ 'मनुराज' लिखा है जो 'राजा मान' का सूचक है।

62 यह जनश्रुति पुरानी है क्योंकि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में वापा का सवत् १९१ में राज्य पाना लिखा है—

चित्रकूटपस्तिसत्वम् स्या ॥१०॥ (ऊपर टिप्पण ६० में)
प्राप्येत्यादिवरान् वाप्प एकस्मिन् शतके गते।
एकाग्रनवतिमृष्टे माघे पक्षवलक्षके ॥११॥
सप्तमीदिवसे वाप्प स पचदशवत्सर ।
एकलिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवानभूत् ॥१२॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

हुआ[63] है जिसको प्राचीन लिपियों से परिचय न रखने वाला पुरुष एक का अक ही पढ़ेगा। कर्नल टॉड ने स० ७६६ में बापा का जन्म होना और १५ वर्ष की अवस्था में वि स० ७८४ में मोरियो से चित्तौड का किला लेना माना है। यदि उक्त कर्नल का दिया हुआ बापा के जन्म का सवत् ७६६ ठीक हो तो १५ वर्ष की छोटी अवस्था में चित्तौड़ का किला लेना न मान कर यदि २२ वर्ष की युवावस्था में उस घटना का होना मानें तो वि० स० ७९१ में बापा का चित्तौड का राज्य लेना संभव हो सकता है। ऐसी दशा में बापा का राजत्वकाल सवत् ७९१ से ८१० तक आता है और यही समय उक्त सिक्के का है।

मेवाड के राजाओ की वशावली मे बापा का स्थान।*

मेवाड के राजाओ की वशावली में बापा का ठीक स्थान निश्चित नहीं हुआ। उक्त वंश के राजा अल्लट तक के अर्थात् वि० स० १०१० तक के जो शिलालेख मिले है उनमें तो उस एक ही राजा का नाम दिया है जिसका लेख है। अल्लट के उत्तराधिकारी नरवाहन के समय की उपर्युक्त

63 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ७४ के दूसरे खण्ड में मेवाड के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के लेख से ७०० का अंक उद्धृत किया है जिसमें १०० का चिह्न तो 'स्र' अक्षर (प्राचीन) के समान है। उसकी दाहिनी ओर ७ का अंक है जो वर्तमान १ के अक के सदृश ही है। इस प्रकार से अक लिखने की शैली प्राचीन है।

* मेवाड के गुहिलवशी नरेशो की वशावली भिन्न-भिन्न रूप से मिलती है। कितनी वशावलियो में 'बापा रावल' का नाम है और कितनी में बापा रावल का नामोल्लेख ही नही है। इन पर विचार करते हुए विद्वानो ने 'बापा' उपनाम मानकर उसका कोई वास्तविक नाम होना माना है, परन्तु नाम स्थिर करने में मतभेद है। कोई शील, कोई अपराजित, कोई महेद्र और कोई खुम्माण को बापा होना मानते है। डॉ० ओझा भी बापा उपनाम मानते हुए उसका नाम काल भोज होने की कल्पना करते है, जिसका आधार यह है कि ख्यातो में खुम्माण का पिता बापा होने का उल्लेख है और राजप्रशस्ति महाकाव्य में भी खुम्माण का पिता बापा होना लिखा है। इसके अतिरिक्त डूगरपुर राज्य के ऊपरगाँव नामक ग्राम के श्रेयासनाथ के दिगम्बर जैन मन्दिर की प्रशस्ति में भी जो वि० सं० १४६१ (चैत्रादि वि० सं १४६२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४०५) शुक्रवार की रावल कान्हडदेव के पुत्र प्रताप-

वि० स० १०२८ की प्रशस्ति में तीन नाम दिए थे जिनमें से बीच का नष्ट हो गया है । उसके पीछे की कितनी एक प्रशस्तियो में प्रारम्भ से वंशावली देने का यत्न किया है । उनमें प्रारम्भ से शक्तिकुमार तक की नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है—

सिंह (पाता रावल) के समय की है, खुम्माण वापा का पुत्र होने का वर्णन है—

श्रीमद्वप्पात्मजोभूत्सुसित गुणगणादालिग कुंदकीर्त्ति-
श्चोडश्चुडामणि (त्व) नृपकुलगिरमि (प्रा) प्तवान्सगरेय ।।
(खु) म्माण क्षुण्णशत्रु (पृ) थु रिपुभुजगो वैरडागास्यद्रभूत
जा (तु) श्रीवैरसिंह क्षितितल सरसीपद्मसिंहोवनीज ।।११।।

(मूल प्रशस्ति की छाप से)

यह प्रशस्ति महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड तथा आबू की प्रशस्तियो से केवल १३० वर्ष पीछे की है और महाराणा कुंभकर्ण (कुम्भा) के बनाये हुए कुंभलगढ की वि० स० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्ति से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की है । इसमे डूगरपुर के राजाओं की वंशावली का क्रम भी ठीक हो जाता है, अतएव वह उपेक्षणीय नहीं है । एवम् इससे भी डॉ० ओझा का वापा का पुत्र खुम्माण होने की भीत्ति पर कालभोज को वापा मानना समुचित है, क्योंकि आटपुर की वि० स० १०३४ (ई० स० ९७७) की और कुम्भलगढ की वि० स० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्तियों मे कालभोज के बाद खुम्माण नाम दिया है । उपरोक्त प्रशस्ति अबतक अप्रकाशित है । डा० ओझा ने राजपूताना म्युजिअम अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट में संक्षेप से इसका उल्लेख किया है एवम् डूगरपुर राज्य के इतिहास में भी इस लेख का संवत् मात्र ही दिया है । (सपा० टि०)

हुआ[63] है जिसको प्राचीन लिपियों से परिचय न रखने वाला पुरुष एक का अक ही पढ़ेगा। कर्नल टॉड ने स० ७६९ में बापा का जन्म होना और १५ वर्ष की अवस्था में वि स० ७८४ में मोरियों से चित्तौड का किला लेना माना है। यदि उक्त कर्नल का दिया हुआ बापा के जन्म का सवत् ७६९ ठीक हो तो १५ वर्ष की छोटी अवस्था में चित्तौड का किला लेना न मान कर यदि २२ वर्ष की युवावस्था में उस घटना का होना मानें तो वि० स० ७९१ में बापा का चित्तौड का राज्य लेना सभव हो सकता है। ऐसी दशा में बापा का राजत्वकाल सवत् ७९१ से ८१० तक आता है और यही समय उक्त सिक्के का है।

मेवाड के राजाओ की वंशावली मे बापा का स्थान।*

मेवाड के राजाओ की वशावली में बापा का ठीक स्थान निश्चित नहीं हुआ। उक्त वश के राजा अल्लट तक के अर्थात् वि० स० १०१० तक के जो शिलालेख मिले हैं उनमें तो उस एक ही राजा का नाम दिया है जिसका लेख है। अल्लट के उत्तराधिकारी नरवाहन के समय की उपर्युक्त

63 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ७४ के दूसरे खण्ड में मेवाड के राजा शीलादित्य के संवत् ७०३ के लेख से ७०० का अक उद्धृत किया है जिसमें १०० का चिह्न तो 'स्र' अक्षर (प्राचीन) के समान है। उसकी दाहिनी ओर ७ का अक है जो वर्तमान १ के अंक के सदृश ही है। इस प्रकार से अक लिखने की शैली प्राचीन है।

* मेवाड के गुहिलवशी नरेशो की वशावली भिन्न-भिन्न रूप से मिलती है। कितनी वशावलियो में 'बापा रावल' का नाम है और कितनी में बापा रावल का नामोल्लेख ही नही है। इन पर विचार करते हुए विद्वानो ने 'बापा' उपनाम मानकर उसका कोई वास्तविक नाम होना माना है, परन्तु नाम स्थिर करने मे मतभेद है। कोई शील, कोई अपराजित, कोई महेंद्र और कोई खुम्माण को बापा होना मानते है। डॉ० ओझा भी बापा उपनाम मानते हुए उसका नाम काल भोज होने की कल्पना करते है, जिसका आधार यह है कि ख्यातो में खुम्माण का पिता बापा होने का उल्लेख है और राजप्रशस्ति महाकाव्य में भी खुम्माण का पिता बापा होना लिखा है। इसके अतिरिक्त डूगरपुर राज्य के ऊपरगांव नामक ग्राम के श्रेयासनाथ के दिगम्बर जैन मन्दिर की प्रशस्ति में भी जो वि० सं० १४६१ (चैत्रादि वि० सं १४६२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १४०५) शुक्रवार की रावल कान्हडदेव के पुत्र प्रताप-

वि० स० १०२८ की प्रशस्ति में तीन नाम दिए थे जिनमें से वीच का नष्ट हो गया है। उसके पीछे की कितनी एक प्रशस्तियो में प्रारम्भ से वशावली देने का यत्न किया है। उनमें प्रारम्भ से शक्तिकुमार तक की नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है—

सिह (पाता रावल) के समय की है, खुम्माण वापा का पुत्र होने का वर्णन है—

श्रीमद्बप्पात्मजोभूत्सुसित गुणगणादालिग कुंदकीर्त्ति-
इचोडश्चुडामणि (त्व) नृपकुलशिरसि (प्रा) प्तवान्सगरेय ॥
(खु) म्माण क्षुण्णशत्रु (पृ) थु रिपुभुजगो वैरडागास्यद्रभूत
जा (तु) श्रीवैरसिह क्षितितल सरसीपद्मसिहोवनीश ॥११॥

(मूल प्रशस्ति की छाप से)

यह प्रशस्ति महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड तथा आवू की प्रशस्तियो से केवल १३० वर्ष पीछे की है और महाराणा कुभकर्ण (कुम्भा) के वनाये हुए कुभलगढ की वि० स० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्ति से लगभग ६५ वर्ष पूर्व की है। इससे डूगरपुर के राजाओ की वंशावली का क्रम भी ठीक हो जाता है, अतएव वह उपेक्षणीय नही है। एवम् इससे भी डॉ० ओझा का वापा का पुत्र खुम्माण होने की भीत्ति पर कालभोज को वापा मानना समुचित है, क्योकि आट्पुर की वि० स० १०३४ (ई० स० ९७७) की और कुम्भलगढ की वि० स० १५१७ (ई० स० १४६०) की प्रशस्तियो मे कालभोज के वाद खुम्माण नाम दिया है। उपरोक्त प्रशस्ति अवतक अप्रकाशित है। डॉ० ओझा ने राजपूताना म्युजिअम अजमेर की वार्षिक रिपोर्ट में सक्षेप से इसका उल्लेख किया है एवम् डूगरपुर राज्य के इतिहास में भी इस लेख का सवत् मात्र ही दिया है।

(सपा० टि०)

सख्या	आटपुर (अहाड) का लेख[64] वि० स० १०३४ का	चित्तोड का लेख[65] वि० स० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० स० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० स० १४९६ का	कुभलगढ का लेख[68] वि० स० १५१७ का	शिलालेखो से ज्ञात निश्चित समय
१		बप्प	बप्प (बप्पक)	बप्प		
२	गुहदत्त	गुहिल	गुहिल	गुहिल	गुहिल	
३	भोज	भोज	भोज	भोज	भोज	
४	महेंद्र				महेंद्र	
५	नाग				नाग	
६	शील	शील	शील	शील	बप्प	वि०स० ७०३[69] (शीलादित्य का लेख) वि०स० ७१८[70]
७	अपराजित				अपराजित	
८	महेंद्र (दूसरा)				महेंद्र (दूसरा)	
९	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	
१०	खोम्माण				खुम्माण	
११	मराट	मल्ल [रा ?] ट			मराट	

64 इडि० एटी०, जि० ३९, पृ० १९१। 65 भावनगर इस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४–७७। 66 इडि० एटी०, जि० १६, पृ० ३४७-५१। 67 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ११४–१५। 68 उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में रखा हुआ है, अब तक छपा नही है। कुभलगढ का। 69 देखो ऊपर, टिप्पण ३०। 70 देखो ऊपर, टिप्पण ३१। वि० स० १५१७ का लेख श्री अक्षयकीर्ति व्यास द्वारा ए० इ० में सम्पादित हो चुका है। (स० टि०)।

सख्या	आटपुर (अहाड का लेख[64] वि० स० १०३४ का	चित्तौड का लेख[65] वि० स० १३३१ का	आबू का लेख[66] वि० सं० १३४२ का	राणपुर का लेख[67] वि० स० १४९६ का	कुभलगढ का लेख[68] वि० स० १५१७ का	शिलालेखों से ज्ञात निश्चित समय
१२	भर्तृपट्ट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	भर्तृभट	
१३	सिंह	सिंह	सिंह	सिंह		
१४	खोम्माण (दूसरा)					
१५	महायक	महायक	महायक	महायक		
१६	खोम्माण (तीसरा)	खुम्माण	खुम्माण	खुम्माण		
१७	भर्तृपट्ट (दूसरा)					वि० स० ९९९,[71] १०००[72]
१८	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	वि० स० १००८, १०१०[73]
१९	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	वि० स० १०२८[74]
२०	शालिवाहन				शालिवाहन	
२१	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	वि० स० १०३४,[75]

64 65 66 67 68 देखो पृ० १२५ । 71 देखो ऊपर, टिप्पण ३२ । 72 देखो ऊपर, टिप्पण ३३ । 73 देखो ऊपर, टिप्पण ३४ । ये दोनो सवत् एक ही शिलालेख से है । 74 देखो ऊपर, टिप्पण ३५ । 75 देखो ऊपर, टिप्पण ६४ ।

इन पांचो वंशावलियो में से पहली राजा शक्तिकुमार के समय के वि० स० १०३४ क लेख से है जो सबसे पुरानी और पूर्ण है। उसमें तो 'वापा' (वप्प) का नाम ही नहीं है। परन्तु उसके पूर्व की उपर्युक्त नरवाहन की प्रशस्ति में, जो वि० स० १०२८ की है, वापा को गुहिलवश के राजाओ में चन्द्र के समान (प्रकाशमान) लिखा है जिससे शक्तिकुमार के पहले वापा का होना निश्चित है। ऊपर हम वतला चुके है कि प्राचीन प्राकृत वप्प शब्द प्रारम्भ में पिता का सूचक था और पीछे से नाम के लिये तथा अन्य अर्थो में भी उसका प्रयोग होता था[76]। अतएव यह सभव है कि शक्तिकुमार के लेख में वप्प नाम का प्रयोग न कर वास्तविक नाम का प्रयोग किया हो परन्तु उसका वास्तविक नाम क्या था इसका उक्त लेख से कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता।

दूसरी वंशावली चित्तौड के किले पर की रसिया की छत्री के द्वार के भीतर लगे हुए रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३१ के शिलालेख से है। तीसरी वशावली उसी रावल समरसिंह के समय के वि० स० १३४२ के शिलालेख से है।* ये दोनो शिलालेख चित्तौड के रहनेवाले नागर

76 देखो ऊपर, टिप्पण १६।

* महारावल समरसिंह के समय की चित्तौड की वि० स० १३३१ आषाढ़ सुदि ३ शुक्रवार (ई० स० १२७४) की और आबू के अचलेश्वर के शिवालय के मठ की वि० सं० १३४२ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १२८५) की प्रशस्तियो में मेवाड के गुहिलवशी नरेशो को ब्राह्मण होना वतलाया है और वापा रावल को गुहिल से पूर्व स्थान दिया है। यह दोनो बातें कुडा गाँव की वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) और एकलिंगजी की वि० स० १०२८ (ई० स० ९७१) की प्रशस्तियो से निर्मूल पाई जाती है। किंतु इन दोनो वातो से उक्त प्रशस्तियो का महत्व नष्ट नही होता। गुहिल से सातसौ और वापा रावल से लगभग साढे पाँचसौ वर्ष पीछे ये दोनो प्रशस्तियाँ निर्मित हुई, अतएव इनमें कुछ स्थल पर भूलें भी होना सम्भव है।

आटपुर की वि० स० १०३४ (ई० स० ९७७) की प्रशस्ति (जिसका अब पता ही नही है) के आधार पर गुहिल राजवश की वंशावली का क्रम ठीक होता है। उक्त प्रशस्ति में आरम्भ में 'आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानदनो महीदेव। जयति श्रीगुहदत्त प्रभव श्रीगुहिलवशस्य' श्लोक है। इससे उक्त राजवश का आनन्दपुर से निकलने वाले ब्राह्मण वश से कुछ सम्बन्ध अवश्य पाया जाता है। वह सम्बन्ध किस प्रकार का था,

ब्राह्मण प्रियपटु के पुत्र वेदशर्मा के रचे हुए हैं। ये दोनों वंशावलियाँ अपूर्ण हैं। चित्तौड के ही रहनेवाले ब्राह्मण कवि को वहीं के राजाओ का वंशवर्णन करते समय उनकी पूरी वंशावली का न मिलना यही बतलाता है कि उस समय मेवाड के राजवंश का प्राचीन इतिहास ठीक-ठीक उपलब्ध न था।

यहाँ उसके विवेचन का स्थल नही है। इस प्रशस्ति को हो सकता है कि महारावल समरसिंह के समय की प्रशस्तियो के रचयिता वेदशर्मा ने जो नागर ब्राह्मण था, मूलभूत आधार मानकर उसके उपरोक्त श्लोक का अर्थ ब्राह्मण वाचक समझ मेवाड के राजाओ को ब्राह्मणवंशी लिख दिया हो, जो आश्चर्य की बात नही है। गुहिल के पूर्व बापा का नाम उल्लिखित होने का कारण यह जान पडता है कि वेदशर्मा ने जैन विद्वानो के कथन को मान्य किया, जो मेवाड के राजवंश को वल्लभी से इधर आना मानते रहे। वल्लभी के राजाओ के दानपत्रो में नरेश के में नाम के पूर्व 'बप्प-पादानुध्यात्' वाक्य प्रयोग करने की प्रथा होने से वेदशर्मा ने यह क्रम ग्रहण कर मेवाड के राजाओ की वंशावली को आरम्भ किया और आरम्भ में बापा रावल का वर्णन कर आगे गुहिल से वंशावली तथा इतिहास को वर्णित करने का यत्न किया।

आटपुर की प्रशस्ति तथा इन दोनो प्रशस्तियो में उल्लिखित वंशा-वलियो का मिलान करने पर अधिक अन्तर नही पाया जाता, जैसा कि डॉ० ओझा के इस निबन्ध में दिये हुए वंशक्रम से प्रकट है। इन दोनो प्रशस्तियो में आटपुर में उल्लिखित प्रशस्ति के कुछ नाम नही हैं, जिसका कारण यही जान पडता है कि वेदशर्मा ने उन राजाओ के नाम छोड दिये, जिनका वंश नही चला और जिनसे क्रमपूर्वक वंश चला वे ही नाम रखे। ऐसा बहुधा अन्य प्रशस्तियो और वंशावलियो में भी मिलता है, कि जिनका वंश अवशेष नही रहता, उनके नामो को वर्णन में लिया ही नही जाता।।

उस समय के लिये ही नही, यह अब भी सर्वथा असम्भव है कि ग्रन्थ निर्माण के समय खोजपूर्वक सम्पूर्ण रूप से सामग्री प्राप्त की जाय और तद-नन्तर ही रचना की जाय। यही बात इन प्रशस्तियो के लिये भी हो सकती है एवं जब विभिन्न मत और जनश्रुतियाँ होती है, रचनाकार के लिये कठिन समस्या हो जाती है। और वेदशर्मा के लिये भी यही स्थिति थी। अतएव उसने चित्तौड की प्रशस्ति में बापा को विप्र होना लिखकर आबू की प्रशस्ति में हारीत से क्षात्रत्व प्राप्त करने का उल्लेख किया। प्राय यह नियम है कि जितने साधन प्राप्त होते है, उन ही के आधार पर रचना होती है

यही नहीं, उसकी शुद्ध वंशावली भी ज्ञात न थी, क्योंकि उसमें वापा को, जो गुहिल के वंश में अर्थात् उससे कई पुश्त बाद हुआ, गुहिल का पिता लिख दिया है जो सर्वथा असंभव है। उसी राजा समरसिंह के समय का वि० सं० १३३२ का चीरवा गाँव के मंदिर का शिलालेख ╪ चित्तौड के ही रहनेवाले

और रचनाकार काल्पनिक वुद्धि का हुआ तो वह कल्पना का भी अपनी तरफ से पुट दे देता है। अस्तु, वेदशर्मा को जितने साधन सुलभ थे, उसके आधार पर उसने उभय प्रशस्तियों की देववाणी संस्कृतभाषा में रचना की, जो महारावल समरसिंह के सातसौ वर्ष पूर्व के इतिहास पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य डालती है।

ऐसा पाया जाता है कि युद्धजनक परिस्थितियों के कारण उस समय भी 'गुहिलवंशी नरेशों को कितनी ही वार राजधानियां वदलनी पडी थी। शत्रुओं द्वारा राजधानियां नष्ट-भ्रष्ट हुई। कभी नागदा, कभी आहाड और कभी चित्तौड इस प्रकार राजधानियों के परिवर्त्तन एवम् फिर शत्रुओं का आक्रमण हो तो इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री सुरक्षित रहना असम्भव है। इस अवस्था में महारावल समरसिंह (जो प्राप्त शिलालेखों के आधार पर पाया जाता है कि आठवीं शताव्दी से चवदहवीं तक के गुहिलवंशी नरेशों में विद्वान् और इतिहास-प्रेमी राजा था) नष्ट होते हुए स्ववंश के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिये प्रेरित हुआ और उसने चित्तौड के निवासी वेदशर्मा नामक ब्राह्मण विद्वान् द्वारा वडी-वडी प्रशस्तियों की रचना करवा चित्तौड तथा आवू में स्थापित करवाई, कम महत्व की वात नहीं है। इनमें से चित्तौड की प्रशस्ति का तो पूर्व भाग जिसमें राजा नरवर्मा तक का वर्णन है विद्यमान है और आगे का भाग दूसरी पट्टिका नष्ट हो जाने से अप्राप्य है, जिससे दो सौ वर्ष तक का वर्णन ठीक-ठीक नहीं मिलता है और इसकी पूर्ति अवतक नहीं हो सकी है। यह डॉ० ओझा के परिश्रम का फल है कि उन्होंने अपनी खोज से इस अवधि का इतिहास भी दिया है। आवू की प्रशस्ति इस समय भी विद्यमान है और यह प्रकट करती है कि महारावल समरसिंह का आवू पर भी अधिकार रहा हो।

चित्तौड और आवू की प्रशस्तियों की ऐतिहासिक दृष्टि से अवतक परीक्षा नहीं की गई है। ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो उसमें गुहिलवंश के इतिहास की वहुत सी सामग्री मिलेगी। (सम्पा० टि०)

╪ चीरवा गाँव की प्रशस्ति वि० सं० १३३२ की नहीं होकर वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) की है। (संपा० टि०)

चंत्रगच्छ के जैन साधु भुवनसिंह सूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि ने तैयार किय जिसमें उपर्युक्त नरवाहन के लेख की नाईं वप्पक (वप्पक = वापा) का गुहिल के पुत्र के वंश में अर्थात् गुहिलोत वंश में होना बतलाया है[77] जिससे यह कहना अनुचित न होगा कि रावल समरसिंह के समय में भी ब्राह्मण विद्वानो की अपेक्षा जैन विद्वानो में इतिहास का विशेष ज्ञान था ।

चौथी वंशावली महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के राणपुर के जैन मन्दिर के वि० सं० १४९६ के लेख से है, जिसमें शक्तिकुमार तक की वंशावली उपर्युक्त आबू के वि० सं० १३४२ के लेख के अनुसार ही है । उसमें भी वप्प (वापा) को गुहिल का पिता लिखा है जो स्वीकार करने योग्य नहीं है ।

पांचवीं वंशावली महाराणा कुंभकर्ण के समय के कुंभलमेरु (कुंभलगढ़) के किले के मामादेव के मंदिर की वि० सं० १५१७ की बडी प्रशस्ति से है । उक्त प्रशस्ति की रचना के समय के बहुत पूर्व से ही मेवाड के राजवंश की संपूर्ण और शुद्ध वंशावली उपलब्ध नहीं थी । उसको ठीक करने का यत्न उस समय अनेक प्राचीन प्रशस्तियो के आधार से किया गया[78] । वापा को उसमें कहां स्थान देना इसका भी विचार हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि चित्तौड, आबू और राणपुर के मंदिर के लेखो में वापा को गुहिल का पिता माना था जिसको स्वीकार न कर गुहिल के पांचवें वंशधर शील (शिलादित्य) के स्थान पर वप्प[79] (वापा) का नाम धरा । उसीके आधार पर कर्नल टॉड ने भी शील को ही वापा और उसका वि० सं० ७८४ में चित्तौड लेना माना । परन्तु यदि उस समय उक्त शील (शिलादित्य) का वि० सं० ७०३ का शिलालेख मिल जाता तो सम्भव है कि कर्नल टॉड शील को वापा न मान कर उसके किसी वंशधर को वापा मानते ।

वापा का वि० सं० ८१० में सन्यास लेना ऊपर बतलाया जा चुका है और पिछले कितने एक शिलालेखो[80] तथा ख्यातो[81] में खुमाण को

---

77 देखो ऊपर, टिप्पण १० ।

78 देखो ऊपर, टिप्पण ५४ ।

79 तस्मिन् गुहिलवंशेभूदभोजनामावनीश्वर ।
तस्मान्महींद्रनागाह्वौ वप्पाख्यश्चापराजित ॥१३९॥
(कुम्भलगढ की प्रशस्ति)

80 ता रावलाख्या पदवीं दधानो बापाभिधान स नरराज राजा ॥१९॥
तत खुमाणाभिधरावलोस्मात् ॥२०॥
(राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३)

81 रावल खुमाण बापा रो तिणरो कवित (मूंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २) ।

वापा का पुत्र बतलाया है अतएव कालभोज[82] का नाम बापा होना चाहिए । ऐसा मानने में अपराजित, महेंद्र (दूसरा) और कालभोज इन तीन राजाओ का काल अनुमान १०० वर्ष मानना पडता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से विरल होने पर भी असम्भव नही है क्योकि अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ इन तीन बादशाहो का राज्य-समय शाहजहाँ के कैद होने तक १०२ वर्ष और उसकी मृत्यु तक १०६ वर्ष से कुछ अधिक ही आता है ।

बापा और कालभोज एक ही राजा के नाम मानने पर इस सिक्के के

---

82 महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी ने 'वीरविनोद' नामक मेवाड के बृहत् इतिहास में (भाग १, पृ० २५०) अपराजित के उत्तराधिकारी महेंद्र (दूसरे) का नाम बापा होना माना है जिससे मैं सहमत नही हो सकता क्योकि ऐसा मानने मे उन दो राजाओ के लिये अनुमान १०० वर्ष का समय मानना पडता है और वह कथन मेवाड की जनश्रुति के जो बापा के पुत्र को खुमाण बतलाती है, विरुद्ध है । श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने राजा शक्तिकुमार के समय का आटपुर (आहाड) का लेख छापते समय मेवाड के राजाओ की वंशावली में वप्प (बापा) का स्थान निश्चय करने का यत्न इस तरह किया है कि अपराजित के लेख के वि० स० ७१८ और अल्लट के स० १०१० के बीच २९२ वर्ष का अन्तर है जिसमें १२ राजा हुए । अतएव प्रत्येक राजा का राज्य-समय औसत हिसाब से २४⅓ वर्ष माना । फिर बापा का वि० स० ८१० में राज्य छोडना स्वीकार कर अपराजित के स० ७१८ और बापा के स० ८१० के बीच के ९२ वर्ष के अन्तर के लिये भी वही औसत लगा कर अपराजित से चौथे राजा खुम्माण को बापा ठहराया (इंडि० एंटि० जि० ३९ पृ० १९०) । परन्तु हम उनके कथन को ठीक नही समझते, क्योकि मेवाड में बापा का पुत्र खुमाण होना माना जाता है जैसा कि ऊपर (टिप्पण ८०, ८१ में) बतलाया गया है । दूसरा यह भी कारण है कि जो औसत १२ राजाओ के लिये आई उसी को चार राजाओ के लिये भी मान लेना इतिहास स्वीकार नही करता क्योकि कभी-कभी दो या तीन राजाओ के १०० या उससे अधिक वर्ष राज्य करने के उदाहरण मिल जाते है । बूंदी के महाराव रामसिंहजी की गद्दीनशीनी वि० सं० १८७८ में हुई और वर्तमान वि० स० १९७७ में उनके पुत्र श्रीमान् महाराव रघुवीरसिंहजी बूंदी का शासन कर रहे है । इन ९९ वर्ष में वहाँ दूसरी पुश्त चल रही है । अकबर से शहजहाँ के कैद होने तक के तीन बादशाहो का राज्य समय १०२ वर्ष निश्चित ही है ।

विषय में यह शंका हो सकती है कि कालभोज मुख्य नाम है और बापा प्रेम या महत्त्व का प्रसिद्ध नाम। ऐसे उपाधि के नाम की राजा के पीछे प्रसिद्धि हो सकती है किंतु उसी समय के सिक्के पर तो प्रधान नाम ही होना चाहिए। इसका उत्तर यह है कि एक ही राजा के एक या अधिक उपनाम उसके जीवित काल में प्रचलित होने पर सिक्के और शिलालेखों में अकेले उपनाम का भी प्रयोग मिलता है। जैसे कन्नौज के प्रतिहार (पड़िहार) राजाओं के दानपत्रों में भोजदेव (प्रथम) का नाम भोजदेव ही मिलता है और उसीके विक्रम संवत् ९०० के दानपत्र (एपि० इंडि० जिल्द ५ पृ० २११–१२) में तथा उसी के ग्वालियर से मिले हुए संवत् ९३३ के लेख (एपि० इंडि० जिल्द १, पृ० १५९) में उसका नाम भोजदेव ही है, परन्तु वहीं से मिले हुए विक्रम संवत् ९३२ के उसीके लेख (वहीं, पृ० १५६) में उसका उपनाम 'आदिवराह' ही दिया है और उसीके सिक्के पर भी 'श्रीमदा-॰ दिवराह' लेख है 'भोजदेव' नहीं (स्मिथ, इंडियन म्यूजियम, कलकत्ते के सिक्कों की सूची, पृ० २४१)।

बापा से संबंध रखनेवाली दंत कथाओं की जाँच।

(१) एक कथा ऐसी है कि जिस समय बापा का पिता ईडर के भीलों के हमले में मारा गया उस समय बापा की अवस्था तीन वर्ष की थी। जिस बड़नगरा (नागर) जाति की कमलावती ब्राह्मणी ने पहले गुहादित्य की रक्षा की थी बापा की माता भी उसे लेकर उसीके वंशजों के शरण में चली गई। वे उसको पहले भांडेर के किले में और कुछ समय पीछे नागदा में ले गए। वहाँ का राजा सोलंकी राजपूत था। बापा वहाँ के जंगलों और झाड़ियों में फिरा करता था। एक दिन उसकी भेंट हारीत नामक साधु से हुई जो एक झाड़ी में स्थापित एकलिंगजी की मूर्ति की पूजा किया करता था। हारीत ने अपने तपोबल से उसका राजवंशी एवं भविष्य में बड़ा राजा होना जान लिया और उसको अपने पास रक्खा। बापा हारीत की गौ (कामधेनु) को चराया करता था। उसकी एकलिंगजी में पूर्णभक्ति तथा अपने गुरु (हारीत) में बड़ी श्रद्धा थी। गुरु ने उसकी भक्ति से प्रसन्न हो उसके क्षत्रियोचित यज्ञोपवीत आदि संस्कार किए और जब वह अपने तपोबल से विमान में बैठ कर स्वर्ग में जाने लगा उस समय बापा कुछ देर से वहाँ पहुँचा। विमान पृथ्वी से कुछ ऊँचा चला गया। इतने में हारीत ने बापा को देखते ही कहा कि मुँह खोल। बापा ने वैसा ही किया। गुरु ने ऊपर से पान थूका परन्तु बापा को उसे मुँह में लेने से घृणा हो गई जिससे वह कुछ हट गया और पान उसके पैर पर गिरा।

गुरु ने कहा कि पान तेरे पैर पर गिरा है इस लिये मेवाड की भूमि तेरे वशजो के पैरो मे कभी न निकलेगी । यह आशीर्वाद पाने के बाद बापा अपने नाना मोरीराजा (मान) के पास चित्तौड में जा रहा और अन्त में चित्तौड का राज्य उससे छीन कर मेवाड का राजा हो गया[83] ।

(२) दूसरी कथा यह है कि हारीत ने बापा की सेवा से प्रसन्न होकर स्वर्ग में जाते समय उससे कहा कि अमुक जगह १५ करोड मोहरें गडी है उनको वहां से निकाल कर सेना तैयार कर और चित्तौड के मोरी राजा को मार कर चित्तौड ले ले । बापा ने वैसा ही किया और उससे चित्तौड का राज्य ले लिया[84] ।

(३) तीसरी कथा ऐसी है कि बापा ने हारीत से राज्य-चिन्ह रूपी पैर का सोने का कडा पाया और वह राजा बना[85] ।

ये दतकथाएं और ऐसी ही दूसरी कथाएँ, जिनमें बापा का देवी के बलिदान के समय एक ही झटके से दो भैंसो के सिर उडाना, बारह लाख बहत्तर हजार सेना रखना, चार बकरे खा जाना, पैंतीस हाथ की धोती और सोलह हाथ का दुपट्टा धारण करना ३२ मन का खड्ग रखना,[86] वृद्धावस्था में खुरासान आदि देशो को जीतना, वहीं रहकर वहां की अनेक स्त्रियो से विवाह करना, वहां उसके अनेक पुत्रो का होना, वहीं मरना, मरने पर उसकी अतिम क्रिया के लिये हिंदू और वहां वालो में झगडा होना और अन्त में कबीर की तरह शव की जगह फूल ही रह जाना आदि लिखा मिलता है, ये बातें अतिशयोक्ति के साथ लिखी हुई होने के कारण विश्वासयोग्य नहीं मानी जा सकतीं । उन कथाओ का आशय यही है कि बापा के पास राज्य नहीं था। वह अपने गुरु हारीतराशि की गौएं चराया करता था, गुरु की कृपा से उसको राज्य मिला और वह गुहिल वंश में पहला प्रतापी राजा हुआ । इससे उसको 'आद्यः' (पहला) कहा है । ऐसी कथाओ पर विश्वास कर कोई-कोई यह अनुमान करते है कि

---

83 यह कथा कुछ हेर-फेर के साथ कर्नल टॉड ने लिखी है (राजस्थान, पृ० २३६–४१) । कर्नल टॉड ने शील को बापा मान लिया था जिससे शील के पिता नागादित्य (नाग) का भीलो के हाथ से मारा जाना लिखा है ।

84 मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा १, पृ० २ ।

85 वि० सं० १३४२ का आबू का लेख, श्लोक १०–११ ।

86 मुहणोत नैणसी की ख्यात, पत्रा २, पृ० १० ।

हारीत ने अन्त समय अपने शिष्य बापा को अपनी जागीर देकर राजा बनाया। कोई हारीत के दिए हुए धन से चित्तौड़ का राज छीनना मानते है। परन्तु हम उनसे सहमत नहीं हो सकते क्योंकि गुहिल वंश का राज्य तो गुहिल (गुहदत्त गुहादित्य) के समय से चला आना निश्चित है। ई० स० १८६६ में राजा गुहिल के २००० से अधिक चांदी के सिक्के आगरे से गड़े हुए मिले जिनपर 'श्री गुहिल'[87] लेख है। इन सिक्कों से पाया जाता है कि गुहिल स्वतंत्र राजा था। जयपुर राज्य के चाकसू नामक प्राचीन स्थान से वि० स० ११०० के आस पास का गुहिलवंशियों का एक शिलालेख मिला है जिसमें गुहिलवंशी राजा भर्तृभट (प्रथम) से बालादित्य तक के १२ राजाओं के नाम दिए हैं[88]। वे चाकसू के आस-पास के इलाके पर जो आगरे के प्रदेश के निकट था, राज्य करते थे। सिक्के एक जगह से दूसरी जगह चले जाते हैं यह निर्विवाद है परन्तु एक ही जगह एक साथ एक ही राजा के २००० से अधिक सिक्कों के मिलने से यह भी संभव हो सकता है कि वे सिक्के वहां चलते हों और वहां तक उसका राज्य हो, जैसा कि मि० कार्लाइल का अनुमान है[89]। चाकसू का शिलालेख ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी तक पूर्व में मेवाड़ से बहुत दूर गुहिलवंशियों का राज्य होना सिद्ध करता है। गुहिल के उन सिक्कों से यह भी संभव हो सकता है कि गुहिल के पहले से भी इस वंश का राज चला आता हो जिसका कोई हाल अब तक हमको निश्चय के साथ नहीं मिला। काल पाकर पिछले लेखकों ने गुहिल के प्रतापी होने से उससे ही वंशावली लिखी हो। गुहिल से चौथा राजा शिलादित्य हुआ जिसके समय का वि० स० ७०३ का शिलालेख मिला है जिसे पत्रिका की इसी संख्या में पंडित रामकर्ण जी ने संपादित किया है। इसमें उस राजा को शत्रुओं को जीतनेवाला, देव-द्विज और गुरुजनों को आनन्द देनेवाला और अपने कुल रूपी आकाश के लिये चन्द्रमा के समान बतलाता है। उक्त लेख से यह भी पाया जाता है कि उसके राज्य में शांति थी जिससे बाहर के महाजन लोग आकर वहां आबाद होते थे तथा लोग धन-संपन्न थे[90]। शिलादित्य (शील) के पुत्र या उत्तराधिकारी, राजा अपराजित का वि० स० ७१८ का शिलालेख नागदे के निकट के कुंडेश्वर के मंदिर में

87 कनिंगहाम, आर्किऑलाजिकल् सर्वे रिपोर्ट, जि० ८, पृ० ६५।

88 एपि० इंडि० जि० १२ पृ० १३–१७।

89 कनिंगहाम, आर्किऑलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, जि० ८, पृ० ६५।

90 जयति विजयी रिपूना(णा)देवद्विजगुरुजणा(ना)नन्दी (न्दी)।
श्रीशिलादित्यो नरपति(ति)स्वकुलाव(ांब)रचन्द्रमापृथ्वी (व्याम)॥

मिला है, जिसमें लिखा है कि अपराजित ने सब दुष्टो को नष्ट किया, राजा लोग उसको शिर से वदन करते थे, और उसने महाराज वराहसिह को (जो शिव का पुत्र था, जिसकी शक्ति को कोई तोड नहीं सका था, और जिसने भयकर शत्रुओ को परास्त किया था) अपना सेनापति वनाया था[91] इसी अपराजित का पौत्र वापा (कालभोज) वडा प्रतापी और पराक्रमी था और उसके सोने के सिक्के चलते थे। अपराजित और वापा के बीच के समय के लिये कोई ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि गुहिलवशियो का राज्य नष्ट हो गया हो। ऐसी दशा में वापा के पिता का मारा जाना और उसकी माता का अपने पुरोहित नागर ब्राह्मणो के यहां जाकर नागदे में शरण लेना कैसे सभव हो सकता है? दतकथाओ को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि गुहिल के पिता के मारे जाने और उसकी माता के अपने नवजात पुत्र सहित नागर ब्राह्मणों के यहां जाकर शरण लेने की पुरानी कथा को ही फिर वापा के नाम के साथ चिपका दिया हो। गुहिल सवधी कथा में नागदा के राजा का सोलकी[92] होना लिखा मिलता है। शिलादित्य (शील) अपराजित और वापा का नागदे में राज्य करना निश्चित है तो फिर वापा के पिता के समय में वहां पर सोलकियो का राज्य होना कैसे सभव हो सकता है। नागदा वापा के समय से पूर्व ही मेवाड के राजाओ की

---

91 राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति-
ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत ।
श्रीमानित्यपराजित क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्जातो जगद्भूषणम् ॥
शिवात्मजोखण्डितशक्तिसप-
द्वुर्य· समाक्रान्तभुजगशत्रु ।
तेनेन्द्रवत्स्कन्द इव प्रणेता
वृतो महाराजवराहसिह ॥
एपि० इडि०, जि० ४, पृ० ३१।

92 वि० स० १७२४ के वने हुए राजविलास नामक काव्य में रघुवशी गुहादित्य (गुहदित्त, गुहिल) का मेवाड में नागद्रहा (नागदा) नगर के सोलकी राजा की पुत्री धनवती से विवाह होना लिखा है—
राजत श्रीरघुनाथश पाट रघुनाथ परम्पर ।
गृहादित्य नृप गरुअ वरा रक्षिपाल धर्मधुर ॥२४॥
मनहि ईस सुनि भूप राज रघुवशी राजन ।
सुत व्हैहैं तुअ सकल सवल जसु वधत सुजानन ॥२६॥

राजधानी थी, उसीके पास एकलिंगजी का मंदिर है, जिसके पुजारी साधु यहां के राजाओं के गुरु थे । यदि बापा के हारीतराशि की गौ चराने की कथा की कोई जड हो तो यही हो सकती है कि उसने पुत्र-कामना या किसी अन्य अभिलाषा से अपने गुरु हारीतराशि की आज्ञा से गो-सेवा का व्रत ग्रहण किया हो, जैसा कि राजा दिलीप ने अपने गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से किया था जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में किया है । ऐसे ही बापा के चित्तौड लेने की कथा के संबंध में यह कह सकते हैं कि उसने गुरु के बतलाए हुए गडे हुए द्रव्य से नहीं, किंतु अपने बाहुबल से, चित्तौड का किला मोरियों से लिया हो और अपनी गुरुभक्ति के कारण इसे गुरु के आशीर्वाद का फल माना हो ।*

मेदपाट महिमण्डले नागद्राहपुर नाम ।
सोलकी सग्रामसी धनवंति सुता सुधाम ।।२९।।
निरखि बाल्हिका नाथ निज दिय पुत्री वरदान ।
राजन वरि आये रमनि सुन्दर सची समान ।।३०।।

नागरीप्रचारिणी सभा का छपवाया हुआ राजविलास, पृ० १८–२० ।

---

* बापा रावल के चित्तौड लेने के विषय में श्री ओझाजी ने यहां केवल स्थूल रूप से अनुमान किया है, जो परम्परागत जनश्रुतियों के आधार पर ही अवलम्बित है । वस्तुतः बापा द्वारा चित्तौड पर गुहिल-वंशियों का अधिकार होने का तत्समयक कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता । चित्तौड दुर्ग के कुकडेश्वर शिवालय के समीप मिले हुए वि० सं० ८११ माघ सुदि ५ (ई० स० ७५५) गुरुवार के राजा कुकडेश्वर के समय के शिलालेख का उल्लेख करते हुए कर्नल टॉड ने उक्त मन्दिर तथा कुण्ड राजा कुकडेश्वर का बनवाना लिखा है (टॉड, एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑव राजस्थान, जि०३, पृ० क्रुक्स सम्पादित)। एकलिंग-माहात्म्य के आधार पर बापा रावल का राज्य त्याग का समय वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) माना गया है और इस ही निबन्ध में वर्णित एक संस्कृत काव्य में जिसमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है, बापा रावल के लिये उल्लेख है—

'बापाभिध सम(भ)वत् वसुधाधिरोसौ
पंचाष्टषट्परिमितेषु स(श)कद्र कालो (ले) ।'

इन विभिन्न बातों से सन्देह होता है कि बापा रावल ने चित्तौड लिया होता तो उसके संन्यास ग्रहण करने के केवल एक वर्ष पीछे अथवा उसके जीवित काल में कुकडेश्वर वहां अपनी तरफ से शिवालय नहीं

७—मध्यकालीन भारत का एक अज्ञात राजवंश

भारतवर्ष का प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास अभी तक अधिकाश अधकार में ही है। अनेक विद्वानो के अगाध परिश्रम से असख्य ताम्रपत्र, शिलालेख, सिक्के, प्राचीन ग्रन्थ आदि उपलब्ध हुए है, जिनसे अनेक अज्ञात राजवशो का अल्पाधिक इतिहास ज्ञात हुआ है। फिर भी अभी ऐसे अनेक अज्ञात वंश होगे, जिनका वृत्तात नहीं मिला है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की बनी हुई कल्हण-कृत राज-तरगिणी में छत्तीस राजवशो का उल्लेख है, परन्तु उसमें उन के नाम नहीं दिये है। पद्रहवी शताब्दी के बने हुए कुमारपाल-प्रबन्ध में तथा पृथ्वीराज-रासो में भी, जिस का वर्त्तमान रूप सौलहवीं शताब्दी से पुराना नहीं है, छत्तीस राजवशो के नाम मिलते है। इन्ही के आधार पर कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के वृहत् इतिहास में उन के नाम दिये है। कुमारपाल-चरित और रासो के कर्त्ताओ ने अपने समय के आसपास के उन्हीं राजवशो के नाम दिये है, जो उन के समय में ज्ञात थे। बहुत पहले होने वाले राजवशो में से अनेक का उल्लेख उन मे नहीं है, जैसे—शुग, काण्व, आध्र, क्षत्रप, गुप्त, मौखरी, वाकाटक, पाल, सेन, गग, कदब आदि। ऐसे वशो में कई प्रकाश में आ चुके है, और कई अभी तक अज्ञानाधकार में पडे है। ऐसे ही एक अज्ञात वश का परिचय इस निबध में दिया जायगा।

अनुमानत सत्तर वर्ष पूर्व गुप्त सवत् ५८५ (विक्रम सवत् ९६१) फाल्गुन सुदि ५, का एक दानपत्र—दो पत्रो का काठियावाड के मोरवी राज्य में मिला था परन्तु पीछे से उसका पहला पत्र खो गया। दूसरा पत्र इतिहास-प्रेमी मेजर (पीछे कर्नल) वाटसन ने प्रोफेसर (पीछे डाक्टर सर) रामकृष्ण गोपाल भाडारकर के पास भेजा। उनहोने इस ताम्रपत्र को पढकर उसे ईसवी सन् १८७३ में "इण्डियन ऍटिक्वेरी"* में प्रकाशित कराया। केवल दूसरा ही पत्रा होने से

* इण्डियन ऍटिक्वेरी, जिल्द २, पृष्ठ २५७-२५८।

बनवा सकता ? कुकडेश्वर के विषय मे अधिक पता लगाने का साधन नही है, तथापि स्थूल रूप से इसको कन्नौज के रघुवशी प्रतिहार राजा नागभट्ट (प्रथम) का पुत्र ककुस्थ (कक्कुक) मानना पडेगा। क्योकि यह समय रघुवशी प्रतिहारो के उत्थान का था, एवम् नागभट्ट तथा कक्कुस्थ बापा रावल के सम-सामयिक थे। इस शिलालेख का अब पता ही नही है यही कारण है कि वीरविनोद के कर्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास और डॉ० ओझा उस पर अपना अभिमत प्रकट नही कर सके है, तथा साधन के अभाव में परम्परागत कथाओ को ही उन्होने ग्रहण किया है (सम्पा० टि०)।

ताम्रपत्र का पूरा हाल ज्ञात न हो सका, परन्तु उसके अंत में दान देनेवाले राजा के हस्ताक्षर—स्वहस्तोय श्रीजाईकस्य—खुदे थे जिससे इतना तो ज्ञात हुआ कि यह दानपत्र "जाईक" नाम के किसी राजा का दिया हुआ है। "जाईक" किस वंश का था, इस विषय में उस समय कुछ भी ज्ञात न हो सका।

सात वर्ष पीछे काठियावाड के ओग्वामंडल के "धिनिकि" गांव से एक ताम्रपत्र दो पत्रों में खुदा हुआ "जाईक्देव" नाम के राजा का मिला जिस को प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता डाक्टर व्युहलर (Buhler) ने "इंडियन ऐंटिक्वेरी" * में प्रकाशित किया। इस के प्रारम्भ का अंश इस प्रकार है—

ॐ स्वस्ति विक्रमसंवत्सरशतेषु सप्तसु चतुर्नवत्यधिकेष्वंतक ७९४ कार्तिकमास अपरपक्षे अमावास्यायां आदित्यवारे ज्येष्ठानक्षत्रे रविग्रहणपर्व्वणि। अस्यां संवत्सरे मास पक्ष दिवस पूर्व्वायां तिथावद्येह भूमिलिकायां सो (सौ) राष्ट्रमंडलाधिपति परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जाईक्देव

इस से ज्ञात होता है कि जाईकदेव नाम का राजा विक्रम संवत् ७९४ में विद्यमान था और वह सौराष्ट्रमंडल (दक्षिणी काठियवाड) का स्वामी था और उस के विरुद परमभट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर थे। डॉक्टर भांडारकर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र गुप्त संवत् ५८५ (विक्रम संवत् ९६१) का था और यह विक्रम संवत् ७९४ का। परन्तु इन दोनों की लिपियों में बड़ा अन्तर पाया गया। डाक्टर भांडारकर के प्रकाशित किये हुए ताम्रपत्र की लिपि अधिक प्राचीन थी। लिपि तथा संवत् पर विचार करने से डॉक्टर व्युहलर का प्रकाशित किया हुआ ताम्रपत्र पीछे से बनावटी माना गया। डॉक्टर व्युहलर ने "जाईकदेव" को "जेठवा" वंश का अनुमान किया था। जेठवा वंश के राजाओं को उन के भाट हनुमान के वंशज बतलाते हैं जिस से लोग उन्हें "पूछड़िया" भी कहते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व काठियावाड के जामनगर (नवानगर) राज्य के "घूमली" (भूमली) नामक प्राचीन नगर के निकट सड़क के पास खुदाई करते समय बारह ताम्रपत्र जमीन से निकल आये जो छः अलग-अलग दानों के सूचक हैं। इन से जाईक के वंश और उस के पूर्वजों का निश्चय हो गया। पहले दानपत्र का केवल पहला ही पत्रा मिला है, दूसरे के तीन पत्रे हैं और बाकी प्रत्येक के दो-दो पत्रे हैं। इन तमाम पत्रों की भाषा कादम्बरी की भाषा के सदृश प्रौढ़ दीर्घ-समास-युक्त संस्कृत है। इनका नागरी अक्षरांतर जामनगर राज्य ने अपने यहां के सुप्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय हाथी भाई हरिशंकर शास्त्री द्वारा

* इण्डियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ १५५।

गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित कराया है, जिसके लिये तमाम पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहास-प्रेमी जामनगर राज्य और शास्त्री हाथीभाई के अनुगृहीत हैं। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय महामहोपाध्याय हाथीभाई हरिशंकर शास्त्री को ही है। मेरा श्रम तो केवल उन की शोध को हिंदी भाषा-भाषियो के सम्मुख रख देने के लिए ही है। केवल टिप्पण का अंश मेरा है। इन ताम्रपत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रथम दानपत्र

यह सोलह इंच लंबा, पौने तेरह इंच चौड़ा, बाईस पंक्तियों में खुदा हुआ है। इस में कड़ियो के लिए दो छेद बने हुए हैं।* इस का केवल पहला ही पत्रा प्राप्त होने के कारण इस का समय ज्ञात नहीं हो सका।

साराश केवल इतना ही है कि "सैंधव" वंश (जयद्रथ वंश) में सब "महाशब्द" धारण करने वाला "महासामंत कृष्णराज" हुआ। उसका पुत्र "महासामंत" अमुक हुआ और अमुक का पुत्र "महासामंत राणक" हुआ। वह अपने मंत्री, पुरोहित, अमात्य सेनापति, युवराज, राजस्थानीय, बलाधिकारी आदि सब राजपुरुषों को, वहाँ के ब्राह्मण मुखियाओ को, वणिक् महत्तरो (महताओ) और कुनबियो को सूचित करता है कि मैंने अपने राज्य के पच्छत्री परगने का भोटालिका नाम का ग्राम रानी क्षेमेश्वरी . ..(के समक्ष अमुक को दान में दिया)।

द्वितीय दानपत्र

यह तेरह इंच लंबे और पौने नव इंच चौड़े तीन पत्रो पर ४५ पंक्तियो में खुदा हुआ है। पहले पत्रे में बारह, दूसरे में पन्द्रह और तीसरे में अठारह पंक्तियाँ हैं। ये तीनो पत्रे दो तांबे की कड़ियो से जुड़े हुए हैं। कड़ी के ऊपर मत्स्य का चिह्न है। इस का आशय यह है—

स्वर्गलोक की अमरावती नगरी की स्पर्धा करने वाली भूतांबिलिका नगरी का स्वामी अपर सुराष्ट्र-मंडल-मंडन, सैंधववंश-शिरोमणि और पंच महाशब्द प्राप्त करने वाला महासामंत श्रीमान् अमुक हुआ। उसका पुत्र राणक हुआ

*ताम्र-पत्र प्राय एक ही पत्रे पर बहुधा एक ही तरफ, खुदे हुए मिलते है। कभी-कभी जब दान पत्र लम्बा होता था तो दो या अधिक पत्रों पर खुदवाया जाता था और उस अवस्था मे सब पत्रो मे, समान रेखामें दो-दो छिद्र कर दिये जाते थे जिनमे कडी डालकर पत्रो को एक दूसरे से जोड दिया जाता था। और कभी-कभी कडी पर राजवंश का चिह्न भी खोद दिया जाता था। ऐसे ताम्रपत्रो के भीतर के दोनो पार्श्व खुदे हुए नही होते है, बाहरी पार्श्व खुदे हुए नही होते, जिस का कारण यह है कि अक्षर घिसकर मिट न सकें।

राणक का पुत्र कृष्ण राज हुआ और उसका ज्येष्ठ पुत्र अग्गुक हुआ। कृष्णराज का वैमात्र भाई जाईक अग्गुक को सिंहासनच्युत करके गद्दी पर बैठा। चापि-रिपु-समुदाय को पराभव करने वाला श्री जाईक अपने सब मंत्रियों, पुरोहित, अमात्य, जनपद, युवराज आदि समस्त राजपुरुषों, ब्राह्मणों, वणिक, महत्तरों, कुटुंबी लोगों को प्रकट करता है कि मैं ने ढकतीर्थ ग्राम गुलिमका गांव की आय के दशांश सहित सोमेश्वर के निवासी चतुर्वेदी साकृत्यगोत्री ब्राह्मण कल्याण के पुत्र माधव को दान में दिया। नीचे राणक के पुत्र महासामंत जाईक के हस्ताक्षर हैं। इस दानपत्र का दूतक महत्तम वाण कवि है। यह दानपत्र गुप्त संवत् ५१२ (विक्रम संवत् ८८८) का है।

तृतीय दानपत्र

यह तेरह इंच लंबे और दस इंच चौड़े दो पत्रों पर खुदा हुआ है। प्रत्येक पत्रे में दो-दो छेद हैं और दो तांबे की कड़ियों से दोनों शामिल जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में अट्ठारह और दूसरे में उन्नीस पंक्तियां हैं और दूसरे पत्रे के अन्त में मत्स्य का चिह्न है। सारांश यों है—

भूताविलिका नगरी में अपरसुराष्ट्रा-मंडल-मंडन सैंधव-वंश-शिरोमणि श्री अग्गुक हुआ। उस का पुत्र राणक हुआ। वह चापि-रिपुओं से लड़ा। उस का पुत्र जाईक हुआ। वह अपने सब अधिकारियों, ब्राह्मणों, वणिक, वैश्य, महत्तर, कुटुंबी आदि को सूचित करता है कि मैंने अपने राज्यान्तर्गत पच्छत्री प्रदेश का दधिपद्र नाम का गांव श्री भिन्नमाल के निवासी चतुर्वेदी वत्सगोत्री ब्राह्मण भट्टस्वामी को दिया। अन्त में महासामंत जाईक के हस्ताक्षर हैं और इस दानपत्र का दूतक प्रतिहार कृष्ण है।

चतुर्थ दानपत्र

यह पौने तेरह इंच लंबे और पौने नव इंच चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये दोनों पत्रे एक कड़ी में जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में चौबीस और दूसरे में बीस पंक्तियां हैं। दूसरे पत्रे के नीचे मत्स्य का चिह्न है।

सारांश—भूताविलिका नगरी में अपरसुराष्ट्रामंडल का मंडन सैंधव-वंश शिरोमणि महासामन्त श्रीजाईक हुआ। उसका पुत्र महासामन्त अग्गुक हुआ और उसका पुत्र महासामन्त राणक हुआ। वह अपने मंत्री, पुरोहित, अमात्य युवराज, सेनापति आदि समस्त राजपुरुषों तथा वहां के रहने वाले ब्राह्मण, महाजन, वैश्य, महत्तर कुटुम्बी आदि को सूचित करता है कि सुवर्ण-मञ्जरी जिले के वीपलपद्र नाम के ग्राम का आधा भाग दण्डिनभट्ट गांव के भट्टमाधव के पौत्र, पूर्ण के पुत्र, वसिष्ठगोत्री, ऋग्वेदी, दापटिक जिनेन्द्र ने हरि, हर,सूर्य, गणपति तथा मातृकाओं के प्रति भक्त होने के कारण दान कर दिया था।

उसी गाँव का दूसरा आधा भाग एक देवालय के मठपति को इस अभिप्राय से दिया जाता है कि अब इस सारे गाँव की आय वहाँ के टूटे हुए देवालय, मठ, वावली, कूए तालाब की मरम्मत में लगायी जावे। इस के नीचे राणक के हस्ताक्षर हैं। इस का दूतक युवराज जाईक है। समय गुप्त संवत् ५५५ है।

पञ्चम दानपत्र

यह साढ़े चौदह इंच लंबे और साढ़े नव इञ्च चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये पत्रे दो कड़ियों में जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में अठारह और दूसरे में उन्नीस पंक्तियाँ हैं। अन्त में मत्स्य का चिह्न है।

सारांश—सैंधव वंश का शिरोमणि अपर-सुराष्ट्रा-मंडल-मंडन महासामन्त जाईक हुआ। उस का पुत्र महासामन्त चामुंडराज हुआ। उस का पुत्र अग्गुक हुआ। गुप्त संवत् ५६७ की आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण के समय अग्गुक ने अपने राज्य के स्वर्गमञ्जरी जिले का हरियेणालक ग्राम कच्छ-देश के गोमूत्रिका ग्राम के रहने वाले वत्सगोत्री, यजुर्वेदी, गुहेश्वर के पुत्र रुद्र और सागर को दान किया।

षष्ट दानपत्र

यह साढ़े तेरह इंच लंबे और साढ़े दस इंच चौड़े दो पत्रों में खुदा हुआ है। ये दोनों पत्रे दो कड़ियों से जुड़े हुए हैं। पहले पत्रे में इक्कीस और दूसरे में बीस पंक्तियाँ हैं।

सारांश—जयद्रथ के वंश में अपरसुराष्ट्रा-मंडल का मंडन श्री पुण्यदेव हुआ उसका पुत्र कृष्णराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक और उसका पुत्र राणक हुआ। राणक का पुत्र जाईक और जाईक का पुत्र चामुंडराज हुआ। उसका पुत्र अग्गुक हुआ और अग्गुक का पुत्र महासामन्त जाईक हुआ। वह अमात्य, युवराज, राजपुत्र, देशाधिपति आदि समस्त राजपुरुषों को विदित करता है कि उसने स्वर्ण स्वर्णमंजरी जिले का छपाणक गाँव भिन्नमाल देश से आये हुए नन्न सेठ के बनवाये हुए नन्नाम्बिका मन्दिर के खर्च के लिए भेंट किया। इस गाँव की आय का चतुर्थांश प्रतिदिन ब्राह्मण-विद्यार्थियों के भोजन-खर्च में लगाने और बाकी का तीन चतुर्थांश कभी कोई अधिक खर्च होने पर लगाने के लिए रखने का आदेश किया गया। गुप्त संवत् ५९६, आषाढ शुक्ल पूर्णिमा।

टिप्पण

१—इन ताम्रपत्रों में सैंधव अर्थात् सिंध के राजा जयद्रथवंशीय बारह राजाओं के वंशक्रम के अतिरिक्त उनके शासन आदि के संबंध में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। केवल कहा गया है कि उनमें से कई-एक चापि-रिपुओं

से लड़े थे। चापि-रिपुओं का अभिप्राय चापि-वंशीय शत्रु भी हो सकता है और चापियों के शत्रु भी। प्रथम अर्थ अधिक संभव है। ये चापि, चाप या चापोत्कट अर्थात् चावडा ही होने चाहिए, जो उस समय काठियावाड में थे और रघुवंशी प्रतिहारों के अधीन थे।

२—वंश-परिचय—पांच दानपत्रों में इन राजाओं के वंश का नाम सैंधव वंश लिखा है परन्तु छठे में सैंधव के स्थान पर जयद्रथवंश लिखा है। जयद्रथ सिंध का राजा था। इसी से उस के वंश को सैंधव वंश भी कहा गया है। वह सिंध देश के राजा वृद्धक्षत्र का पुत्र था और उसका विवाह धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला से हुआ था। तथा महाभारत युद्ध में कौरवों के पक्ष में रहकर लड़ा था और उसका शिरच्छेद अर्जुन ने किया था।*

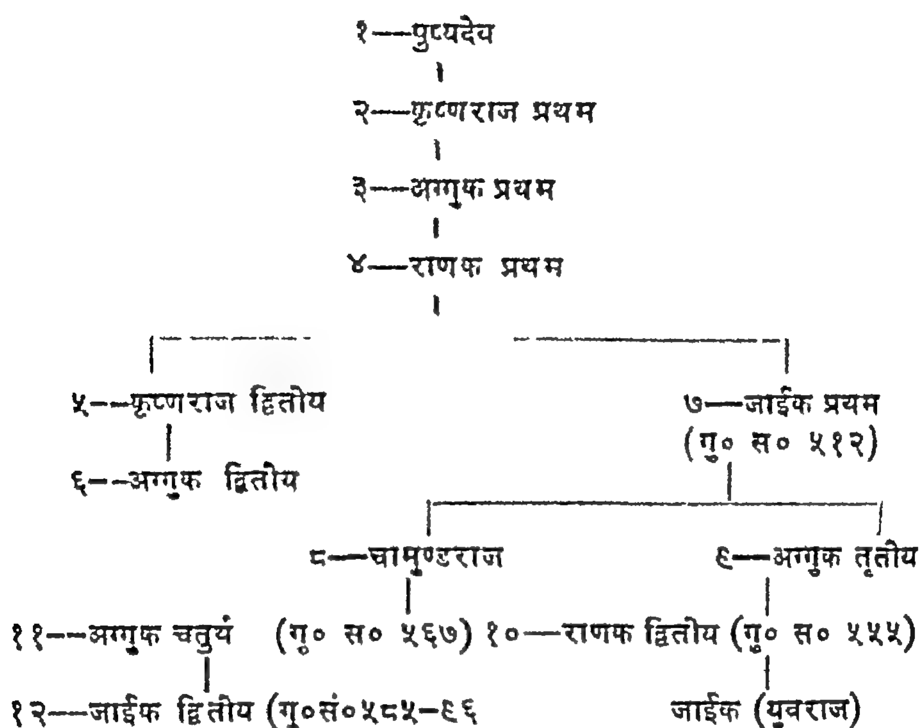
संभव है कि सिंध पर मुसलमानों का अधिकार होने के समय ये जयद्रथ वंशीय क्षत्रिय राजा सिंध छोड़कर काठियावाड में आ रहे हों और वहां उन को जागीर मिली हो। ये राजा अपने को महासामंताधिपति लिखते हैं जिस से निश्चय है कि ये दक्षिणी काठियावाड में रहते समय किसी स्वतन्त्र राजा के सामंत थे। यद्यपि इन ताम्रपत्रों में उस राजा का या उसके वंश का नाम नहीं दिया गया है तो भी यह निश्चित है कि ये कन्नौज के रघुवंशी प्रतीहारों के सामंत थे जिन का राज्य उन दिनों सारे काठियावाड पर भी था।

अलग-अलग दान-पत्रों के अनुसार वंशक्रम इस प्रकार है—

दानपत्र	६	१	२	३	५	४
वंशक्रम	पुण्यदेव	—	—	—	—	—
	कृष्णराज	कृष्णराज	—	—	—	—
	अग्गुक	अग्गुक	अग्गुक	अग्गुक	—	—
	राणक	राणक	राणक	राणक	—	—
	जाईक	+	कृष्णराज / जाईक (५१२)	जाईक	जाईक	जाईक
	चामुण्डराज		अग्गुक / +	+	चामुण्डराज	अग्गुक
	अग्गुक				अग्गुक (५६७)	राणक (५५५)
	जाईक (म० ५६६)					जाईक युवराज

* महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ६८, श्लोक ११०, अध्याय १११, श्लोक १८, द्रोणपर्व, अध्याय १४७, श्लोक ७१-७५ ।

सब को एक साथ मिलाने से वंशवृक्ष इस प्रकार बनता है—



पुण्यदेव के प्रपौत्र राणक प्रथम के दो पुत्र हुए—कृष्णराज और जाईक। कृष्णराज के बाद उस का पुत्र अग्गुक द्वितीय गद्दी पर बैठा, जिसको हराकर जाईक राजा बन गया। जाईक प्रथम के दो पुत्र हुए और उनसे दो शाखाएँ चली हो। दोनो में कौन सी शाखा बड़ी थी, इसका निश्चय नहीं हो सकता, परन्तु अग्गुक की शाखा को बडी मानने से कठिनाई नहीं रहती। अग्गुक के बाद राणक राजा हुआ। उसके जाईक नामक युवराज था। जो स० ५५५ में वर्तमान था। वह सभवत राजा नहीं हो सका। इसलिए राणक द्वितीय के पश्चात् राज्य, चामुडराज-वाली शाखा के हाथ में चला गया। चामुडराज का लडका अग्गुक चतुर्थ स० ५६७ में विद्यमान था। उसके पश्चात् छठे दानपत्र में उल्लिखित जाईक द्वितीय राजा हुआ; जो डाक्टर भाडारकर-वाले दानपत्र का जाईक है।

३—भौगोलिक नामों का विवरण—

(१) अपर-सुराष्ट्रा-मडल—काठियावाड़ का वह दक्षिणी हिस्सा जो समुद्र के निकट है।

(२) भूताविलिका—आजकल इसे घूमली कहते हैं। यह शब्द भूमली से बना है। भूमली और उसका प्राचीन रूप भूमिलिका दोनों भूताविलिका के अपभ्रंश हैं।

(३) स्वर्णमंजरी यह घूमली से पश्चिम में ओखामंडल की तरफ है।

(४) पिप्पलपद्र—इसका आधुनिक नाम पीपली है।

(५) हरिषेणालक—इसे अब हरियासण कहते हैं।

राजस्थानी (मा. प.), कलकत्ता, भाग ३, अंक १ जुलाई १९३९ (वि. सं. १९९६)

८—गुजरात देश और उस पर कन्नौज के राजाओं का अधिकार

प्राचीन काल में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रदेशों अथवा विभागों के नाम विशेषतः उनके राज्यकर्त्ता क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्धि में आए, जैसे कि यदु के भाई अनु के वंशधर राजा बलि के पांच पुत्रों—अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म—से अनेक अधीनस्थ देशों के नाम अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म हुए*। इसी प्रकार यदुवंशी प्रतापी राजा शूरसेन के अधीन का देश शूरसेन, राजा शिवि के नाम से शिवि देश और आनर्त के नाम से आनर्त देश कहलाया। पिछले समय में भी ऐसा ही होता रहा है, जैसा कि जयपुर के कछवाहों के वंशधर शेखा तथा उनके वंशजों का देश-शेखावाटी, झाला के वंशजों अर्थात् झालों से झालावाड़ (राजपुताने में) और मेवाड़ के राजा गुहिल के वंशजों का अधीनस्थ प्रदेश गोहिलवाड़ (काठियावाड़ में) कहलाया। जिस देश पर काठियों का अधिकार रहा, वह काठियावाड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह भिन्न-भिन्न देशों पर राज्य करनेवाले राजा के लिये भी—चाहे वह किसी वंश का क्यों न हो—पीछे से संस्कृत साहित्य में वही देशवाची शब्द प्रयुक्त होने लगा†। फिर

---

* अंगो वंगः कलिंगश्च पुंड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामकथिता भुवि ॥ ५३ ॥
अंगस्यांगो भवेद्देशो वंगो वंगस्य च स्मृतः।
कलिंगविषयश्चैव कलिंगस्य च स स्मृतः ॥ ५४ ॥
पुंड्रस्य पौंड्राः प्रख्याताः सुह्माः सुह्मस्य च स्मृताः।
—महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १०४।

† अपारोपरीद्‌गार नगारः शूरसेनाः।
सौराष्ट्र विष्टपनाशो ... केनचरोतुम ॥ ७४ ॥
—कीर्तिकौमुदी, सर्ग १।

उन देशो के समस्त निवासी भी उसी नाम से प्रसिद्ध होते रहे। इसीलिये संस्कृत में देशो के नामों के साथ जब 'देश' या उसका पर्यायसूचक कोई दूसरा शब्द नहीं रहता तब वे बहुधा बहुवचन में मिलते हैं, जैसे कि 'नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्' (उत्तररामचरित), 'एको ययौ चैत्ररथ: प्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्' (रघुवंश) तथा 'पाचाला.', 'जागला·,' 'दशार्णा:' आदि। अब भी भिन्न-भिन्न देशो के निवासी सामान्यत उनके देश के नाम से ही पहचाने जाते हैं, जैसे मारवाड़ से 'मारवाड़ी', पंजाब से 'पंजाबी' और काठियावाड से 'काठियावाड़ी' इत्यादि।

गुजरातके भिन्न-भिन्न विभागोंके प्राचीन कालमें पृथक् पृथक् नाम थे। काठियावाडका उत्तरी भाग 'आनर्त' तथा दक्षिणी भाग 'सौराष्ट्र' कहलाता था। साबरमती के आस-पास के प्रदेश का नाम 'श्वभ्र' था, और नर्मदा एव ताप्ती नदियो के मध्यका देश 'लाट' नाम से प्रसिद्ध था। कभी-कभी उसकी सीमा उत्तर मे आनंदपुर तक पहुँच गई हो, ऐसा उल्लेख भी मिलता है। गुजरात का नाम पीछे से प्रसिद्ध हुआ है। प्राचीन काल में गुर्जर नामक एक राजवश था जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वशधर 'गुर्जर' कहलाए और उनके अधीन का देश गुर्जर देश अथवा 'गुर्जरत्रा' (गुर्जरो से रक्षित देश) नाम से प्रसिद्ध हुआ। पंजाब का एक जिला अब भी 'गुजरात' कहलाता है, जो किसी समय में उस देश पर गुर्जरवशी राजाओ का आधिपत्य होना प्रकट करता है। देशो की सीमा उनके स्वामियो के राज्य की घटा-बढ़ी के साथ सदा घटती बढती रहती है। इसीलिये गुजरात के किसी प्राचीन विभाग की सीमा स्थिर रूप से निश्चित नहीं की जा सकती।

वर्तमानकाल में राजपुताने से दक्षिण के जिस देश को गुजरात कहते हैं, उसकी सीमा पालनपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लेकर दक्षिण में थाणा जिले की उत्तरी सीमा तक है,और पश्चिम स्थित काठियावाड भी उसी के अंतर्गत माना जाता है। तात्पर्य यह है कि जिस देश में गुजराती भाषा बोली जाती है वही इस समय गुजरात कहलाता है। परन्तु प्राचीन काल में यह देश बडा विस्तृत था और वर्तमान जोधपुर राज्य का उत्तर से दक्षिण तक सारा पूर्वी भाग गुजरात के अंतर्गत था।

विक्रम संवत् ६९७ (ईसवी सन् ६४०) के आस-पास चीनी यात्री हुएन्त्सग राजपूताने में आया। वह गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) बतलाता है,* जो वर्तमान गुजरात में नहीं, किंतु जोधपुर राज्य के दक्षिणी

इस श्लोक में 'सौराष्ट्र' पद सौराष्ट्र देश के राजा (खगार) का सूचक है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है।

* सेम्युअल बील; 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्ज आफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड', जिल्द २, पृष्ठ २६९—७०।

विभाग में है। हुएन्त्सग के आगमन से पूर्व ही वहां का गुर्जरवंशियों का राज्य अस्त हो चुका था और चापवंशी (चावड़े) शासन करते थे, जैसा कि शक संवत् ५५० (विक्रम संवत् ६८५) अर्थात् हुएन्त्सग के वहां आने से १३ वर्ष पूर्व, बने हुए भीनमाल निवासी ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धांत' नामक ग्रंथ से ज्ञात होता है †। लाट देश के सोलंकी राजा जयसिंह वर्मा के तृतीय पुत्र पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरि संवत् ४९० (विक्रम संवत् ७९६) के ताम्रपत्र से जान पड़ता है कि चापवंश गुर्जरवंश से भिन्न था§।

चावड़ावंशियों ने गुर्जरों से भीनमाल का राज्य कब लिया, यह अनिश्चित है, तो भी इतना तो निश्चित है कि महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के पासवाले चट्टान पर के शिलालेख के खोदे जाने के समय अर्थात् शक संवत् ७२ (विक्रम संवत् २०७) तक तो भीनमाल के आस-पास के प्रदेश पर गुर्जरों (गूजरों) का राज्य स्थापित नहीं हुआ था। इसका कारण यह है कि उक्त लेख में जहां रुद्रदामा के अधीनस्थ देशों के नाम गिनाए हैं, उनमें गुर्जर नाम न होकर श्वभ्र और मरु* (मारवाड़) नाम मिलते हैं। उसके पीछे किसी समय गुर्जर-राज्य की स्थापना का अनुमान किया जा सकता है।

कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव प्रथम के वि सं० ९०० के दानपत्र में गुर्जरत्रा‡ भूमि (गुजरात देश) के डेंड्वानक विषय (जिले) के 'सिवा' ग्राम का उल्लेख है। उसमें लिखा हुआ डेंड्वानक विषय जोधपुर राज्य के उत्तर पूर्वी भाग का डीडवाना परगना ही है और 'सिवा' गांव डीडवाने से सात मील दूर का 'सेवा' गांव है, जहां से वह ताम्रपत्र मिला है। कालिंजर से प्राप्त विक्रम

† श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः (५५०) ॥ ७ ॥
ब्राह्मः स्फुटसिद्धान्तः सज्जनगणितगोलवित्प्रीत्यै।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥ ८ ॥

§ तरलतरतारतरवारिदारितोदितसैन्धवकच्छेल्लसौराष्ट्रचावोटकमौर्यगुर्जरादिराज्ये (नागरीप्रचारिणी पत्रिका—नवीन संस्करण, भाग २, पृष्ठ २११)।

*पूर्वापराकरावन्त्यनूपनीवृदानर्तसुराष्ट्रश्वभ्रमरुकच्छसिन्धुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादादीनां समग्राणां (रुद्रदामा गिरनार का शिलालेख, एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ८, पृष्ठ ४४)।

‡ गुर्जरत्राभूमौ डेंड्वानकविषयसम्ब(द्ध) सिवाग्रामाग्रहारे।
—एपिग्राफिया इंडिका जिल्द ५, पृष्ठ २११।

संवत् की नवीं शताब्दी के आस-पास एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मंडल § के मगलानक गाव का नामोल्लेख है। यह मगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मगलाना गाव है, जो मारोठ से १६ मील पश्चिम और डीडवाने से थोडे ही अतर पर है। हुएन्त्संग के कथन और इन दोनो लेखों से ज्ञात होता है कि विक्रम सवत् की सातवीं से नवीं शताब्दी तक जोधपुर राज्य का उत्तर से दक्षिण तक सारा पूर्वी भाग गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी प्रकार दक्षिण और लाट के राठोड़ो तथा मारवाड एव कन्नौज के प्रतिहारो के बीच के युद्धो के वृत्तान्त से जाना जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा लाट देश से जा मिली थी। अतएव जोधपुर राज्य का सारा पूर्वी भाग तथा उससे दक्षिण में लाट देश तक का वर्तमान गुजरात भी उस समय गुर्जर देश के अंतर्गत था। अब तो केवल राजपुताने के दक्षिण का प्रदेश ही गुजरात कहलाता है।

मारवाड पर से गुर्जरो का राज्य शीघ्र ही अस्त हो गया, परन्तु उस वंश की एक शाखा (जो भड़ौंच Broach तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर शासन करती थी) का राज्य वहाँ पर विक्रम सवत् की आठवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास तक बना रहा *। इस प्रकार गुर्जरवंशियो के अधिकार में रहने से

---

§ श्रीमद्गुर्ज्जरत्रमडलात पातिमगलानकविनिर्गत" ।

वही, जिल्द ५, पृ० २१० टिप्पण ३।

जोधपुर राज्य के घटियाला गाँव से मिले हुए मडोर के प्रतिहार राजा कक्कुक के विक्रम सवत् ६१८ चैत्र शुदि २ के सस्कृत शिलालेख में 'गुर्ज्जरत्रा' और वही से मिले हुए उसी राज्य के उसी सवत् के प्राकृत (महाराष्ट्री) लेख में 'गुज्जरत्ता' नाम मिलता है, जो 'गुर्जरत्रा' का ही प्राकृत रूप है। इन दोनो लेखो के 'गुर्जरत्रा' शब्द का सवध जोधपुर राज्य के अतर्गत गुजरात के भाग से है। मेवाड के महाराणा कुभकर्ण के समय के वि० स० १४६६ के राणपुर के शिलालेख में गुजरात के सुलतान को 'गुर्जरत्रा सुरत्राण' कहा है। (प्रबलपराक्रमाक्रातढिल्लीमडलगुर्जरत्रासुरत्राणदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणविरुदस्य . । एन्युअल रिपोर्ट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इडिया, ईसवी सन १६०७–८ पृष्ठ २१४–१५) इस लेख का 'गुर्जरत्रा' शब्द वर्तमान गुजरात का और गुर्जरत्रासुरत्राण, अहमदाबाद के सुलतान का सूचक है। 'कुमारपालप्रबध' में वढियार प्रदेश और पचासर नगर (गुजरात और कच्छ के बीच का) का गुर्जरत्रा देश के अन्तर्गत होना लिखा है (पत्र १)। यहाँ भी गुर्जरत्रा शब्द वर्तमान गुजरात का सूचक है।

* बम्बई गैजेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ० ११३-११८

(जेम्स कैंपबेल द्वारा सपादित)

ही इस देश का गुजरात नाम प्रसिद्ध हुआ।

अब हम गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के राजाओं के संबंध में कुछ लिखते हैं। प्राचीन जनश्रुति के आधार पर लिखित महोपाध्याय जिनमंडनगणि रचित 'कुमारपालप्रबंध' में लिखा है कि छत्तीस राजवंशों में से चौलुक्य (सोलंकी) वंश का राजा भूयड ३६ लाख गाँव वाले कान्यकुब्ज (कन्नौज देश) के कल्याण कटकपुर में राज्य करता था। उस राजा ने अपनी पुत्री महणल्लदेवी को गुजरात देश कंचुक (काँचली) के निमित्त दे दिया'*। शास्त्री व्रजलाल कालिदास ने प्राचीन जैन ग्रन्थों का अवलोकन कर गुजरात के पुरातन इतिहास-संबंधी कई जनश्रुतियाँ प्रकाश में लाईं। व्रजलालजी ने लिखा है कि कन्नौज के आम नामक राजा ने अपनी पुत्री रत्नगंगा का विवाह वलभी के सूर्यवंशी राजा ध्रुवपट्ट से किया था, और अपना प्राप्त किया हुआ गुर्जर देश का राज्य रत्नगंगा के काँचली के निमित्त दे दिया †। शास्त्री जी ने कन्नौज के राजा आम को राष्ट्रकूट वंश का और 'कुमारपाल-प्रबंध' के कर्त्ता ने कन्नौज राज्य के कल्याणकटक के राजा को चौलुक्य अथवा सोलंकी माना है। केवल जनश्रुति पर आश्रित होने के कारण ये दोनों कथन विश्वास योग्य नहीं हैं। फिर भी इन दोनों कथनों से इतना तो निश्चित है कि कन्नौज के किसी राजा का गुजरात पर अधिकार अवश्य रहा था।

जेम्स कैंपबेल द्वारा संपादित बंबई गैजेटियर की पहली जिल्द के प्रथम भाग में प्रकाशित डाक्टर भगवानलाल इंद्रजी द्वारा लिखित, मि० ए एम टी जैक्सन द्वारा संशोधित गुजरात के प्राचीन इतिहास में गुजरात पर शासन करने वाले कन्नौज के राजाओं का कोई इतिहास नहीं दिया गया। हड्डाला से मिले हुए वढवाण के महासामंताधिपति चापवंशी धरणीवराह के शक संवत ८३६ पौष सुदि ४ (वि० सं० ९७१) के दानपत्र में राजाधिराज महीपालदेव का नामोल्लेख है, जिसका सामंत धरणीवराह था। महीपालदेव का ठीक-ठीक पता न लगने के कारण इस लेख का संपादन करते समय प्रो० बूलर ने उसको काठियावाड का चूडासमा (यादव) राजा महीपाल मान लिया, ‡ जो वास्तव में कन्नौज का राजा था। कनाडी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि पंप के रचे हुए 'विक्रमार्जुनविजय' (पंपभारत) नामक काव्य में चोल के

---

* तत्र वंशाः षट्त्रिंशत् तेषु चौलुक्यवंशे षट्त्रिंशल्लक्षग्रामाभिरामे कान्यकुब्जदेशे कल्याणकटकपुरे श्रीभुवडराजा राज्यं करोति। तेन राज्ञा स्वपुत्र्या महणल्लदेव्या गुर्जरधरित्री कंचुकपदे दत्ता (कुमारपाल प्रबंध, पत्र १)।

† रासमाला का गुजराती अनुवाद (द्वितीय संस्करण), पृ० ३७, टिप्पण।

‡ इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १२, पृष्ठ १९२।

सोलंकी राजा अरिकेसरी द्वितीय तथा उसके पूर्व पुरुषो का परिचय दिया गया है। उसमें पंप कवि ने लिखा है कि अरिकेसरी द्वितीय के पिता नरसिंह दूसरे ने (जो राठोड़ों का सामंत था) गुर्जरराज महीपाल को परास्त कर उसकी राज्यश्री छीन ली और उसका पीछा कर अपने घोडो को गगा के सगम पर स्नान कराया। † । पपभारत की रचना पर उस कवि को अरिकेसरी द्वितीय ने शक सवत् ८६३ (वि सं० ९९८) में एक गाव दिया था‡ हड्डाला के दानपत्र में केवल महीपाल का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु पपभारत से उसके विषय में यह अधिक ज्ञात हुआ कि वह गुजरात देश का राजा था और उसकी राजधानी गगा के निकट थी।

पपभारत में महीपाल को गुर्जरराज लिखा हुआ देखकर मि० जैक्सन ने भूल से यह मान लिया कि यह महीपाल गुर्जर अर्थात् गूजर वश का था। 'गुर्जरराज' का वास्तविक अर्थ 'गुजरात (देश) का राजा' है। पीछे से कन्नौज के राजा भोजदेव का ग्वालियर से एक शिलालेख मिला। उक्त लेख से भोजदेव और उसके पूर्वपुरुषो का कन्नौज के स्वामी, प्रतिहारवशी, और रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण के वशज होना ज्ञात हुआ। इस लेख का अंग्रेजी में आशय प्रकाशित कर डाक्टर कीलहार्न ने कन्नौज के प्रतिहारवशियो के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डाला, क्योंकि इसी लेख में वहाँ के राजाओ को प्रतिहार लिखा मिलता है। जब मि० जैक्सन ने महीपाल के गुर्जरवशी होने की कल्पना की, तब उसी के आधार पर श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भडारकर ने भिन्न-भिन्न प्रतिहारवशियो का गूजरवशी होना मान लिया। तब से कई अन्य ऐतिहासिको ने अधपरपरा के अनुसार इस बात पर विश्वास कर सब वर्ण के प्रतिहारो का गूजर (गुर्जर) होना स्वीकार कर लिया, जो सर्वथा अविश्वसनीय है। आगे चलकर हम बतलावेंगे कि कन्नौज के प्रतिहारवशी गुर्जर (गूजर) नहीं किंतु सूर्यवशी क्षत्रिय थे।

ईस्वी सन् १९०२ में दिल्ली दरबार के साथ होने वाली प्रदर्शनी के समय मैंने जूनागढ (काठियावाड में) राज्य के ऊना गाव से मिले हुए दो ताम्रपत्र देखे और उन्हें महत्त्वपूर्ण जानकर मैंने वहीं उनके फोटो उतरवा लिए। फिर इन दोनों ताम्रलेखो का साराश लिखकर मैंने अपने मित्र डाक्टर कीलहार्न (स्वर्गीय) के पास भेजा और उक्त पुरातत्त्ववेत्ता के विशेष आग्रह करने पर मैंने वे फोटो भी उनके पास भेज दिए; जिनके आधार पर उन्होने वे दोनो ताम्रपत्र एपिग्राफिया इडिका जिल्द ९, में प्रकाशित कर दिए। उनमें से पहला वलभी

† मेरा सोलकियो का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग पृष्ठ २०७।
‡ वही पृष्ठ २०७।

सवत् ५७४ (विक्रम सवत् ६५०) का सोलकी राजा वलवर्मा के समय का है। यह वलवर्मा सोरठ पर शासन करने वाले सोलकियो की एक शाखा का पांचवां वशधर था। और कन्नौज के परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमहेंद्रायुधदेव (महेंद्रपाल) का सामत था* वि० स० ६५६ का दूसरा दानपत्र उपर्युक्त वलवर्मा के पुत्र महासामत अवनिवर्मा द्वितीय (योग) का है। यह अवनिवर्मा, परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव का पुत्र और परमभट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपाल देव का सामंतA था†। वलवर्मा ने नक्षिसपुर की चौरासी (चौरासी गाँववाला प्रदेश) का जयपुर नामक ग्राम तरुणादित्यदेव नाम के सूर्यमदिर को भेट किया, और अवनिवर्मा द्वितीय ने सौराष्ट्रमडल के नक्षिसपुर की चौरासी का (अवुलक) ग्राम जयपुर गाँव के निकटवाले उसी (तरुणादित्यदेव) सूर्यमदिर को भेट किया। इन दोनो ताम्रपत्रो से यह निश्चिय हो गया कि पूर्वोक्त सवतो में सोरठ पर सोलकी राज्य करते थे और वे कन्नौज के राजा भोजदेव के पुत्र महेंद्रपाल के सामत थे। इससे यह भी निश्चित हो गया कि हड्डाला के ताम्रपत्र का महीपाल भी कन्नौज का ही राजा था और कन्नौज के राजाओ की अधीनता में चावडे तथा सोलकी दोनो वशवाले काठियावाड मे शासन करते थे।

गुजरात पर राज्य करने वाले कन्नौज के प्रतिहारवशी राजाओ का सक्षिप्त परिचय देने से पूर्व हम प्रतिहार नाम के विषय में कुछ लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योकि इस विषय को आधुनिक शोधको ने वहुत कुछ भ्रमपूर्ण वना दिया है।

जिस प्रकार गुहिल, चौलुक्य (सोलकी), चाहमान (चौहान) आदि राजवशो के नाम उनके मूल पुरुषो के नाम से प्रचलित हुए है, वैसे प्रतिहार नाम वशकर्त्ता के नाम से चलाया हुआ नहीं, राज्याधिकार पद से बना हुआ है। राज्य के भिन्न-भिन्न अधिकारियो में एक प्रतिहार भी था, जिस पर राजा के बैठने के स्थान अथवा निवास के महल के द्वार पर रहकर उसकी रक्षा करने का भार होता था। इस पद के लिये किसी जाति अथवा वर्ण विशेष का विचार नहीं रहता था किंतु राजा के विश्वासपात्र पुरुष ही इस पद पर नियुक्त होते थे। प्रतिहार पद पाने के योग्य वही पुरुष समझा जाता था जो चेष्ठा एव आकार

---

* एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ६, पृष्ठ ४–६।

† एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ६ पृष्ठ ६–१०।

A 'यह अवनिवर्मा परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के पुत्र–परम भट्टारक महाराजाधिराज महेंद्रपालदेव का सामत था,' पढना चाहिये। (सपा० टि०)

से ही मनुष्य को पहिचान जाय और बलवान्, रूपवान्, समय का ज्ञाता तथा स्वामिभक्त हो *। प्राचीन शिलालेखादि में प्रतिहार नाम मिलता है और भाषा में उसे पड़िहार कहते हैं। प्रतिहार नाम वैसा ही है जैसा कि पचकुल (पंचोली)। पंचकुल राजकर वसूल करने वाले राजसेवकों की एक संस्था थी, जिसका प्रत्येक व्यक्ति पचकुल कहलाता था। प्राचीन दानपत्रो में, शिलालेखो तथा 'प्रबधचिंतामणि' आदि ग्रथो में पचकुल का उल्लेख मिलता है। राजपूताने में ब्राह्मण-पचोली, कायस्थ-पंचोली, महाजन-पचोली और गूजर-पचोली हैं, जिनमें अधिकतर कायस्थ-पचोली हैं, जिसका कारण यह है कि ये लोग विशेष कर राजाओ के यहाँ अहलकारी का पेशा ही करते थे। पचकुल का पचउल (पचोल) और उससे पचोली शब्द बना है। जैसे पचोल नाम किसी जाति का सूचक नहीं, किंतु पद का सूचक है, वैसे ही प्रतिहार शब्द से किसी जाति-विशेष का नहीं किंतु पद का बोध होता हैं। इसी कारण शिलालेखादि में ब्राह्मण-प्रतिहार, चावडा-प्रतिहार, गुर्जर (गूजर)-प्रतिहार और रघुवशी-प्रतिहारो का नामोल्लेख मिलता है। आधुनिक शोधको ने प्रतिहार मात्र को गुर्जर (गूजर) मान लिया है, जो सर्वथा भ्रममूलक है।

मडोर के प्रतिहार ब्राह्मण थे। उनके शिलालेखो से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र नामक विप्र (ब्राह्मण), जिसको रोहिल्लद्धि भी कहते थे, वेद और शास्त्रो का अर्थ जानने में पारगत था। उसके दो स्त्रियां थीं—एक द्विज (ब्राह्मण) वश की और दूसरी क्षत्रिय कुल की—जो बड़ी गुणवती थी। ब्राह्मणी से जो पुत्र उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए, और क्षत्रिय वर्ण की राज्ञी भद्रा से जो पुत्र जन्मे वे मद्य पीने वाले (अर्थात् क्षत्रिय) हुए †। मडोर के प्रतिहारो के तीनो शिलालेखो से हरिश्चन्द्र का ब्राह्मण, एव किसी राजा का प्रतिहार होना पाया जाता है। उसकी दूसरी स्त्री भद्रा को राज्ञी लिखा है, जिससे सभव है, कि हरिश्चन्द्र के पास जागीर भी हो। उसकी ब्राह्मण वश की स्त्री के पुत्र ब्राह्मण-प्रतिहार कहलाए। जोधपुर राज्य में अब तक प्रतिहार

---

* इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शन. ।
समयज्ञ स्वामिभक्त प्रतिहार स इष्यते ।। चाणक्यसग्रह ।

† विप्र· श्रीहरिचन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षत्रिया । ·।
तेन श्रीहरिश्चन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा ।
द्वितीया क्षतृ (त्रि) या भद्रा महाकुलगुणान्विता ।
प्रतिहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्या ये भवन्सुता ।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते भूता मधुपायिनः ।।
राजपूताना म्यूजियम अजमेर में रखे हुए मूल लेख से ।

ब्राह्मण * हैं, जो उसी हरिश्चन्द्र प्रतिहार के वंशज होने चाहिएँ। उसकी क्षत्रिय वर्णवाली स्त्री भद्रा के पुत्रों की गणना उस समय की प्रथा के अनुसार मद्य पीनेवाले अर्थात् क्षत्रियों में हुई †। उन्होंने अपने बाहुबल से

---

* ईसवी सन् १९११ की जोधपुर राज्य की मनुष्य-गणना की हिन्दी रिपोर्ट हिस्सा, तीसरा, जिल्द पहली, पृष्ठ १६०।

† प्राचीन काल में प्रत्येक वर्ण का पुरुष अपने तथा अपने से नीचे वर्णों में विवाह कर सकता था, और ब्राह्मण पति का अन्य वर्ण की स्त्री से उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मण ही माना जाता था। ऋषि पराशर के पुत्र वेदव्यास की, जो धीवरी सत्यवती (योजनगंधा) से उत्पन्न हुए थे, गणना ब्राह्मणों में हुई। ऋषि जमदग्नि ने इक्ष्वाकुवंशी (सूर्यवंशी) क्षत्रिय रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया, जिससे परशुराम का जन्म हुआ और उनकी भी गणना ब्राह्मणों में हुई। मनु के समय में कामवश ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता था, क्षत्रिय जाति की स्त्री से उत्पन्न ब्राह्मण-पुत्र-ब्राह्मण के समान माना जाता था, परन्तु वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न होने वाला 'अंबष्ठ' और शूद्रा से उत्पन्न होनेवाला 'निषाद' कहलाता था।

स्त्रीष्वनंतरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान् ।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥
अनन्तरासु जातानां विधिरेष सुजातन ।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८ ॥

मनुस्मृति, अध्याय १०।

पीछे से याज्ञवल्क्य ने द्विजों के लिये शूद्रवर्ण की कन्या से विवाह करने का निषेध किया—

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥ ५६ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय।

फिर तो क्षत्रिय वर्ण की स्त्री से उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मण के पुत्र की गणना क्षत्रियवर्ण में होने लगी, जैसा कि शंख और औशनस आदि स्मृतियों से पाया जाता है।

यत्तु ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव वै भवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादितः शूद्र एव भवतीति शंखस्मरणम्।

माण्डव्यपुर (मंडोर) का दुर्ग लेकर* वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। ये प्रतिहार पीछे से कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के सामंत हुए †' ऐसा पाया जाता है। 'संगीतरत्नावली' से ज्ञात होता है कि उसका कर्त्ता चापोत्कट (चावड़ा) वंशी सोमराज, गुजरात के चौलुक्य राजा अजयपाल का प्रतिहार था ‡। अलवर राज्य के राजोरगढ़ नामक प्राचीन किले से मिले हुए विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदि १३ के शिलालेख से पता लगता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ़) तथा आस-पास के प्रदेश पर गुर्जर वंश के प्रतिहार महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था, और वह परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल (महीपाल) के पुत्र विजयपाल का सामंत था §। यह विजयपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था। उस शिलालेख में मथनदेव को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखा है, जिससे अनुमान होता है कि उसे कन्नौज के राजा विजयपाल के बड़े सामंतों में से होना चाहिए।

—याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, श्लोक ९१ पर मिताक्षरा टीका।

नृपाया विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृत ।

पूना की आनंदाश्रम ग्रंथावली मे प्रकाशित 'स्मृतांना समुच्चय', में औशनस् स्मृति; पृ० ४७, श्लोक २८।

* चत्वारश्चात्मजास्तस्या जाता भूधरणक्षमा
श्रीमान्भोगभट. कक्को रज्जिलो दद्द एव च ।।
माण्डव्यपुरदुर्गोस्मिन्नेभिर्निजभुजार्ज्जिते ।...।।
एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १८, पृ० ९५।

† मेरा 'राजपूताने का इतिहास,' जिल्द १ पृ० १५०–५१।

‡ क्षोणिकल्पतरु समीकसुभश्चापोत्कटग्रामणी:
योगीन्द्रो नवचंद्र निर्मलगुण: स्फूर्जत्कलानैपुण:।।
श्रीचौलुक्यनरेन्द्र वेत्रितिलक. श्रीसोमराज. स्वय
विद्वन्मण्डलमंडनाय तनुते संगीतरत्नावलीम् ।। ५ ।।

§ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीक्षितिपालदेवपादानुध्यात परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीविजयपालदेवपादानामभिप्रवर्द्धमान कल्याणविजयराज्ये, संवत्सरशतेषु दशसु षोडशोत्तरकेषु माघमाससितपक्ष-त्रयोदश्यां शनियुक्तायामेव सं० १०१६ माघसुदि १३ शनावद्य श्रीराज्यपुराव-स्थितो महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमथनदेवो महाराजाधिराज श्रीसावटसूनु-र्गुर्ज्जरप्रतिहारान्वय. कुशली ।

एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ३, पृ० २६६।

कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजाओं का, जिनका राज्य गुजरात पर था, वृत्तान्त आगे लिखा जायगा। राजोरगढ़ के शिलालेख में गुर्जर प्रतिहार शब्द देखकर आधुनिक शोधकों ने कन्नौज के इन राजाओं को गुर्जर अथवा गूजर वंश के मान लिया है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है और इसका संक्षिप्त विवेचन नीचे किया जाता है—

१—ग्वालियर में मिली हुई कन्नौज के प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) के समय की प्रशस्ति से जाना जाता है कि 'सूर्यवंश में मनु, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि राजा हुए, उनके वंश में पौलस्त्य (रावण) को मारने वाले राम हुए, जिनका प्रतिहार* उनका छोटा भाई सौमित्र (लक्ष्मण) था, जो इंद्र का मानमर्दन करने वाले मेघनाद आदि के हराने वाला था†'। उसके वंश में नागभट आदि राजा हुए, जिनका वर्णन उक्त प्रशस्ति में किया गया है। आगे चलकर उसी प्रशस्ति में वत्सराज को इक्ष्वाकु वंश को उन्नत करनेवाला ‡ कहा है। इससे निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवंशी क्षत्रिय थे, न कि गुर्जरवंशी।

२—'काव्यमीमांसा' आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर ने, जो कन्नौज के प्रतिहार राजा भोज (प्रथम) के पुत्र महेन्द्रपाल (प्रथम) का गुरु (उपाध्याय) था और महेंद्रपाल तथा उसके पुत्र महीपाल के समय में भी कन्नौज में रहा था, अपनी 'विद्धशालभंजिका' नाटिका में अपने शिष्य महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) को 'रघुकुलतिलक' और 'बालभारत' में 'रघुग्रामणी

---

* यहाँ प्रतिहार शब्द का अर्थ द्वाररक्षक है।

† मनुरिक्ष्वाकुककुत्स्य (त्स्थ) मूलपृथवः क्ष्मापालकल्पद्रुमाः ॥ २ ॥
तेषां वंशे सुजन्मा क्रमनिहतपदे धाम्नि वज्रेषु घोरं
रामः पौलस्त्यहिंस्यं (हिंस्रं) क्षतविहितसमित्कर्म्म चक्रे पलाशैः ।
श्लाघ्यस्तस्यानुजोसौ मघवमदमुषो मेघनादस्य संख्ये
सौमित्रिस्तीव्रदण्डः प्रतिहरणविधेर्यः प्रतिहार आसीत् ॥ ३ ॥

एन्युअल रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, ईस्वी सन् १९०३—४, पृष्ठ २८० ।

‡ तत्सूनुः प्राप्य राज्यं निजमुदयगिरिस्पर्द्धि भास्वत्प्रताप
क्ष्मापालः प्रादुरासीन्नतनमकनजगद्वत्सलो वत्सराजः ॥ ६ ॥
. एकः क्षत्रियपुङ्गवेषु च यशोगुर्वीं धुरं प्रोद्वहन्
इक्ष्वाकोः कुलमुन्नतं सुचरितैश्चक्रे स्वनामाङ्कितम् ॥ ७ ॥
वही, पृ० २८०—८१ ।

(रघुवशियो में अग्रणी), कहा है* । उसी कवि ने 'बालभारत' नाटक में महेंद्रपाल के पुत्र महीपाल को रघुवंश मुक्तामणि (रघुवशी रूपी मोतियो में मणि के समान), एव आर्यावर्त का महाराजाधिराज लिखा है† । राजशेखर के ये सब कथन ग्वालियर की प्रशस्ति के कथन की पुष्टि करते है ।

३—शेखावाटी (जयपुर राज्य) के प्रसिद्ध हर्षनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति में, जो सवत् १०३० आषाढ सुदि १५ को सांभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय की है, उक्त विग्रहराज के पिता सिंहराज के वर्णन में लिखा है कि 'उस विजयी राजा ने सेनापति होने के कारण उद्धत बने हुए तोमर (तवँर) नायक सलखण को मारा (या हराया, मूल लेख में 'हत्वा' या 'जित्वा' शब्द होगा जो जाता रहा है, केवल 'आ' की मात्रा बची है) और चारों ओर युद्ध में राजाओ को मारकर बहुतेरो को उस समय तक कैद में रखा, जब तक कि उनको छुडाने के लिये पृथ्वी पर का चक्रवर्ती रघुवशी (राजा) स्वय उसके यहाँ न आया‡ ।

इससे स्पष्ट है कि सांभर का चौहान राजा सिंहराज किसी चक्रवर्ती अर्थात् बडे राजा का सामत था । उस समय उत्तरी भारत में प्रबल राज्य प्रतिहारो का ही था, जिसके अधीन राजपूताने का अधिकाश ही नहीं, किंतु गुजरात, काठियावाड, मध्यभारत (मालवा) एव सतलज से लगाकर बिहार तक के प्रदेश थे । सांभर के चौहान भी पहले कन्नौज के प्रतिहारो के अधीन थे, क्योंकि उसी हर्षनाथ की प्रशस्ति में सिंहराज के पूर्वज गूवक (प्रथम) के सबध में लिखा है कि उसने बडे राजा नागावलोक (कन्नौज का राज्य छीननेवाला प्रतिहार राजा नागभट दूसरा) की सभा में 'वीर' कहलाने की प्रतिष्ठा पाई थी**। ऐसी दशा में सिंहराज की कैद से उन राजाओ को छुडाने वाला

---

* रघुकुलतिलको महेंद्रपाल. (विद्धशालभंजिका, १, ६) ।
देवो यस्य महेंद्रपालनृपति. शिष्यो रघुग्रामणिः—
('बालभारत' १, ११)

† तेन (= महीपालदेवेन) च रघुवशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनदनेनाधिकृता सभासद —(बालभारत) ।

‡ ...तोमरनायक सलव (ख?) ण सैन्याधिपत्योद्धतं
युद्धे येन नरेश्वरा प्रतिदिश निर्न्ना (र्णा) शिता जिष्णुना ।
कारावेश्मनि भूरयश्च विवृतास्तावद्धि यावद्गृहे
तन्मुक्तयर्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्ती स्वयम् ।
एपिग्राफिया इडिका, जिल्द २, पृ० १२१–२२ ।

** आद्य· श्रीगूवकाख्या प्रथितनरपतिश्चाहमानान्वयोभूत्

रघुवशी राजा कन्नौज का प्रतिहार राजा ही हो सकता है। सिहराज का समकालीन कन्नौज का प्रतिहार राजा देवपाल या उसका छोटा भाई विजयपाल होना चाहिए। अत उक्त प्रशस्ति से स्पष्ट है कि वि० स० १०३० में साभर के चौहान भी कन्नौज के प्रतिहारो को रघुवशी मानते थे।

ऊपर उद्धृत किए हुए इन प्रमाणो से निश्चित है कि कन्नौज के प्रतिहार राजा रघुवशी थे। इस प्रकार ब्राह्मण, चावडे, गुर्जर और रघुवशी, इन चार वशो के प्रतिहारो का अब तक पता चला है। राजाओ के परम विश्वासपात्र पुरुषो को ही प्रतिहार पद दिया जाता था, उनको जागीरें भी मिलती थीं और समय पाकर कोई-कोई स्वतत्र राजा भी बन जाते थे। कुतबुद्दीन एबक शहाबुद्दीन गोरी का गुलाम था, परन्तु पीछे से स्वतत्र सुलतान होने पर उसका वश गुलामवश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी तरह ब्राह्मण, चावडा, गुर्जर आदि प्रतिहार प्रारभ में प्रतिहार थे, परन्तु पीछे से सामत अथवा स्वतत्र राजा हो गए, जिससे उनसे भिन्न-भिन्न प्रतिहार वश प्रसिद्ध हुए, किंतु प्रतिहारवश मूलपुरुष से, नहीं प्रत्युत पद से ही प्रसिद्ध हुआ, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

रघुवशी प्रतिहारो ने प्रथम चावडा से भीनमाल का राज्य छीना। फिर कन्नौज के महाराजा को अपने हस्तगत कर वहीं अपनी राजधानी स्थिर की, जिससे उनको कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। अब तक के शोध के अनुसार उनकी नामावली तथा सक्षिप्त वृत्तात नीचे लिखा जाता है—

(१) नागभट—शिलालेखादि में कन्नौज के प्रतिहार राजाओं की नामावली नागभट से ही आरभ होती है। उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। भडौच जिले के अक्लेश्वर तालुके के हांसोट गांव से विक्रम सवत् ८१३ का चौहान राजा भर्तृवृढ्ढ (भर्तृवृद्ध) दूसरे का एक दानपत्र मिला है, जिससे भर्तृवढ्ढ् दूसरे के नागावलोक का सामत होने का पता लगता है*। इस दानपत्र का नागावलोक यही प्रतिहार नागभट (नागावलोक) होना चाहिए। यदि यह अनुमान ठीक हो तो उसका राज्य उत्तर में मारवाड से लगाकर दक्षिण में भडौंच जिले तक माना जा सकता है। मुसलमान बलचो (बिलोचो) ने उसके राज्य पर आक्रमण किए, परन्तु उसमें वे परास्त हुए†। इन बिलोचो ने सिंध की तरफ से मारवाड पर चढाई की होगी।

श्रीमन्नागावलोकप्रवरनृपसभालब्ध (ब्ध) वीरप्रतिष्ठ।

एपिग्राफिया इडिका, जिल्द २, पृ० १२१।

* एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १२, पृ० २०२—३।

† तद्वन्शो (वशे) प्रतिहारकेतनभृति त्रैलोक्यरक्षास्पदे

(२) ककुस्थ (संख्या १ का भतीजा)—वह कक्कुक भी कहलाता था।

(३) देवराज (संख्या २ का छोटा भाई) उसको देवशक्ति भी कहते थे और वह परम भागवत (वैष्णव) था। उसकी रानी भूयिकादेवी से वत्सराज उत्पन्न हुआ।

(४) वत्सराज (संख्या ३ का पुत्र)—उसने गौड और बंगाल के राजाओं को विजय किया। गौड के राजा के साथ की गई लड़ाई में उसका सामंत मडोर का प्रतिहार कक्क भी उसके साथ था। जिस समय उसने मालवा के राजा पर चढ़ाई की उस समय दक्षिण का राष्ट्रकूट (राठोड) राजा ध्रुवराज अपने सामंत लाट देश के राठोड राजा कर्कराज सहित, जो इन प्रतिहारों का पडोसी था, मालवा के राजा को बचाने के लिये गया, जिससे वत्सराज को हारकर मरु (मारवाड) देश में लौटना पडा और गौड देश के जो दो श्वेत छत्र उस (वत्सराज) ने छीने वे राठोडों ने उससे ले लिए *। उस क्षत्रियपुंगव

देवो नागभट पुरातनमुनेर्मूर्तिर्ब्बभूवाद्भुतम् ॥
येनासी सुकृतप्रमाथिवलच म्लेच्छाधिपाक्षौहिणी· ।
क्षुन्दानस्फुरदुग्रहेतिरुचिरैर्द्दोर्भिश्चतुर्भिर्वभौ ॥ ४ ॥

प्रतिहार राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति; रिर्पोट आफ दी आर्कियालाजिकल सर्वे आफ इंडिया; ईस्वी सन् १९०३-४ पृ० २८०।

* गौडेंद्रवंगपतिनिर्ज्जयदुर्व्विदग्ध-
सद्गूर्ज्जरेश्वरदिग्गर्गलता च यस्य ।
नीत्वा भुजं विहतमालवरक्षणार्थं
स्वामी तथान्यमपि राज्यछ (फ) लानि भुक्ते ॥

—बडौदे का दानपत्र, इंडियन ऐंटिक्वेरी, जि० १२, पृ० १६०।

हेलास्वीकृतगौडराज्यकमलामत्त प्रवेश्याचिरा-
द्दूर्मार्गं मरुमध्यमप्रतिव (ब) लैर्यो वत्सरो (रा) ज व (ब) लै ।
गौडीयं शरदिन्दुपादधवलं छत्रद्वयं को (के) वलं
तस्मान्नाहृततद्यशोपि ककुभां प्राते स्थितं तत्क्षणात् ॥

—इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द ११, पृष्ठ १५७।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि वि० सं० ८१३ में भडौच जिले के अक्लेश्वर तालुके पर चौहानों का राज्य था, और चौहान भर्तृवड्ढ (दूसरा) नागावलोक (नागभट) का सामंत था। पीछे से दक्षिण के राठोडों ने लाट देश अपने अधीन कर लिया, इसलिये दक्षिण के राठोडों और वत्सराज के बीच लडाई हुई होगी। इसके विशेष वृत्तांत के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४५-४६ और पृ० ३४५ का टिप्पण (१)।

ने वलपूर्वक भडि* के वश का राज्य छीनकर इक्ष्वाकु वश उन्नत किया। शक सवत् ७०५ (विक्रम सवत् ८४०) में दिगबर जैन आचार्य जिनसेन ने 'हरिवश-पुराण' लिखा जिसमें उक्त सवत् मे उत्तर (कन्नौज) में इद्रायुव और पश्चिम (मारवाड) में वत्सराज का राज्य करना लिखा है†। वह परम माहेश्वर (शैव) था, और उसकी रानी सुदरीदेवी से नागभट का जन्म हुआ। वत्सराज का मारवाड से दक्षिण में जाकर दक्षिण के राठोडो से लडना निश्चित है, अतएव वर्तमान गुजरात के किसी न किसी विभाग पर उसका अधिकार होना माना जा सकता है।

(४) नागभट दूसरा—(सख्या ४ का पुत्र) उसको 'नागावलोक' भी कहते थे। उसने चक्रायुध‡ को परास्त कर कन्नौज का साम्राज्य उससे छीना। उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारो की राजधानी कन्नौज स्थिर होनी चाहिए। उसने आन्ध्र, सैधव, विदर्भ (वराड), कलिग और वग के राजाओ को जीता, तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य आदि देशो के पहाडी किले ले लिए, ऐसा उपर्युक्त ग्वालियर की प्रशस्ति में लिखा मिलता है¶। राजपूताने मे जिस नाहडराव पडिहार का नाम बहुत

---

* ख्याताद्भण्डिकुलान्मदोत्कटकरिप्राकारदुर्ल्लंघतो
य साम्राज्यमविज्यकार्म्मुकसखा सख्ये हठादग्रहीत्।

राजा भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति, रिपोर्ट आफ दी आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इडिया, ईस्वी सन् १९०३-४, पृ० २८०। भडि का वश कहाँ राज्य करता था, इसका ठीक-ठीक निर्णय नही हो सका। एक भडि तो प्रसिद्ध वैसवशी राजा हर्षवर्द्धन के मामा का पुत्र और उक्त राजा का मत्री था। यहाँ उससे अभिप्राय हो ऐसा पाया नही जाता। यह चावडा वश का कोई राजा हो तो आश्चर्य नही।

† शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिश पचत्तरेषूत्तरा
पातीन्द्रायुधि नाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि (धि) राजेऽपराम्॥

बंबई गैजेटियर, जिल्द १, भाग २, पृ० १९७, टिप्पण २।

‡ चक्रायुध कन्नौज के उपर्युक्त राजा इन्द्रायुध का उत्तराधिकारी था। ये दोनो किस वश के थे यह ज्ञात नही हुआ, परन्तु सभव है कि ये राठोड हो।

¶ आद्य पुमान्पुनरपि स्फुटकीर्तिरस्मा-
ज्जातस्स एव किल नागभटस्तदाख्य।
यत्रान्ध्रसैन्धवविदर्भकलिगभूपै
कौमारधामनि पतगसमैरपाति॥ ८॥

विभाग पर भी उसका राज्य था, जहाँ उसके सोलंकी सामंतों की जागीरें थीं*। काठियावाड में महेंद्रपाल की तरफ से धीइक नामक शासक या सूबेदार रहता था, जैसा कि उक्त दानपत्रो से जान पडता है। 'काव्यमीमांसा' 'कर्पूरमजरी' 'विद्धशालभजिका', 'बालरामायण', 'बालभारत' आदि ग्रंथो का कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि राजशेखर उसका गुरु था। अपने पिता के समान महेंद्रपाल भी भगवती (देवी) का परम भक्त था। उसके तीन पुत्रों—महीपाल (क्षितिपाल), भोज और विनायकपाल—के नामो का पता लगा है। भोज की माता का नाम देहनागदेवी और विनायकपाल की माता का नाम महीदेवी मिला है।

(९) महीपाल (सख्या ८ का पुत्र)—उसको क्षितिपाल भी कहते थे। उसके समय में 'काव्यमीमासा' आदि का कर्त्ता राजशेखर कवि कन्नौज मे विद्यमान था, वह उसको आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुतल और रमठ देशवालो को पराजित करनेवाला लिखता है†। महीपाल दक्षिण के राठोड इद्रराज (तीसरे, नित्यवर्ष) से भी लड़ा था, जिसमें राठोडो के कथनानुसार उसकी हार हुई थी। उसके समय का एक दानपत्र हड्डाला गांव (काठियावाड) से शक सवत् ८३६ (विक्रम सवत् ९७१) का मिला, जिससे पाया जाता है कि उस समय वढवाण में उसके सामत चाप (चावडा) वशी धरणीवराह का अधिकार था। विक्रम सवत् ९७४ का एक और शिलालेख मिला है।

(१०) भोज दूसरा (सख्या ९ का छोटा भाई)—उसने थोडे ही समय तक राज्य किया। अब तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ कि भोज (दूसरा) बडा था या महीपाल।

(११) विनायकपाल (सख्या १० का छोटा भाई)—उसके समय का एक दानपत्र विक्रम सवत् ९८८† का मिला है। उसकी रानी प्रसाधनादेवी से महेंद्रपाल (दूसरे) का जन्म हुआ। उसके अतिम समय से कन्नौज के प्रतिहारो का राज्य निर्बल होता गया और सामत लोग स्वतत्र बनने लग गए।

---

* नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृ० २१२-१५।

† नमितमुरलमौलि पालको मेकलाना रणकलितकलिंग केलित्रुट् केरलेंदो।
अजनि जितकुलूत कुतलाना कुठारो हठहृतमठश्री श्रीमहीपालदेव।
—बालभारत की प्रस्तावना।

* इडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १६, पृ० १७४-७५।

† इडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द १५, पृ० १४०-४१। छपी हुई प्रति में सवत् १८८ पढा जाकर उसको हर्ष सवत् माना है जो अशुद्ध है, उसके फोटो में शुद्ध सवत् ९८८ है।

(१२) महेंद्रपाल दूसरा (सख्या ११ का पुत्र)—उसके समय का विक्रम सवत् १००३ का एक शिलालेख प्रतापगढ से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि घोटार्वर्षिका (घोटार्सी, प्रतापगढ से अनुमान ६ मील पर) का चौहान इद्रराज उसका सामत था, उस समय मडपिका (माडू) में बलाधिकृत (सेनापति) कोक्कट का नियुक्त किया हुआ श्रीशर्मा रहता था और मालवा का तत्रपाल (शासक हाकिम) महासामत, महादडनायक माधव (दामोदर का पुत्र) था, जो उज्जैन में रहता था। चौहान इद्रराज के बनवाए हुए घोटार्वर्षिका के 'इद्रराजादित्यदेव' नामक सूर्यमदिर को 'खर्परपद्रक' गांव महेंद्रपाल (दूसरे) ने भेंट किया, जिसकी सनद (दानपत्र) पर उक्त माधव ने हस्ताक्षर किए थे* ।

महेंद्रपाल द्वितीय के पीछे सभवत काठियावाडके उपर्युक्त सोलकियो के वशधर मूलराज ने प्रबल होकर अनहिलवाडे (पाटण) के अतिम चावडावशी राजा सामतसिंह को जो उसका मामा माना जाता है, विक्रम सवत् १०१७ में मारकर पाटण का राज्य उससे छीन लिया। फिर उसने आबू के परमारो का राज्य भी अपने अधीन किया और कच्छ के जाडेचा (यादव) राजा लाखाफूलाणी को मारकर उसने कच्छ के राज्य पर अपना आधिपत्य जमाया। कल्याण के चौलुक्य राजा तैलप के सामत बारप को युद्ध मे मारकर उसने लाट देश अपने अधीन किया और सौराष्ट्र के चूडासमा राजा ग्रहरिपु पर चढाई कर काठियावाड को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार वर्तमान गुजरात के प्रतिहार राजाओ का राज्य अस्त हो गया।

उधर कन्नौज में महेंद्रपाल दूसरे के पीछे क्रमश देवपाल और विजयपाल राजा हुए, ये दोनो निर्बल राजा थे। फिर विजयपाल के पुत्र राज्यपाल के समय में वि० स० १०७५ (ईसवी सन् १०१८) में गजनी के सुलतान महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया, तब उसने सुलतान की अधीनता स्वीकार करली, जिस पर वह अपने सामतो के हाथ से मारा गया। उसके पीछे त्रिलोचनपाल और यशपाल का कन्नौज पर अधिकार होना पाया जाता है। अत में विक्रम सवत् ११३५ के आस-पास गाहडवालवशी महीचन्द्र का पुत्र चन्द्रदेव कन्नौज का राज्य प्रतिहारो से छीनकर वहां का स्वामी बन गया। इस प्रकार कन्नौज के महाराज्य की इतिश्री हो गई।

ना प्र पत्रिका नवीन सस्करण, भाग ६, स २,
वि स १९८५ (ई स १९२८)

---

* एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १४, पृ० १८२-८४।

९–राजपूताना के गुर्जर राजाओं का संक्षिप्त वृत्तान्त

इस समय गुर्जर अर्थात् गूजर जाति के लोग विशेष कर खेती या पशुपालन से अपना निर्वाह करते हैं; परन्तु पहिले इनकी गणना राजवंशियो में थी। अब तो केवल इनका एक राज्य समथर (बुन्देलखंड में) और कुछ ज़मींदारियाँ युक्तप्रदेश आदि में रह गई हैं परन्तु पहिले पंजाब, राजपूताना तथा गुजरात में इनके राज्य थे। चीनी यात्री हुएन्तसंग विक्रम संवत् की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दुस्थान में आया। वह अपने यात्रा की पुस्तक में गुजर देश का वर्णन करता है और उसकी राजधानी भीनमाल (भिल्लमालश्रीमाल—जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में) होना लिखता है। हुएन्तसग का वतलाया हुवा गुर्जर देश महाक्षत्रप रुद्रदामा के राज्य के अन्तर्गत था, तो भी उक्त राजा के गिरनार के शक सं० ७२ (वि० स० २०७) के कुछ ही वाद के शिलालेख में उसके अधीन के जो देशो के नाम दिये हैं उनमें गुजर नाम नहीं, किन्तु उसके स्थान में श्वभ्र* और मरु‡ नाम दिये हैं जिससे अनुमान होता है कि उक्त लेख के खोदे जाने तक गुर्जर देश (गुजरात) नाम प्रसिद्धि में नहीं आया था।

क्षत्रपो के राज्य के वाद किसी समय गुर्जर (गूजर) जाति के अधीन का देश गुर्जर देश या गुर्जरत्रा (गुजरात) कहलाया होगा।

हुएन्तसग गुर्जर देश की परिधि ८३३ मील वतलाता है जिससे पाया जाता है कि वह देश वहुत वडा था और उसकी लम्बाई अनुमान ३०० मील या उससे भी अधिक होना चाहिए। प्रतिहार (पडिहार) राजा भोजदेव (प्रथम) के विक्रम स० ९०० के दानपत्र में लिखा है कि उसने गुर्जरत्रा (गुजरात) भूमि (देश) के डेंड्वानक विषय (जिले) का सिवागाव दान किया। वह दानपत्र जोधपुर राज्य के डींडवाना जिले के सिवागांव के एक टूटे हुए मन्दिर से मिला था। उक्त दानपत्र का डेंड्वानक जिले जोधपुर राज्य के उत्तर पूर्वी हिस्से का डींडवाना ही है और सिवागाव डीडवाने से ७ मील पर का सेवागाव ही है जहाँ से वह ताम्रपत्र मिला है। कालिंजर से मिले हुए विक्रम सवत् की नवीं शताब्दी के आस-पास के एक शिलालेख में गुर्जरत्रा मडल (देश) के मगलानक गाव से निकले हुए जेंवुक के बेटे देद्दुक की बनाई हुई मडपिका के प्रसग में उसकी स्त्री लक्ष्मी के द्वारा उमा महेश्वर के पट्ट की प्रतिष्ठा किये जाने का उल्लेख है।

* उत्तरीय गुजरात, सावरमती नदी के तट का सारा प्रदेश।

‡ मारवाड़।

मंगलानक जोधपुर राज्य के उत्तरी विभाग का मगलाना गांव है जो मारोठ से १९ मील पश्चिम में और डींडवाने से थोडे से ही अन्तर पर है। हुएन्तसग के कथन और इन दोनो शिलालेखो से पाया जाता है कि विक्रम सवत् की ७वीं से ९वीं शताब्दी तक जोधपुर राज्य का सारा उत्तर पूर्वी हिस्सा गुर्जर देश (गुर्जरत्रा, गुजरात) के अन्तर्गत था। इसी तरह दक्षिण और लाट * के राठौडो तथा प्रतिहारो के बीच की लडाइयो के वृत्तान्त मे पाया जाता है कि गुर्जर देश की दक्षिणी सीमा 'लाट' देश से जा मिलती थी ।

अतएव गुर्जर देश के अन्तर्गत उस समय जोधपुर राज्य का सारा उत्तर पूर्वी हिस्सा तथा उससे दक्षिण का लाट देश तक का वर्तमान गुजरात देश था । अब तो राजपूताने का वह हिस्सा गुजरात नहीं कहलाता परन्तु पहिले गुजरात के अन्तर्गत था । देशो के नाम बहुधा उनपर अधिकार करनेवाली जातियो के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं जैसे कि मालवो से मालवा, शेखावतो से शेखावाटी, राजपूतो से राजपूताना आदि ऐसे ही गुर्जरो (गुर्जरो) के अधिकार होने से गुर्जर देश (गुजरात) नाम से प्रसिद्ध हुआ । गुर्जर देश के राजपूताने के विभाग पर गुर्जरो (गुजरो) का राज्य कब हुआ और कब तक रहा यह ठीक निश्चित नहीं, तो भी यह तो निश्चित है कि रुद्रदामा के समय अर्थात् विक्रम सवत् २०७ तक तो गुर्जरो का राज्य भीनमाल में नहीं हुआ था । सम्भव है कि क्षत्रपो का राज नष्ट होने पर गुर्जरो का राज्य वहा हुआ हो ।

विक्रम सवत् ६८६ के पूर्व उसका राज्य वहां से उठ गया था क्योकि उक्त सवत् में वहां पर चाप (चावडा) वशी राजा व्याघ्रमुख का राज्य होना भीनमाल के ही रहनेवाले (भिल्लमालकाचार्य) प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त के "ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त" से पाया जाता है। लाट देश के चालुक्य (सोलकी) सामन्त पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरि सवत् ४९० (विक्रम सवत् ७९६) के दानपत्र से पाया जाता है कि चावोटक (चाप-चावडे) गुर्जर वश से भिन्न वश था । भीनमाल का गुर्जरो का राज्य चावडो के हाथ में चला जाने के बाद विक्रम सवत् की ११वीं शताब्दी के आरम्भ के आस-पास के प्रदेश पर गुर्जरो का एक राज्य होने का भी

* लाट देश की उत्तरी सीमा बम्बई हाते के खेडा जिले में बहनेवाली मही नदी तक और दक्षिणी सीमा तापी नदी से कुछ दक्षिण तक होना ताम्र-पत्रादि से पाया जाता है, सामान्य रूप से मही और तापी नदियो के बीच का देश 'लाट' माना जाता है ।

पता चलता है। अलवर राज्य के राजोरगढ नामक प्राचीन क़िले से एक शिलालेख विक्रम संवत् १०१६ माघ सुदी १३ का मिला है जिससे पाया जाता है कि उस समय राज्यपुर (राजोरगढ़) पर प्रतिहार गोत्र के गुर्जर महाराजाधिराज सावट का पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव राज्य करता था और वह परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपाल कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा था। उस शिलालेख में मथन देव को महाराजाधिराज परमेश्वर लिखा है जिससे अनुमान होता कि वह क्षितिपाल देव (महीपाल) के बडे सामन्तो में से हो। उसी शिलालेख से यह भी जाना जाता है कि उस समय वहां पर गुर्जर (गूजर) जाति के किसान भी थे।

वर्तमान गुजरात में भडौच पर भी गुर्जरो का विक्रम संवत् ६४५ से ७९३ तक रहने का पता तो उनके दानपत्रो से ही लगता है। सभव है कि उक्त सवतो के पहिले और पीछे भी उसका राज्य वहां रहा हो। इससे यह यह भी संभव है कि भीनमाल के गुर्जरो का राज्य भडौच तक फैला हुआ हो और भीनमाल का राज्य उनके हाथ से निकल जाने पर भी भडौच के राज्य पर उनका अधिकार बना रहा हो। भडौच के गुर्जर राजाओ के दानपत्रो से पाया जाता है कि भडौच के गुर्जर राज्य के अन्तर्गत भडौच जिला सूरत जिले के ओरपाड 'चोरासी' और बारडोली ताल्लुके तथा उनके पास के बडौदा राज्य, रेवाकाठा और सचीन राज्य के इलाके होने चाहियें।

गूजर जाति की उत्पत्ति के विषय में आधुनिक प्राचीन शोधको ने अनेक कल्पनायें की हैं, जनरल कनिंगहॉम ने इनका यूची अर्थात् कुशन वंशी होना अनुमान किया है। वी० ए० स्मिथ ने इनकी गणना हूणो में की है। सर जेम्स कैंपबेल का कथन है कि ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में खजर नाम की एक जाति जहा यूरोप और ऐशिया की सीमा मिलती है, वहां रहती थी। उसी जाति के लोग गुर्जर या गूजर है। श्रीयुत देवदत रामकृष्ण भण्डारकर ने कैंपबेल का कथन स्वीकार किया है* यह सब कल्पना ही है क्योंकि

---

* भण्डारकर महाशय ने साथ में यह भी लिखा है कि बम्बई अहाते में गूजर (गुर्जर) नही हैं। पाया जाता है कि यह जाति हिन्दुओ में मिल गई। वहा गूजर (गुर्जर) बाणिये (बणिये, महाजन) और बाणिये (महाजन) गूजर (गुर्जर) कुम्भार और गूजर (गुर्जर) सिलावट और सिलावट है। खानदेश में देशी कुनबी और गूजर (गुर्जर) कुनबी हैं। एक मराठा कुटम्ब गुर्जर कहलाता है जो महाराष्ट्र के आधुनिक इतिहास में प्रसिद्ध

उनमें से कोई भी यह सप्रमाण नहीं वतला सका कि अमुक समय में अमुक कारण से यह जाति वाहर से यहां आई। खजर से गुर्जर या गूजर जाति की उत्पति मानना वैसी ही कपोल कल्पना है, जैसाकि कोई यह कहे सक्सेने कायस्थ यूरोप की सेक्सन जाति से है।

नवसारी से मिले हुऐ भडौच के गुर्जर वंशी राजा जयभट (तीसरे) के कलचुरि सवत् ४५६ (विक्रम सवत् ७६२) के दानपत्र में गुर्जरों का महाराज कर्ण (भारत प्रसिद्ध) से होना लिखा है।

रहा है। करहाडा ब्राह्मणो में भी गुर्जर नाम मिलता है। राजपूताने में भी गुजर गौड ब्राह्मण है, ये सव गूजर (गुजर) है। भण्डारकर महाशय को इन नामो की उत्पत्ति का जानने मे भ्रम हुआ है और उसी से इन सबको गूजर (गुर्जर) ठहरा दिया, परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है जैसे श्रीमाल नगर (भीनमाल जोधपुर राज्य मे) के ब्राह्मण, महाजन, जडिये आदि वाहर जाने पर अपने मूल निवास स्थान पर से वहा के ब्राह्मणो आदि से भिन्न वतलाने के लिये श्रीमाली ब्राह्मण श्रीमाली महाजन, आदि कहलाये, ऐसे ही मारवाड के दधिमति (दाहिमा) क्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मण, राजपूत, जाटादि, दाहिमे ब्राह्मण, दाहिमें राजपूत, दाहिमें जाट आदि कहलाये और गौड देश के ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ आदि वाहर जाने पर अपने मूल निवासस्थान के नाम से गौड ब्राह्मण गौड राजपूत, और गौड कायस्थ कहलाये वैसे ही प्राचीन गुर्जर देश के रहनेवाले ब्राह्मण, महाजन, कुम्हार, सिलावट आदि गुर्जर ब्राह्मण गुर्जर वनिये, गुर्जर कुम्हार, गुर्जर सिलावट कहलाये है। अतएव गुर्जर ब्राह्मण आदि का अभिप्राय यह नही है कि (गूजर गुर्जर) जाति के ब्राह्मण आदि। उनके नाम के पूर्व लगने वाला गुर्जर नाम उनके आदि निवास के देश का सूचक है, न कि जाति का। उक्त महाशय ने एक करहाडा ब्राह्मण कुटुम्ब के यहां के ई० स० ११९१ (वि० स० १२४८) के दानपत्र से थोडा सा अवतरण भी दिया है जिसमे दान देने वाले गोविन्द ब्राह्मण को काश्यप, अवत्सार और नैध्रुव इन तीन प्रवर वाले नैध्रुव गोत्र का और गुर्जर उपनाम वाला (गुर्जर नमुपाभिधान) कहा है।

यदि गूजर जाति का एशिया की खजर जाति से होना माना जावे तो क्या उनके यहां भी जाति और प्रवर का प्रचार था? उन्होंने गूजर गौड उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि इस नाम का तात्पर्य गूजर जाति के गौड ब्राह्मण से है परन्तु वास्तव मे गुर्जरगौड का अर्थ यही है कि

वडगूजर

कर्नल टॉड ने लिखा है कि "वडगूजर सूर्य्य वंशी है और गुहिलोतो को छोडकर केवल यही एक वश ऐसा है जो अपने को रामचन्द्र के वेटे लव (?) से निकला वतलाते है। वडगूजर लोगो के वडे-वडे इलाके ढूंढाड (जयपुर राज्य) में थे और माचेडी अलवर के राजाओ का मूल स्थान) के राज्य में राजोर (राजोरगढ़) का पहाडी क़िला उनकी राजधानी थी, राजगढ़ और अलवर भी उनके इलाके थे। वडगूजर लोगों को कछवाहो ने इन निवास स्थानो से निकाल दिया। इस वश के एक दल ने गगा किनारे जाकर शरण ली और वहाँ पर नया निवास स्थान अनूप शहर वसाया"। कर्नल टॉड ने वडगूजरो की राजधानी राजोरगढ़ वतलाया है और हम ऊपर वि० स० १०१६ के शिलालेख से वतला चुके है कि गुर्जरवश के राजा मथनदेव के वंशधर हो। इनका राज्य उस प्रदेश पर वहलोल लोदी के समय तक रहना तो उनके शिलालेख से निश्चित है, जिसके पीछे कछवाहो ने उनकी जागीरें छीनी हो। 'वडगूजर' नाम शिलालेख लेखो में पहिले-पहल माचेडी की वावडी के वि० स० १४३९ के शिलालेख में देखने में आया, जिसमें उक्त सवत् में वैशाख सुदि ६ को खन्डेलवाल महाजन के द्वारा सुरताण (सुलतान) पेरोज-साहि (फिरोजशाह तुग़लक) के राज्य समय, जव कि माचाडी (माचेडी) पर वडगूजर वश के राजा आसलदेव के पुत्र महाराजाधिराज गोगदेव का राज्य था, उक्तवावडी के वनाये जाने का उल्लेख है। इसी गोगदेव के शिलालेख वि० सं० १४२१ और १४२६ के भी देखने में आये। गोगदेव फिरोजशाह तुग़लक का सामत था। वहीं की एक दूसरी वावडी में एक शिलालेख वि० स० १५१५, शाके १३८० का सुरताण (सुल्तान) वहलोलसाहि (बहलोल लोदी) के समय का विगडी हुई दशा में है। उस समय माचेडी में वडगूजर वंशी महाराज रार्मासह के पुत्र महाराज रजपालदेव (राज्यपालदेव) का राज्य होना लिखा है। उक्त लेख का महाराज रार्मासह, गोगदेव का पुत्र या पौत्र होना चाहिये।A

गुर्जर देश के गौड ब्राह्मण न कि गूजर जाति के गौड ब्राह्मण।

भारत के इतिहास में गुर्जर वशी राजाओ का विक्रम की तीसरी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक वर्णन मिलता है, जिनका राज्य भीनमाल और भडौच में था। गुर्जर नरेश, गुर्जर कैसे कहलाये, इसका अभी तक स्पष्टीकरण नही हुआ है। गुर्जर सस्कृत का शब्द है, जो वश, जाति तथा देश-वाचक वन गया है, जैसे गुर्जर-गुर्जर नरेश, गुर्जर-गूजर जाति, गुर्जर-गुर्जरत्रा, गुजरात प्रदेश। 'गर्जर' शब्द से 'गुजरात' बन सकता है, यह असभव नही है, पर मूल में

'गुर्जर' शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, जिससे यह शब्द देश तथा जाति वाचक बना, इस पर विचार होना आवश्यक है।

वि० स० की तीसरी शताब्दी के प्राप्त लेखो मे गुजरात का वह विभाग जहाँ भीनमाल और भडौच आदि है, 'मरू और श्वभ्र' नाम से प्रसिद्ध था। इनके पीछे वि० स० की सातवी शताब्दी में आनेवाले चीनी यात्री हुएन्त-सग ने अपने यात्रा विवरण मे 'गुर्जर देश' का नामोल्लेख किया है, जो वर्तमान गुजरात प्रदेश के एक भाग का सूचक है, जबकि गुर्जर नरेशो का गुजरात पर आधिपत्य स्थिर हो गया था। गुर्जरो के शिलालेखो मे इनको 'कर्ण' का वशधर वतलाया है। कर्ण कौन था, यह निश्चित नही हुआ है। यदि भारत प्रसिद्ध सूतपुत्र कर्ण से आशय हो तो गुर्जर नरेश मूल मे कुरु-पाञ्चाल के निवासी हो सकते है, जहाँ गुजरान वाला प्रात भी है, जो उनके किसी पूर्वज के नाम पर गुजरान वाला कहलाता है और वहाँ के निवासी होने से ये लोग गुर्जर कहलाये हो। गुर्जरो का क्षत्रपो के वाद उत्थान होता है, फलत उनके नाम से उनका अधिकृत प्रदेश 'गुर्जरत्रा (गुजरात)' कहलाया हो।

भारत की सैनिक जातियो में गुर्जर जाति का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और वह सैनिक सेवा के अतिरिक्त पशु-पालन और कृषि-कर्म से जीविका चलाती है। कुछ विदेशी तथा एतद्देशीय विद्वानो का अनुमान है कि वे वाहर से आई हुई 'कुशन', 'हूण' और 'खजर' जातियो मे से है। हमारे अनुमान से जातिवाचक गूजर शब्द गुर्जर देश मे निवास करने से ही परिचय के लिए प्रयोग मे आने लगा और वहाँ के रहनेवाले क्षत्रिय गुर्जर (गूजर), ब्राह्मण गुर्जर, ब्राह्मण (गुजराती ब्राह्मण, गूर्जर गोड), गुर्जर महाजन वनिया कहलाने लगे।

वडगूजरो को कर्नल टॉड ने सूर्यवशी वतलाते हुए रामचन्द्र के पुत्र लव के वशधर होने का उल्लेख किया है। लव की राजधानी लाहौर होना और उसके नाम से लाहौर वसाये जाने का उल्लेख मिलता है। अतएव वडगूजर लव के वशधर हो तो मूल मे पजाव के निवासी होना चाहिये। ये लोग वडगूजर कैसे कहलाये इसका स्पष्टीकरण नही हुआ है। यदि गूर्जरो से इनका सवन्ध हो तो गूजर ही कहलाना चाहिये। जो हो यह भी भारत का प्राचीन क्षत्रिय वश है, ऐसा जान पडता है। श्री ओझाजी ने इनका गूर्जर वशी मथनदेव के वशधर वतलाये है, जो सभव भी है। मूल में ये गूर्जर कहलाते हो और पीछे से किसी कारणवश 'वड' शब्द को मिलाकर उन्होने अपने को 'वडगूजर' वनाया हो। वि० स० की पद्रहवी शताब्दी और सोलहवी

गुर्जरों (गूजरो) के साथ इस समय राजपूतो का शादी व्यवहार नहीं है; परन्तु बडगूजरो (गूजरो में बडे-बडे गूजर) के साथ है और जयपुर के राजाओं की कितनी एक रानियां इस वंश की थीं। ग्वालियर के तंवर राजा मानसिंह की गूजरी राणी के नाम पर उसने गूजरी, बहुल-गूजरी, माल गूजरी और मंगल-गूजरी नामकी चार रागनियां बनाई, ऐसा जनरल कनिंग्हाम का कथन है।



१०–चित्तौड़ के क़िले पर मालवा के परमारों का अधिकार

मेवाड और मालवा के शिला-लेखो से यह नहीं पाया जाता कि मालवे के परमार राजाओ में से किसी ने मेवाड पर चढ़ाई की अथवा चित्तौड़ का किला उनके अधिकार में रहा, परन्तु अन्य साधनो से ऐसा होना सिद्ध है। बीजापुर (जोधपुर राज्य के गोडवाड इलाके में) से मिले हुए हस्तिकुडी (हथुडी, जोधपुर राज्य) के राष्ट्रकूट राजा धवल और उसके पुत्र बाल-प्रसाद के समय के वि० स० १०५३ (ई० स० ९९७) माघ शुक्ल १३ के शिलालेख से पाया जाता है कि मुञ्ज ने मेदपाट के मदरूपी आघाट (आहाड)[1] को तोडा उस समय धवल ने मेवाड की सेना को शरण दी थी।[2] इससे निश्चित है कि मालवे के परमार राजा मुञ्ज ने मेवाड की राजधानी आघाटपुर को नष्ट किया था। यह चढ़ाई मेवाड के किस राजा के समय में हुई इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता, परन्तु राजा शक्तिकुमार के समय यह चढाई हुई होगी क्योंकि वह मुज का समकालीन था।[3] सभव है कि उस समय चित्तौड का सुप्रसिद्ध किला भी मुज के हाथ

1 उदयपुर से अनुमान दो मील पूर्व में।

2 एपिग्राफ़िया इण्डिका, जिल्द १०, पृ० १२–२१

3 देखो मेरा राजपूताने का इतिहास (प्रथम सस्करण), जिल्द १। पृ० ४३५।

शताब्दी तक अलवर के इलाके मे इनका अधिकार था, जिसको मेवात-प्रदेश कहते है। मुगल दर्बार में भी, सम्राट् जहागीर के वर्णन में अनिरार्यसिह दलन का उल्लेख आता है, जो मसबदारो की श्रेणी में था। बडगूजरो के सवन्ध राजपूतो में हुए है, जो आश्चर्य की बात नही है।

में चला गया हो । यदि ऐसा हुआ हो तो चित्तौड के क़िले पर मालवा के परमारो का कोई स्मारक अवश्य मिलना चाहिए।

मुज के छोटे भाई सिधुराज के पुत्र भोजदेव के चित्तौड के गढ़ में रहने और वहां पर त्रिभुवननारायण नामक विशाल शिव-मदिर बनवाने के उल्लेख मिलते है ।

उदयपुर (मेवाड) राज्य के चीरवा नामक गांव (एकलिगजी से तीन मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मदिर की दीवार में, वहीं के किसी प्राचीन मदिर की एक प्रशस्ति लगी हुई है, जो वि० स० १३३० कार्तिक सुदि १ (ई० स० १२७३ ता० १३ अक्टोबर) शुक्रवार की मेवाड के राजा समरसिह के समय की है । जिस मूल मन्दिर की यह प्रशस्ति थी, वह मेवाड के राजाओ की नियत किये हुए नागहृद (नागदा, मेवाड की पुरानी राजधानी, जो एकलिगजी के निकट है) के तलारक्षो (नगर के रक्षक, कोतवालो) के पूर्वज ने बनवाया था । उसमें तलारक्ष उद्धरण के वश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके वशजो ने जो लडाइयां लडीं, या जो राजकीय सेवाएं कीं, उनका भी उल्लेख है। उसमें चित्तौड के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है—"रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन राजा समरसिह की कृपा से चित्तौड में वशपरम्परागत तलारता पाकर, श्री भोज-राज (राजा भोज) के बनवाये हुए त्रिभुवननारायण नामक मन्दिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था।"[4]

चित्तौड के किले के रामपोल दरवाजे के बाहर के चबूतरे पर मेवाड के राजा समरसिह के समय का वि० स० १३५८ का एक शिलालेख बिगडी हुई दशा में मुझे मिला। उससे पाया जाता है कि महाराजधिराज श्री समरसिह के राज्य-समय-प्रतिहार (पडिहार) वशी महारावत राजश्री·· · ··· राज (राजपुत्र) माता के बेटे राजा धारसिह ने श्री भोज-स्वामी देवजगती (भोजस्वामी नामक मन्दिर या राजा भोज के बनवाये

---

4 रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचार ।
मदन प्रसन्नवदन सतत कृतदुष्टजनकदन· ।।२७।।
श्री चित्रकूटदुर्गे तलारता य पितृक्रमायतां।
श्रीसमरसिहराजप्रसादत प्राय निपाप ।।३०।।
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे ।
यो विरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्व शिवलुप्सु· ।।३१।।
(चीरवा का शिलालेख)

हुए देव-मन्दिर के अहाते में) में प्रशस्ति पट्टिका सहित.... 'बनवाया[5]।

ऊपर के दोनो शिलालेखो से पाया जाता है कि चित्तौड के किले पर भोज नाम के किसी राजा ने एक शिवमन्दिर बनवाया था, जिसको पहले शिलालेख में त्रिभुवननारायण का और दूसरे में भोजस्वामी का मन्दिर कहते है और वह मन्दिर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड पर के उक्त मन्दिर को बनवाने वाला भोजदेव (राजा भोज) कौन था?

मेवाड के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मोरियो (मौर्य वंशियो) से लिया। उसके पीछे उस वंश में भोज नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं। मेवाड के पडोसियो अर्थात् साभर और अजमेर के चौहानो, आबू के परमारो और गुजरात के चौलुक्यो में भी भोज नाम का कोई राजा नहीं हुआ। मेवाड के निकट के पडोसी मालवा के परमारो में भोजदेव नाम के प्रसिद्ध राजा का होना पाया जाता है, जैसा हमने इस लेख के आरम्भ में बतलाया है। सम्भव है मुञ्ज ने आहाड को तोडने पर चित्तौढ़ का किला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो, परन्तु इससे भी यह निश्चय नहीं होता कि चित्तौड के त्रिभुवननारायण के मन्दिर या भोज स्वामीजगती का बनानेवाला उपर्युक्त मुञ्ज के छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र प्रसिद्ध परमार भोज ही था। इसके निर्णय के लिये और प्रमाण अपेक्षित है, परन्तु वे भी मिल जाते हैं।

वि० स० १०८८ में पोरवाड महाजन विमल (विमलशाह) ने आबू पर के देलवाडा गाव में करोडो रुपयो के व्यय से आदिनाथ का जैन मन्दिर बनवाया। उसका जीर्णोद्धार वि० स० १३०८ ज्येष्ठ सुदि ९ को हुआ। तत्-सम्बन्धी प्रशस्ति में लिखा है कि चन्द्रावतीपुरी का राजा धन्धु (परमार) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की तब भीमदेव उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह (धन्धुक) धारानगरी के स्वामी भोज-देव के पास चला गया। इससे इतना तो निश्चय हुआ कि आबू का परमार राजा धन्धु (धन्धुक) भीमदेव के क्रुद्ध होने पर भोज की सेवा में जा रहा था[6]।

---

5 नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग १, (नवीन सस्करण) पृ. ४१३ और टि० ५७।

6 तत्कुल कमलमरालः कालः प्रत्यर्थिमडलीकानां।
चन्द्रावतीपुरीश समजनि वीराग्रणीर्धन्धु ॥५॥

उसी मन्दिर के वनाये जाने के सम्वन्ध में जिनप्रभसूरि जो मेवाड़ के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने "तीर्थ-कल्प" में लिखता है--"जव गुर्ज्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धाधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ तव उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न कर उस (धन्धुक) को चित्रकूट (चित्तौड) से लाकर वि० स० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर वडे खर्च से विमलवसती नामक आदिनाथ का उत्तम मन्दिर वनवाया[7]।

उपर्युक्त दोनो कथनो को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलकी राजा भीमदेव से विगाड हो जाने पर आवू का परमार राजा धन्धुक मालवे के परमार राजा भोज के चित्तौड में रहते समय उसके पास चला गया था, जहाँ से विमलशाह उसे वापस लाया। इससे चित्तौड में परमार राजा भोज का रहना स्पष्ट है और उसने ही वहाँ त्रिभुवननारायण का मन्दिर वनवाया था।

उक्त मन्दिर का नाम "त्रिभुवननारायण" क्यो हुआ, यह भी वतलाना आवश्यक है। गोविन्द सूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न महोदधि' नामक ग्रन्थ वि०-स० ११९७ (ई० स० ११४०) में वनाया।[8] उक्त ग्रन्थ में श्लोक वद्ध व्याकरण के गण दिये है और गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण है। तद्धित प्रकरण के गणो का विवेचन वर्द्धमान ने वहुत अच्छी जगह किया है। अपत्यावाचक तद्धित रूपो के उदाहरण में गणरत्न महोदधि में श्लोको के लम्वे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये है। उनकी रचना से जान पडता है कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से है, क्योकि छन्द एक ही है। उससे यह

श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य (!) मान किलधुधराज।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिप भोजनृप प्रपेदे ॥६॥
(आवू का शिलालेख)

7 राजानकश्रीधाधुके क्रुद्ध श्रीगुर्ज्जरेश्वरम्।
प्रसाद्य भक्तया त चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥३९॥
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात्।
सत्प्रासाद सविमलवसत्याह्व व्याधापयत् ॥४०॥
(तीर्थकल्प का अर्वुदकल्प)

8 सप्त नवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणा विक्रमतो गणरत्न महोदधिर्विहित ॥
(एगलिंग का सस्करण, पृ० ४८०)

भी जान पड़ता है कि यह काव्य व्याकरण के उदाहरणों के अतिरिक्त द्व्याश्रय काव्य की शैली का है और मालवा के परमार राजा भोज और उसके पूर्वजों की यश गाथाओं से परिपूर्ण है। सम्भव है कि भोजराज-रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखलाने के साथ-साथ परमार वंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिए भोज के किसी सभा-पंडित ने उसकी रचना की हो। उक्त सर्ग का कथा-प्रसंग ऐसा जान पड़ता है कि भोज क्षिप्रा नदी के तट पर महाकाल वन में किसी ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ अनेक ऋषियों ने उसका स्वागत किया। किसी [ऋषि] ने यह भी कहा कि [आपके पूर्वज] वैरिसिंह आदि में शिव-भक्ति थी, किंतु आपकी तरह शिवका प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही थी वहाँ कई ऋषि-पत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड़कर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। उसमें ऋषि-पत्नियों के प्रसंग में जिस राजा को उत्सुकता से वे देखने आयीं और देखती हैं उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण और भोज इन तीनों नामों से बतलाया है[9] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनों एक ही राजा के नाम हैं, जो मालवे का राजा था। लोक और भुवन पर्याय शब्द हैं, इसलिए त्रिभुवननारायण और त्रिलोकनारायण एक ही राजा के सूचक हैं। अतएव उपर्युक्त भोज स्वामी और त्रिभुवननारायण नाम एक ही मन्दिर के बोधक हैं और त्रिभुवननारायण भोज का बिरुद (उपनाम) होना चाहिए। मालवा के कई परमार राजाओं के बिरुद भी मिलते हैं, यथा—वैरिसिंह (दूसरा) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक' मुंज का 'वाक्पतिराज', 'अमोघवर्ष' और 'उत्पलराज' तथा सिंधुराज का 'नवसा-

---

9 नाडायनि व्रीडजडेह मा। भूस्वारायणि स्फारम् चारुचक्षु विलोक (?)
वाकायति मुञ्जकुञ्जा-न्मौञ्जायनी (?) मालवराज एति ।।
वीक्षस्व तैकायनि शसकोऽय शाणायनि क्वायुधवाणशाणः।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्या। स्त्रिलोकनारायणभूमिपालः ।।
(पृ० २७७)

द्वैपायनीतो भव सायकाय का न्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम्।
त्वरस्व चैत्रायणि चाटकाय न्यौदुम्बरायण्ययमेति भोजः ।।
(पृ० २७८)

मा होसकायन्यनुधाव हसान्, मा शाश पायन्यु पर्शिशपे स्था।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलाय, न्युपैहिदृष्टो नृपतिर्व्रजाम ।।
(पृ० २७९)

हसांक'। इससे हम कह सकते है कि वहां रहते समय भोज ने जो शिवमन्दिर बनवाया उसका नाम अपने उपनाम पर "त्रिभुवननारायण" का मन्दिर रखा[10]।

मालवा के परमारो का अधिकार चित्तौड पर परमार यशोवर्मा तक रहा। यशोवर्मा के पिता नरवर्मा के समय गुजरात के चौलुक्य (सोलकी) राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने मालवे पर चढाई की और उसका देश विजय करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। नरवर्मा का देहान्त होने पर उसका पुत्र यशोवर्मा जयसिंह से लडता रहा और १२ वर्ष की लडाई के बाद जयसिंह ने यशोवर्मा को जीतकर बहुधा सारा मालवा अपने राज्य में मिला लिया जिससे चित्तौड का किला भी सोलकियो के अधिकार में चला गया। जयसिंह के उत्ताराधिकारी कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड से मिले है। कुमारपाल का उत्ताराधिकारी अजयपाल अयोग्य था। उसके मारे जाने के बाद गुजरात के राज्य में अव्यवस्था फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड के राजा जैत्रसिह ने अपने पैतृक चित्तौर्ड के किले पर फिर अधिकार कर लिया।*

10 यह विशाल मन्दिर महाराणा कुम्भकरण के बनवाये हुए चित्तौड के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ से दक्षिण में है, उसके गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है और पीछे की दीवार में अनुमान ६ फुट की ऊँचाई पर शिव की विशाल त्रिमूर्ति बनी हुई है, जिसकी अद्‌भुत आकृति देखकर ग्रामीण लोग उक्त मन्दिर को अदद्‌बद्‌जी (अद्‌भुतजी) का मन्दिर कहते है। वि० स० १४८५ में चित्तौड के महाराणा मोकल ने उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर वहाँ पर एक बडी प्रशस्ति लगवायी, जिससे लोग उसे 'मोकलजी का मन्दिर' भी कहते हैं।

वीणा मा० प०, इन्दौर

धार-अक, कार्तिक स० १९९८ ई० स० १९४१।

* इस निबन्ध में प्रायः उन्ही सारी बातो का सक्षेप में समावेश हुआ है, जो 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' में वर्णित है। 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवननारायण' शीर्षक निबन्ध में श्री ओझाजी ने मेवाड के गुहिलवशी राजा सामन्तसिह के गुजरात के सोलकी राजा अजयपाल को हराने के बाद गुहिलवशियो का चित्तौड पर अधिकार होने का अनुमान किया है। (देखो आगे का निबन्ध सख्या १२ पृ०, १९४ टिप्पण संख्या २)। सम्भव है, उनका यह अनुमान ठीक हो।

११–सिन्धुराज की मृत्यु और भोज की राजगद्दी

प्रसिद्ध विद्यानुरागी परमारवंशी राजा भोज के पिता, तथा राजा मुंज के छोटे भाई, राजा सिन्धुराज का देहान्त कब और कैसे हुआ यह अभी तक अनिश्चित है। परमारों के शिलालेख, दानपत्रों तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि विशेष प्रसंग को छोड़ कर हमारे यहाँ ऐसी घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जाता। राजा युद्ध में जीतता हुआ वीरगति पावे, या असाधारण रीति पर देह छोड़े, तब तो वह बात कही जाती है, परन्तु जब कभी कोई राजा शत्रु के हाथ युद्धक्षेत्र में मारा जाता है, या हार जाता है अथवा क़ैद होकर मरता है तब उसके वंश के इतिहास लेखक तो उस घटना का अपलाप या गोपन करते हैं किंतु विपक्ष के लोग अपने वंश का उत्कर्ष प्रकट करने के लिये, कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर, उसका उल्लेख अवश्य करते हैं।

जयसिंहसूरि अपने कुमारपालचरित में गुजरात के सोलंकी राजा चामुंडराय के वृतान्त में लिखता है कि 'चामुंडा के वर से प्रबल होकर चामुंडराज

इसके बाद ऐसा पाया जाता है कि गुजरात के राजा भीमदेव 'द्वितीय' (भोला भीम) के समय गुंजरातियों की सामन्तसिंह पर चढाई हुई, उसमें सामन्तसिंह के हाथ से उसका नवस्थापित वागड राज्य भी शत्रुओं के हाथ में चला गया और गुजरात की सेना ने आगे बढकर मेवाड़ पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर आहाड में झण्डा जा खडा किया, एवम् चित्तौड पीछा गुजरातवालो के हाथ में आगया। वि० सं० की तैरहवीं शताब्दी के पिछले भाग में गुजरात के राजा भीमदेव के समय पुनः वह विशृंखलता फैली, जिसका लाभ उठाकर मेवाड के गुहिलवंशी राजा जैत्र-सिंह ने (जो कुम्भलगढ के शिलालेख के अनुसार सामन्तसिंह का चचेरा भाई था) पराक्रम प्रदर्शन कर गुजरातवालो के अधिकार में गई हुई वागड तथा मेवाड की भूमि पीछी छीन ली और आहाड से गुजरातियो का दखल उठाकर चित्तौड पर भी पुनः गुहिलवंशियो का आधिपत्य स्थिर कर लिया।

(सं० टि०)

ने मदोन्मत्त हाथी के समान सिंधुराज को युद्ध में मारा,[1] । यहाँ पर सिन्धुराज का अर्थ सिन्धु देश का राजा और सिन्धुराज नामक राजा दोनों ही प्रकार से हो सकता है । यह निर्णय करना है कि दोनो में से कौनसा अर्थ ठीक है ।

वडनगर से मिली हुई सोलंकी राजा कुमारपाल की प्रशस्ति में जो वि० स० १२०८ (ई० स० ११५१) आश्विन शुदि ५, गुरुवार* की है, लिखा है कि उस (मूलराज) का पुत्र राजाओ का शिरोमणि चामुडराज हुआ, जिसके मस्त हाथियो के मदगन्ध की हवा के सूघने मात्र से, दूर से ही, मदरहित होकर भागते हुए अपने हाथियो के साथ राजा सिन्धुराज इस तरह से नष्ट हुआ कि उसके यश की गन्ध तक न रही[2] ।'

इस श्लोक में 'नष्ट' के अर्थ 'भागा' और 'मारा गया' दोनो ही हो सकते है, किन्तु कुमारपालचरित से ऊपर उद्धृत् किए गए श्लोक में और इसमें एक ही चामुडराज से एक ही सिन्धुराज के पराजय का वर्णन होने से दोनो को मिलाने से 'मारा गया' अर्थ करना ही ठीक है । यहाँ पर 'सिन्धुराज' का विशेषण 'क्षोणिपति' होने से 'सिन्धुराज नामक राजा' ही अर्थ कर सकत है, सिन्धुदेश का राजा नहीं, क्योकि वैसा होने से क्षोणिपतिः (= भूपति) पद 'सिन्धुराज' के साथ नहीं आ सकता । इस प्रशस्ति का सम्पादन करते समय डाक्टर बूलर भ्रम में पड गये और असली अर्थ को न निकाल सके । उन्होने 'सिन्धुराज' का अर्थ 'सिन्धदेश का राजा' किया[3]

---

1 रेजे चामुण्डराजोऽथ यश्चामुण्डावगेद्धुर ।
सिंधुरेंद्रमिवोन्मत्त सिंधुराजम् मृधेऽवधीत् ।।

जयसिंहसूरि ने वि० स० १४२२ (ई० स० १३६५) में इस काव्य की रचना की थी ।

(कुमारपालचरित १।३१)

2 सूनुस्तस्य बभूव भूपतिलकश्चामुण्डराजाह्वयो
यद्गन्धद्विपदानगन्ध पवनाघ्राणेन दूरादपि ।
विभ्रस्यन्मदगन्धभग्नकरिभि श्रीसिंधुराजस्तथा
नष्ट क्षोणिपतिर्यथास्य यशसा गन्धोपि निर्नाशित ।।

(एपिग्राफिआ इन्डिका, जिल्द १, पृ० २९७)

3 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २९४,३०२ ।

और उससे क्षोणिपतिः का मेल न मिलता देखकर पाद टीका में 'क्षोणिपतिर्यस्य' की जगह 'क्षोणिपतेर्यस्य' पाठ सुधार कर अर्थ किया। 'जिस राजा के (यश का गंध इत्यादि)'। परन्तु जब मूल में प्रत्यक्ष 'क्षोणिपतिर्यस्य' पाठ है, तब उसके बदलने की क्या आवश्यकता है ?

अतएव यह निश्चित है कि चामुण्डराज के हाथ से युद्ध में सिन्धुराज नामक राजा ही मारा गया, सिंध देश का राजा नहीं। चामुण्डराय का समकालीन परमार सिंधुराज को छोड़कर और कोई सिन्धुराज न था, इसलिये यही सिन्धुराज चामुण्डराज के हाथों मारा गया।

इन दोनों श्लोकों में चामुण्डराज के युद्ध का समय नहीं दिया गया, इसलिये इस घटना का समय निश्चित करने की आवश्यकता है। सिन्धुराज अपने भाई मुंज (वाक्पतिराज) के पीछे गद्दी पर बैठा। संवत् १०५० (ई० स० ९९३) में अमितगति ने 'सुभाषितरत्नसन्दोह' बनाया, उस समय मुंज विद्यमान था[4]। उसके पीछे किसी समय वह कल्याण के सोलंकी राजा तैलप के हाथों परास्त हुआ और कैद होकर शत्रु के यहां मारा गया। तैलप का देहान्त सं० १०५४ (ई० स० ९९७) में हुआ, इसलिये मुंज की मृत्यु संवत् १०५० और १०५४ (ई० स० ९९३ और ९९७) के बीच में किसी समय हुई[5]।

मुंज ने अपने भाई सिंधुराज के पुत्र भोज को, उसके सद्गुणों से प्रसन्न होकर, अपना उत्तराधिकारी बनाया था, किन्तु मुंज की मृत्यु के समय भोज बालक था इसलिये उसका पिता सिंधुराज ही भाई के स्थान पर मालवा (उज्जैन) की गद्दी पर बैठा। गुजरात के सोलंकी राजा चामुण्डराज ने, जिसने सिन्धुराज को परास्त करके मारा,[6] विक्रम संवत् १०५२ से १०६६

---

4 समारूढे पूतत्रिदिववसतिं विक्रमनृपे
सहस्त्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके।
समाप्तम् पञ्चम्यामवति धरणिं मुञ्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदम् शास्त्रमनघम् ॥
(अमितगति का सुभाषितरत्न सन्दोह)

5 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग पृ० ७७, ८०।

6 गुजरात (अनहिलवाडा) के सोलंकियों और धार के परमारों में वंशपरम्परागत अस्थिवैर हो गया था, दोनों बराबर लड़ते रहे। इस वैर का आरम्भ चामुण्डराज के द्वारा सिंधुराज के मारे जाने ही से हुआ हो।

(ईसवी सन् ९९६ से १०१०) तक चौदह वर्ष राज्य किया। अतएव सिन्धुराज की मृत्यु इन्हीं संवतों के बीच किसी समय हुई और उसकी मृत्यु का संवत् ही भोज के गद्दी बैठने का संवत् मानना चाहिए। डाक्टर बूलर ने भी भोज के सिंहासनारूढ होने का समय ई० सन् १०१० (विक्रम संवत् १०६६–६७ अनुमान किया है[7]।

जैन लेखक मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य शुभशील ने अपने भोज-प्रबन्ध में भोज के राज्यसिंहासन पर बैठने का समय विक्रम संवत् १०७८ (ई० स० १०२१) लिखा है—

विक्रमाद् वासरादष्टमुनिव्योमेंदुसमिते।
वर्षे मुंजपदे भोजभूपो (?) पट्टेनिवेशित ।।[8]

यह कथन सर्वथा मान्य नहीं क्योंकि प्रथम तो भोज, मुंज के स्थान पर नहीं बैठा और वह सिन्धुराज के पीछे गद्दी पर बैठा। दूसरे भोज का एक दानपत्र विक्रम संवत् १०७६ (ई० सन् १०२०) माघ शुक्ल ५ का मिल गया है[9]। इस ताम्रपत्र का उल्लिखित दान 'कोंकण[10] विजयपर्वणि' अर्थात् कोंकण देश (के राजा) के विजय के वार्षिकोत्सव पर दिया गया है।

भोज ने कोंकण विजय करके तैलप के हाथों मुंज के मारे जाने का बदला लिया। इस दानपत्र से सिद्ध होता है कि संवत् १०७६ से कम से कम एक वर्ष पहले कोंकण विजय हो चुका था, और भोज को राजगद्दी पर बैठे भी कुछ समय बीत चुका था, तभी तो वह इतना प्रबल और पराक्रमी हुआ कि कोंकण विजय कर सका, जो राज्यसिंहासन पर बैठने के प्रथम या द्वितीय वर्ष में संभव नहीं।

बल्लाल पंडित के भोज-प्रबन्ध के अनुसार हिन्दी की पुस्तकों में भी यह प्रवाद प्रचलित हो गया है कि सिन्धुल (सिंधुराज) अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज को सौंप गया और मुंज ने राज्यलोभ से उसे मार डालना चाहा इत्यादि। बल्लाल पंडित, या प्रबन्धचिंतामणि के जैन लेखक

---

7 एपि० इन्डिका, जिल्द १, पृ० २३२।

8 प्रबन्धचिंतामणि, बम्बई की छपी, पृ० ३३९।

9 यह दानपत्र एपि० इन्डिका, जि० ११, पृ० १८१–१८४ में छपा है और असली ताम्रपत्र राजपूताना म्युजियम, अजमेर में है।

10 उस समय कोंकण पर जयसिंह (दूसरे) सोलंकी का राज्य था, जो तैलप का पुत्र था (गौ० ही० ओझा—सोलंकियों का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १३३)

और भोजचरित्र के कर्त्ता आदि भोज के इतिहास से ठीक-ठीक परिचित न थे, जिससे उनके ग्रन्थों में अनेक उटपटांग बातें मिलती हैं। परमारों का वंशक्रम यह है कि वैरिसिंह, उसके पीछे उसका पुत्र सीयक (श्रीहर्ष), उसका पुत्र मुंज (वाक्पतिराज), उसका छोटा भाई सिन्धुराज, उसके पीछे सिन्धुराज का पुत्र भोज। नागपुर से मिले हुए वि० संवत् ११६१ (ई० स० ११०४) के शिलालेख में,[11] तथा उदयादित्य के लेख में[12] यही क्रम दिया है। सिन्धुराज के राजत्वकाल में परिमल (पद्मगुप्त) कवि ने 'नवसाहसांकचरित' काव्य लिखा, उसमें सिन्धुराज तक का यही क्रम है। 'तिलकमञ्जरी' का कर्त्ता धनपाल कवि मुंज, सिन्धुराज और भोज तीनों का समकालीन था और उसने भोज के राज्य में अपना काव्य रचा। उसने भी यही वंशानुक्रम बताया है[13]। इन प्रमाणों से इन प्रबन्धों का कथन निर्मूल सिद्ध होता है।

ना० प्र० प० (त्रै० न०) काशी, भाग १, ई० स० १९७७ ई–१९८०।

१२–परमार राजा भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण'

प्राचीनकाल के हिन्दुराजा कभी-कभी एक या अधिक उपनाम (विरुद) धारण किया करते थे। जैसे मालवा के परमार राजा वैरिसिंह (दूसरे) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक', मुंज का 'वाक्पतिराज' और 'अमोघवर्ष' और भोज के पिता सिन्धुराज का 'नवसाहसांक' उपनाम मिलता है, वैसे ही भोज का 'त्रिभुवननारायण' उपनाम होना पाया जाता है।

उदयपुर (मेवाड) राज्य के चीरवा नामक गांव (एकलिंगजी के मन्दिर से ३ मील दक्षिण में) के नये बने हुए विष्णु के मन्दिर की दीवार में

---

11 एपि० इन्डिका, जि० २, पृ० १८३–८५।

12 एपि० इन्डिका, जि० १, पृ० २६५।

13 श्रीवैरिसिंह इति दुर्वरसैन्यदन्तिदन्ताग्रभिन्नचतुर्णवकूलभित्ति ॥४०
तत्राभूदवसति श्रियामपरया श्रीहर्ष इत्याख्यया विख्यात ..
श्रीसीयक, ॥४१॥तस्योदग्रयशा. सुत. श्रीसिंधुराजोऽभवत्।..
यस्य स श्रीमद् वाकपतिराजदेवनृपतिर्वीराग्रणीरग्रज ॥४२॥
तस्याजायत मासलायतभुज. श्रीभोज इत्यात्मज। प्रीत्या योग्य इति प्रतापवसतिं ख्यातेन मुन्जाख्यया स्वे वाकपतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्त स्वयम् ॥४३॥

(तिलकमञ्जरी)

वहीं के किसी पुराने मन्दिर का एक शिलालेख लगाया गया है, जो वि० स० १३३० कार्तिक सुदि १ का और मेवाड के राजा समरसिंह के समय का है। मूल में जिस मन्दिर का यह शिलालेख था, वह मेवाड के राजाओ के नियत किए हुए नागहृद (नागदा-मेवाड की पुरानी राजधानी जो एकलिंगजी के निकट है) के तलारक्षो के एक पूर्वज ने बनवाया था। उसमें तलारक्ष[2] उद्धरण के वश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके जिस वशज ने जो-जो लडाइयाँ लडी, या जो राजकीय सेवाएँ की, उसका भी उल्लेख है। उसमें चितौड के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है कि 'रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन' राजा समरसिंह की कृपा से चितौड में वश परम्परागत तलारता पाकर श्री भोजराज (राजा भोज) के बनाए

---

1 शिलालेख—यह शिलालेख मेरी भेजी हुई छाप पर से विएना ओरिएँटल जर्नल मे छप चुका हे (जि० २१, पृ० १४३ आदि)।

2 तलारक्ष—तलारक्ष और तलार दोनो नाम किसी राज कर्मचारी के सूचक है। सस्कृत के कोशो मे यह नाम नही मिलते, परन्तु कभी-कभी प्राचीन शिलालेखो या सस्कृत पुस्तको मे मिलते है। चीरवा के शिलालेख में तलारक्ष उद्धरण के वश का विस्तृत वर्णन मिलता है। उद्धरण के दुष्टो को सजा देने और शिष्टो का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण राजा मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनवाया था (श्लोक ९–१०)। राजा पद्मसिंह ने उस (उद्धरण) के पुत्र योगराज को उसके पिता का स्थान दिया था (श्लोक ११–१२)। योगराज का ज्येष्ट पुत्र पमराज, जब सुरत्राण (सुलतान समशुद्दीन अल्तिमश) की सेना ने नागदा का भग किया, उस समय भूताले के पास लडाई में लडता हुआ मारा गया (श्लोक १५–१६)। योगराज के दूसरे बेटे महेंद्र का ज्येष्ट पुत्र बाला या बालाक राजा जैत्रसिंह के समय कोटडा लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल, गुजरात का राजा) के साथ की लडाई मे मारा गया (श्लोक १७ और १९। राजा जैत्रसिंह ने योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्रकूट (चित्तौड) की तलारता (तलार का पद) दी (श्लोक १५ और २२)। क्षेम का ज्येष्ट पुत्र रत्न चित्रकूट की तलहट्टिका (तलहटी = किले या पहाडी स्थान के नीचेवाली समान भूमि पर की आबादी) मे शत्रु से लडने में मारा गया (श्लोक २५ और २६)। रत्न का छोटा भाई मदन श्री जयसल (जैत्रसिंह) के लिये उत्थूणक (अर्थूंणा, बाँसवाडा राज्य में) की लडाई में

हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक देवमन्दिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था[1]।

चित्तौड के क़िले के रामपोल दरवाजे के बाहर नीम के वृक्षवाले चबूतरे पर पडा हुआ मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० स० १३५८

जैत्रमल्ल से लडा (श्लोक २७ और २९)। राजा समरसिंह ने मदन को चित्रकूट की तलारता दी (श्लोक ३०)। इन सब बातो को देखते हुए यही प्रतीत होता है, उद्धरण के वशज मेवाड के राजाओ की सैनिक सेवा करनेवाले थ। उद्धरण को 'दुष्टो को सज़ा देने और शिष्टो का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनाया'; यह कथन यही सूचित करता है कि 'तलारक्ष' या 'तलार' नाम नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का सूचक होना चाहिये। सोड्ढल–रचित 'उदयसुन्दरी कथा' मे एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसको घृणा उत्पन्न करनेवाली आकृति के कारण वह नरकरूपी नगर के तलारक्ष के सदृश था (घृणावद्रूपतया तलारमिवनरक नगरस्य– पृ० ७५)। यह कथन भी उक्त नाम के नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का ही सूचक होना बतलाता है। अन्चलगच्छ के माणिक्यसुन्दर सूरि ने वि० स० १४७८ में 'पृथ्वीचन्द चरित्र' रचा, जिसमें एक जगह बहुत से राजकीय अधिकारियो की नामावली दी है, जिसमे 'तलवर' और 'तलवर्ग नाम भी है (प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह– बडौदा सीरीज़, पृ० ९७)। कही शिलालेखो में 'तलवर्गिक' भी आता है। सम्भव है कि ये नाम भी तलारक्ष के ही सूचक हो। गुजराती भाषा में अबतक 'तलाटी' शब्द प्रचलित है जो 'तलारक्ष' या 'तलार' का ही अपभ्रन्श होना चाहिये। अब 'तलाटी' शब्द पटवारी का सूचक है, परन्तु प्राचीन काल में तलारक्ष या तलार सैनिक अधिकारी का सूचक था। उस समय पुलिस भी सेना का ही अग समझी जाती थी।

1 रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदन.सतत कृत दुष्टजनकदनः ॥२७ ॥
श्रीचित्रकूटदूर्गतलारता य॰ पितृक्रमायता।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राय नि.पाप ॥३०॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्य देवगृहे।
योविरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः ॥३१॥
(चीरवा का शिलालेख)

माघ सुदि १० का एक शिलालेख गत वर्ष मुझे मिला। उसकी दाहिनी ओर का कुछ अश नष्ट हो जाने से प्रत्येक पक्ति के अन्त के कहीं एक, कहीं दो अक्षर जाते रहे हैं और बीच के कुछ अक्षर भी कहीं-कही बिगड गए हैं। तिस पर भी उसका सवत् बच गया है और उससे पाया जाता है कि 'महा-राजाधिराज श्री समरसिंह देव के राज्य समय प्रतिहार (पडिहार) वशी महारावत राज भी राज० माता के बेटे राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री भोजस्वामी देवजगती[1] (भोजस्वामी' नामक या राजा भोज के बनवाये हुए देव मन्दिर) में प्रशस्ति प्रट्टिका सहित ' बनवाया[2]।'

ऊपर के दोनो शिलालेखो से पाया जाता है कि चित्तौड के किले पर भोज नामक किसी राजा ने एक देवमन्दिर बनाया था, जिसको पहले शिलालेख में 'त्रिभुवननारायण' का और दूसरे में 'भोजस्वामी' का मन्दिर कहा है और वह मन्दिर मेवाड के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था।

अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड के किले पर उक्त मन्दिर को बनवाने वाला श्री भोजदेव (राजा भोज) कौन था। मेवाड के गुहिलवशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड का किला मौरियो (मोर-वशियो) से लिया। उसके पीछे उस वश में तो भोज नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। पिछले समय में मेवाड वालो के पडोसी राजा साभर, अजमेर और नाडोल के चौहान, आबू और मालवा के परमार, तथा गुजरात के चौलुक्य (सोलकी) थे, जिसके पूर्व गुर्जर देश[3] तथा कन्नौज के प्रतिहार (पडिहार) थे। इन पडोसी राजवशो में से मालवा के परमार और प्रतिहारो में ही भोज या भोजदेव नामक राजा का होना पाया जाता है। प्रतिहारवशी किसी राजा के चित्तौड पर रहने या मेवाड पर चढाई करने का अब तक कोई उल्लेख नही मिला, परन्तु बीजापुर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए हस्तिकुडी (हथूंडी) के राष्ट्रकूट (राठौड) राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० स० १०५३ माघ सुदी

---

1 जगती = मन्दिर, देवालय, या देवालय का हाता (विख्यातो देवम् पितु नाम्ना महेश्वरम। श्री सोमनाथदेवस्य जगत्यापुण्य वृद्धये ।। मागरोल का वि० स० १२०२ का शिलालेख, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, पृ० १५८)

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ४१३ और टि० ५७।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग २, पृ ३४१।

१३ के शिलालेख से पाया जाता है कि 'मुजराज (मालवे के परमार राजा मुज) ने मेदपाट (मेवाड) के मदरूपी आघाट (आहाड मेवाड की पुरानी राजधानी) को तोडा', उस समय धवल ने मेवाड की सेना की रक्षा की थी[1]। इससे सभव है कि मुज ने मेवाड पर चढ़ाई कर आहाड़ को तोडने पर चित्तौड का क़िला और उसके आस-पास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो।

पोरवाड महाजन विमलशाह के वनवाए हुए आबू पर के देलवाडा गाँव के प्रसिद्ध जैन मन्दिर (आदिनाथ) विमलवस ही के जीर्णोद्धार के वि० स० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ६ के शिलालेख में उक्त मन्दिर के बनने के विषय में लिखा है कि 'चन्द्रावती पुरी का राजा धधु (धंधुक) वीरो का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की, तव राजा (भीमदेव) उस पर क्रुद्ध हुआ, जिससे वह मनस्वी (धन्धुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा ने प्राग्वाट (पोरवाड़) वंशी मन्त्री विमल को अर्बुद (आबू) का दण्डपति (सेनापति, हाकिम) बनाया। उसने वि० स० १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मन्दिर बनवाया[2]।'

---

1 भक्त्वाघाटम घटाभि प्रकटमिवमिदम् मेदपाटेभटाना
जन्ये राजन्यजन्येजनयति जनताज (!) रणमुजराजे ॥
श्री' माणे प्रणष्टे हरिण इव भिया गुर्ज्जरेशेनिनष्टे ।
तत्सैन्याना स(श)रण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणा व(व)भूव ॥१०॥
(एपि० इडिका, जि० १०, पृ० १२–१३)

मुज की मेवाड पर चढाई का वहाँ के राजा शक्तिकुमार के समय में होना अनुमान किया जा सकता है। यदि मूल शब्द में त्रुटित अक्षर 'खु' हो तो खुमाण के वशज से अभिप्राय है। यह प्रचलित रीति है, चारण लोग मेवाडके महाराणाओ को 'खुमाणा' अर्थात् खुमाण के गोत्रज कहकर सम्बोधन करते है।

2 तत्कुल कमलमराल. कालः प्रत्यर्थि मण्डलीकाना।
चन्द्रावती पुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधु ॥५॥
श्री भीमदेवस्य नृपस्य सेवामलभ्य(!)मान किल धुन्धुराज ।
नरेश रोषाश्च ततोमनस्वी धाराधिपम् भोजनृप प्रवेदे ॥६॥

उसी मन्दिर के वनवाए जाने के सम्बन्ध में जिन प्रभसूरि, जो मेवाड के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने 'तीर्थ कल्प' में लिखता है कि 'जब गुर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धाधुक (राजा धन्धुक) पर क्रुद्ध हुआ, तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न करके उस (धन्धुक) को चित्राकूट (चित्तौड) से लाकर वि० स० १०८८ में उस (धन्धुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च से विमलवसती नामक उत्तम मन्दिर बनवाया ।'

इन दोनो कथनो को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलकी (चौलुक्य) राजा भीमदेव से बिगाड हो जाने पर आबू का परमार राजा धन्धुक मालवा के परमार राजा भोज के पास चला गया, जो चित्तौड में रहता था। विमलशाह ने धधुक को समझाया और चित्तौड से लाकर उसे भीमदेव की सेवा स्वीकार कराई। उसके बाद उसने आबू पर आदि-नाथ का मन्दिर बनवाया। इससे स्पष्ट है कि चित्तौड में रहने और वहाँ पर मन्दिर बनाने वाला भोज मालवे का राजा ही था।

प्राग्वाटवशाभरणबभूव रत्नप्रधानम् विमलाभिधान ॥७॥
तपश्च भीमेन नराधिपेन प्रताप वह्नि विमलो महामति ।
कृतोर्बुदे दडपति सना प्रियो प्रियवदा नन्दतु जैनशासने ॥८॥
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदा सहस्त्रे ।
श्री आदिदेवम् शिखरेर्बुदस्य निवेसि(शि)त श्री विमलेन वन्दे ॥१२॥

(आबू का शिलालेख—अप्रकाशित)

राजानकश्रीधाधुके क्रुद्ध श्रीगुर्जरेश्वरम् ।
प्रसाद्य भक्तया त चित्रकूटादानीयतद्गिरा ॥३९॥
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात् ।
सत्प्रसाद सविमलवसत्याह्व व्याधापयत् ॥४०॥

(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)

2 भोज के पीछे चित्तौड पर मालवा के परमारो का अधिकार कब तक रहा और कैसे उठा, इस विषय मे कुछ भी लिखा हुआ नही मिलता। परन्तु गुजरात के राजा सोलकी राजा कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड से मिले है। जिनमे एक वि० स० १२०७ का (एपि० इडि०, जि० २, पृ० ४२२–२४) और दूसरा जो बडा है, बिना सवत का (अप्रकाशित) है। गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के किसी पूर्वज ने या उसने

यह कहा जा चुका है कि 'भोजस्वामी जगती' का अर्थ भोजस्वामी नामक देव मन्दिर व उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेव-कारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यो पडा ? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणाकुभा के बनवाए हुए चित्तौड, कुभलगढ और आबू पर के देवालयो के नाम 'कुभस्वामी' है। आमेर के कुवर जगतसिंह का बनवाया हुआ मन्दिर 'जगतशिरोमणि' का महाराज प्रतापसिंह का स्थापित शिवलिंग 'प्रतापेश्वर' गुलेर की राणी कल्याणदेई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते है। ऐसे उदाहरण कई मिलते है। इसलिए भोजस्वामीभोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति। उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यो हुआ ? आगे बतलाया जायगा कि भोज परम माहेश्वर था और वह मन्दिर नारायण का नहीं, शिव का है। तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिव पूजा करता था, इसी बात को स्पष्ट करता है। भोजस्वामी के मन्दिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है, जबकि भोज का विरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वन्तत्र प्रमाण से सिद्ध हो।

अथवा कुमारपाल ने मेवाड पर चढाई की हो, या लडकर चित्तौड लिया हो, ऐसा कही भी उल्लेख नही मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने बारह वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लडकर मालवा अपने राज्य में मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड का किला भी गुजरात के राजाओ के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखो के चित्तौड में मिलने का भी होना चाहिये। वि० स० १२३० में कुमारपाल के मरने पर उसके बडे भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय में या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारो ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड के राजा सामतसिंह ने अजयपाल को लडाई में घायल कर भगाया और वि० स० १२३३ मे अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओ से पाया जाता है कि चित्तौड का किला मुज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिंह के हाथ के होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारो के अधिकार में रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के

वसा स्वतन्त्र प्रमाण है, गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्नमहोदधि' नामक ग्रन्थ वनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११९७ (= ई० स० ११४०) में हुई[1]। वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहा हो[2]। आश्चर्य है न हेमचन्द्र उसका उल्लेख करता है, न वह हेमचन्द्र का[3]।

गणरत्न महोदधि में व्याकरण के गण श्लोकवद्ध किये गये है और फिर गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण है। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणो के मतो का उल्लेख किया है। उदाहरणो में कई कवियो की रचना

अधिकार में आया। सम्भव है कि मेवाड के राजा सामन्तसिंह के अजयपाल को हराने पर यह किला फिर गुहिलवशियो के अधीन हुआ हो।

1 सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्पाणा विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहित ॥
(एगलिग का सस्करण, पृ० ४८०)

2 ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है कि अपने शिष्यो की प्रार्थना से हम गणरत्न महोदधि की रचना करते हे (स्वशिष्य' प्रार्थिता कुर्मो गणरत्नमहोदधिम्) और इसकी व्याख्या में 'स्वशिष्य' को यो खोला है कि 'कुमारपाल–हरिपाल, मुनिचन्द्र, प्रभृति'। सम्भव है कि यह कुमारपाल ही आगे चलकर 'परमार्हत कुमारपाल' सिद्धराज जयसिंह का उत्तराधिकारी हो।

गणरत्न महोदधि में कई श्लोक या श्लोक खण्ड सिद्धराज की प्रशसा के है, जिनसे जान पडता है कि वर्द्धमान ने सिद्धराजवर्णन भी लिखा था। इनमें कई जगह मम कई जगह 'मम सिद्धराज वर्णने तथा कही कुछ भी उल्लेख नही है। वे यहाँ उदवत किये जाते है––

(१) मेघो नर्किवर्षति सिद्धराज। (पृ० १६)

(२) नि:सीमाश्चर्यधाम त्रिभुवनविदित पत्तन यत् त्वदीय
तन्मध्ये वृद्धिमीयु फल भरनमिता शाखिनश्चूतमुख्या।
नैतच्चित्र विचित्राद्विहितकृतयुग त्वत्प्रभावात् क्षितिश
प्रादुष्षन्ति प्रभूता यदि सुरतरवश्चित्रमेतद्बुधानाम् ॥
(ममैव, पृ० १३९)

(३) मतिमता मधुर कवितामृतम् ददति मन्त्रिललामवलाहके।
विदधति निखिलार्थविवेचनम जयति कल्पलता चिरदीधिति: ॥
(ममैव, पृ० १८२)

यह कहा जा चुका है कि 'भोजस्वामी जगती' का अर्थ भोजस्वामी नामक देव मन्दिर व उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेव-कारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यो पडा ? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणाकुभा के बनवाए हुए चित्तौड, कुभलगढ़ और आबू पर के देवालयो के नाम 'कुभस्वामी' है। आमेर के कुवर जगतसिंह का बनवाया हुआ मन्दिर 'जगतशिरोमणि' का महाराज प्रतापसिंह का स्थापित शिवलिग 'प्रतापेश्वर' गुलेर की राणी कल्याणदेई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते है। ऐसे उदाहरण कई मिलते है। इसलिए भोजस्वामीभोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति। उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यो हुआ ? आगे बतलाया जायगा कि भोज परम माहेश्वर था और वह मन्दिर नारायण का नहीं, शिव का है। तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिव पूजा करता था, इसी बात को स्पष्ट करता है। भोजस्वामी के मन्दिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है, जबकि भोज का विरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वन्तत्र प्रमाण से सिद्ध हो।

अथवा कुमारपाल ने मेवाड पर चढाई की हो, या लडकर चित्तौड लिया हो, ऐसा कही भी उल्लेख नही मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने बारह वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लडकर मालवा अपने राज्य में मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड का किला भी गुजरात के राजाओ के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखो के चित्तौड में मिलने का भी होना चाहिये। वि० स० १२३० में कुमारपाल के मरने पर उसके बडे भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय में या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारो ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड के राजा सामतसिंह ने अजयपाल को लडाई में घायल कर भगाया और वि० स० १२३३ में अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओ से पाया जाता है कि चित्तौड का किला मुज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिंह के हाथ कै८ होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारो के अधिकार में रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के

यथा स्वयम् कहा है गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने गणरत्नमहो-दधि नामक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११९७ (ई० सन् ११४०) में हुई। वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहे हैं। [illegible] है न [illegible] है न [illegible]।

गणरत्नमहोदधि में व्याकरण के गण [illegible] दिये गये हैं और किस गण के [illegible] की व्याख्या और उदाहरण हैं। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया है। उदाहरणों में कई कवियों की रचना

[illegible] में [illegible]। मालूम है कि [illegible] के [illegible] के [illegible] में [illegible] के अधीन हुआ हो।

1 [illegible]।
[illegible] ॥
([illegible] का इतिहास, पृ० ४८०)

2 ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है कि इसके शिष्यों की प्रार्थना से इस गणरत्नमहोदधि की रचना करते हैं ([illegible] प्रार्थित, [illegible] गणरत्न-महोदधि) और इसकी व्याख्या में [illegible] है कि '[illegible]'। मालूम है कि यह कुमारपाल ही [illegible] '[illegible] कुमारपाल' सिद्धराज जयसिंह के उत्तराधिकारी हैं।

गणरत्नमहोदधि में कई श्लोक [illegible] सिद्धराज की प्रशंसा के हैं, जिससे पता लगता है कि वर्द्धमान ने सिद्धराज [illegible] किया था। इनमें कई [illegible] सिद्धराज [illegible] कुछ का उल्लेख यहाँ है। वे नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) [illegible] सिद्धराज। (पृ० ९३)

(२) [illegible]
[illegible]।
[illegible]।
[illegible] ॥
(वही, पृ० १३६)

(३) [illegible]।
[illegible] ॥
(वही, पृ० १८२)

यह कहा जा चुका है कि 'भोजस्वामी जगती' का अर्थ भोजस्वामी नामक देव मन्दिर व उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेव-कारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यो पडा ? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणाकुभा के वनवाए हुए चित्तौड, कुंभलगढ और आबू पर के देवालयो के नाम 'कुभस्वामी' है। आमेर के कुंवर जगतसिंह का वनवाया हुआ मन्दिर 'जगतशिरोमणि' का महाराज प्रतापसिह का स्थापित शिवलिंग 'प्रतापेश्वर' गुलेर की राणी कल्याणदेई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते है। ऐसे उदाहरण कई मिलते है। इसलिए भोजस्वामीभोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति। उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यो हुआ ? आगे वतलाया जायगा कि भोज परम माहेश्वर था और वह मन्दिर नारायण का नहीं, शिव का है। तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिव पूजा करता था, इसी बात को स्पष्ट करता है। भोजस्वामी के मन्दिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है, जवकि भोज का विरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वतंत्र प्रमाण से सिद्ध हो।

अथवा कुमारपाल ने मेवाड पर चढाई की हो, या लडकर चित्तौड लिया हो, ऐसा कही भी उल्लेख नही मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने बारह वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लडकर मालवा अपने राज्य में मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड का किला भी गुजरात के राजाओ के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखो के चित्तौड में मिलने का भी होना चाहिये। वि० स० १२३० में कुमारपाल के मरने पर उसके बडे भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय में या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारो ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड के राजा सामतसिंह ने अजयपाल को लडाई में घायल कर भगाया और वि० स० १२३३ मे अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओ से पाया जाता है कि चित्तौड का किला मुज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिंह के हाथ कै० होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारो के अधिकार में रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलकी राजा सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के

यथा स्वतन्त्र प्रमाण है, गोविन्दसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्नमहोदधि' नामक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११९७ (=ई० स० ११४०) में हुई[1]। वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहा हो[2]। आश्चर्य है न हेमचन्द्र उसका उल्लेख करता है, न वह हेमचन्द्र का[3]।

गणरत्न महोदधि में व्याकरण के गण श्लोकबद्ध किये गये हैं और फिर गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण हैं। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया है। उदाहरणों में कई कवियों की रचना

अधिकार में आया। सम्भव है कि मेवाड़ के राजा सामन्तसिंह के अजयपाल को हराने पर यह किला फिर गुहिलवंशियों के अधीन हुआ हो।

1 सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः ॥
(एगलिंग का संस्करण, पृ० ४८०)

2 ग्रन्थ के आरम्भ में कहा है कि अपने शिष्यों की प्रार्थना से हम गणरत्न महोदधि की रचना करते हैं (स्वशिष्य' प्रार्थिता कुर्मो गणरत्नमहोदधिम्) और उसकी व्याख्या में 'स्वशिष्य' को यों खोला है कि 'कुमारपाल–हरिपाल, मुनिचन्द्र, प्रभृति'। सम्भव है कि यह कुमारपाल ही आगे चलकर 'परमार्हत कुमारपाल' सिद्धराज जयसिंह का उत्तराधिकारी हो।

गणरत्न महोदधि में कई श्लोक या श्लोकखण्ड सिद्धराज की प्रशंसा के हैं, जिनसे जान पड़ता है कि वर्द्धमान ने सिद्धराजवर्णन भी लिखा था। उनमें कई जगह मम कई जगह 'मम सिद्धराज वर्णने तथा कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं है। वे यहां उद्धृत किये जाते हैं—

(१) मेरो नरेन्द्रपति सिद्धराज । (पृ० १६)

(२) निःशेषाम्बरसंगम त्रिभुवनविदित पत्तनं यत् त्वदीय
[illegible] भूतनमिता नागरिकाश्चूतमुख्या।
[illegible] भावान् क्षितिश।
[illegible] वाञ्छयमनद्युतानाम् ॥
(ममैव, पृ० १३६)

(३) [illegible] नामवगाहके।
[illegible] चिन्दीधिति ॥
(ममैव, पृ० १८२)

नाम से और कितनो की बिना नाम के उद्धृत की है, इससे यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्व का है।

---

(४) दूरादपि रिपुलक्ष्यो मनीपितम् यन्त्रयन्ति सावेगाः ।
अब्धिमिवेतरभूभृन्निरुद्धगतयोऽपि कूलिन्यः ॥ (ममैव, पृ० १८३)

(५) उद्यत्तीव्रानङ्गनाराचविद्धा स्वप्राणेभ्यो वल्लभम् त्वामदृष्ट्वा ।
वेगादेषा चक्रवाकी वराकी तीरात्तीरे प्रातरेव प्रयाति ॥
(ममैव क्रिया गुप्तके पृ० १९०)

(६) प्रत्युप्तमुक्ताफलपद्मरागप्रस्पर्धिमिस्तोषितविश्वलोकैः ।
यशोनुरागैस्त्व सिद्धनाथ चक्रे जगत्काकिकलौहितीकम् ॥
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० २३५)

(७) जाते यस्य प्रयाणे तुरगखुरपुटोत्खानरेणुप्रपचे
तीव्र ध्वान्तायमाने प्रसरति वहले सर्वतोदिक्कमस्मिन् ॥
भास्वच्चन्द्रार्कविम्वग्रहगणरहितम् व्योम विक्ष्य प्रमुग्धा
सान्ध्यकर्मारभन्ते शिशुमुनिवटवो जातसन्ध्याभिशङ्का ॥
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० ३७२)

(८) नवे यौवनिकोद्भेदे यस्य न स्खलितम् मन ।
वृहितम् नापि सिद्धेशप्रसादेन मनीषिण ॥ (ममैव, पृ० ४३५)

वर्द्धमान ने अपने समसामयिक पण्डित सागरचन्द्र के नाम से भी कुछ श्लोक उद्धृत किये है। उसने भी सिद्धराज जयसिंह के वर्णन में कोई काव्य लिखा था, ऐसा पाया जाता है—

(१) मुष्णातु कल्मषमलानि मनोऽपकूल–
खेलन्मरालमिथुनात्तपनात्मजेव ॥ (सागरचन्द्रस्य, पृ० १०६)

(२) कटक कटकान्यस्य दलया मास निर्दयम् ।
स हि न क्षमते किंचिद्विन्दुना प्यात्मनोऽधिकम् ॥
(सागरचन्द्रस्य, पृ० ११५)

(३) द्रव्याश्रया श्रीजयसिंहदेव गुणा कणादेन महर्षिणोक्ताः ।
त्वया पुन पण्डितदानशौण्ड गुणाश्रयम् द्रव्यमपि व्यधायि ॥
(पण्डित श्रीसागरचन्द्रस्य, पृ० १४४)

अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसाङ्गा घृतभैक्षवृत्तय ।
निर्ग्रन्थता त्वत्परिपन्थिनोगता जगत्पते किंत्वजिनावलम्बिन् ॥
(श्री सागरचन्द्रस्य, पृ० ३०४)

3 यो परस्पर उल्लेख न करने का कारण साम्प्रदायिक मतभेद के कारण उपेक्षा हो सकती है, या अपने समय के ग्रन्थकारो को प्राचीनो की तरह प्रामाणिक न मानना हो सकता है।

तद्धित प्रकरण के गणो का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी तरह किया है। उनकी यह प्रोक्ति कि 'जिन तद्धितलिङ्गो से वैयाकरण रूपी हाथी भागते फिरते थे, उनके गणो के सिर पर मैंने पैर रख दिया, यद्यपि मैं गव्य (=गोवंशी) हूँ, चमत्कार युक्त भी है', सच्ची भी[1]। अपत्यवाचक तद्धित रूपो के उदाहरण में गणरत्न महोदधि में कई-कई श्लोको के लम्बे अवतरण स्थान-स्थान पर दिये गये हैं। उनकी रचना से जान पडता है कि वे किसी भट्टि काव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से हैं, क्योंकि छन्द एक ही है। यह भी जान पडता है कि वह व्याकरण के उदाहरणो के अतिरिक्त द्वयाश्रय काव्य की तरह मालवा के परमार राजा भोज के यश का वर्णन करता है। सभव है कि भोजराज रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखाने के साथ-साथ परमारवंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिये भोज के किसी सभा पडित ने उसकी रचना की हो। यो तो कई फुटकर श्लोक गणरत्न महोदधि में और भी जगह-जगह मिलते हैं, जिन्हें इस काव्य का मान ले सकते हैं, किन्तु यह विचार उन एक छन्द के अवतरणो का ही करते हैं, जो एक ही सर्ग के माने जाने चाहियें। इस सर्ग का कथा प्रसग ऐसा जान पडता है कि भोज शिप्रा नदी के तट पर[2] महाकाल वन में[3] किसी ऋषि के आश्रम में गया[4]। वहाँ अनेक ऋषियो ने उसका स्वागत

---

1 येभ्यस्तद्धितलिङ्गेभ्य शाब्दिकेभैः पलायितम् ।
गव्येनापि मया न्यस्तम् पदम् तद्गणमूर्धसु ॥ (पृ० ८६१)

यहाँ अपने को 'गव्य' कहकर अपने गुरु गोविन्दसूरि की ओर संकेत किया है।

2 स कौशिकस्याश्रमवनेन कूजनशाखेन् शिप्रातटेन गच्छन् ।
(पृ० २५७)
[illegible] ।
[illegible] ॥
(पृ० २८५)

3 [illegible] ।
[illegible] ॥
(पृ० २९६)

4 [illegible] ।
[illegible] ॥ (पृ० २९७)

किया[1] और भोज ने ऋषियो का आदर और उनसे सभाषण । किसी-किसी[2] ऋषि ने यह भी कहा कि आपकी तरह शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया[3] । जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही है, वहाँ कई ऋषि पत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड कर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है । कवि ने ऋषि और स्त्रियो के स्त्रीलिंग और पुंलिग अपत्यवाचक तद्धित प्रयोगो की माला गूँथने के लिये यह सब प्रसंग बहुत अच्छा कल्पित किया है । अस्तु, ऋषि पत्नियो के प्रसग में जिस राजा को वे उत्सुकता से देखने आई और देखती है, उसको मालवराज, त्रिलोकनारायण, भूमिपाल और भोज इन तीनो नामो से बतलाया है,[4] अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनो एक ही राजा के नाम है, जो मालवे का राजा था । 'लोक' और 'भुवन' पर्याय शब्द है, इसलिये त्रिभुवन नारायण'

---

1 वैयाध्रपद्योपहितापार्घ्यः प्राचीनयोग्योदितमङ्गलाशी ।
स तत्र रैभ्यायणपृष्टवार्त पौलस्त्यहा्ऽत्रेरिव धाम्न्यभासीत् ।।
(पृ० २६७)

2 स काण्ठ्यगौकक्ष्यसमक्षमस्मिन्नागस्त्यकौण्डिन्यकृतातिथेय ।
सुभाषितान्यादित पार्णवलक्यो यजूषि सूर्यादिव याज्ञवलक्य ।।
सवार्हदग्न्यायनजामदग्न्य स्थौर्यौ कथ्यतैतिक्ष्यजिघृक्षिताभि ।
कौटिल्यशास्त्रार्णवपारदृश्वा ननन्दगौलन्ध्यमुनीन्द्रवाग्भि ।।
काण्पर्यैकलव्यायनपैप्पलव्यदाल्भ्यैन्द्रहव्यायनदैवहव्यान ।
राराक्यचाणक्यवदाररक्यमौलुक्यचौलुक्यजुष सिषेवे ।।
(पृ० २९८)

3 दृष्टोडुलोमेषु मयौडुलोमे श्रीवैरसिंहादिषु रुद्रभक्ति ।
अपार्थिवा सा त्वयि पार्थिवी या नौल्स्यौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति ।।
कस्तारुणस्तालुनवाष्कयौ वा सौवष्कयिर्वा हृदये करोति ।
विलासिनोर्वीपतिना कलौ यद्व्यलोकि लोकेऽत्र मृगाङ्कमौलि ।।
न भारतेनैक्षि न कौरवेण नैन्द्रावसेन न सात्वतेन ।
पाचालमाहानदवैनदैर्नो नौशीनरेणाद्य यथा त्वयेश ।।
(पृ० ३०३)

4 नाडायनि व्रीडजडेह मा भूश्चारायणि स्फारय चारुचक्षु ।
विलोक(।)वाकायनि मुञ्जकुञ्जान्मौञ्जायनी (।) मालवराजएति ।।
वीक्षस्व तैकायनि शसकोऽय शाणायनि क्वायुध वाणशाण ।
प्राणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्यास्त्रिलोकनारायणभूमिपाल ।।
(पृ० २७७)

और 'त्रिलोकनारायण' दोनों एक ही राजा के सूचक हैं । अतएव ऊपर कहे हुए 'भोजस्वामी' और 'त्रिभुवननारायण' नाम की एक ही मन्दिर के बोधक हैं ।

जैसे पद्मगुप्त (परिमल) कवि ने भोज के पिता सिन्धुराज के चरित्र ग्रन्थ का नाम उक्त राजा के मुख्य नाम पर 'सिन्धुराज चरित' न रक्खा, किन्तु उसके उपनाम (विरुद, खिताब) 'नवसाहसाङ्क' पद से उक्त पुस्तक का नाम 'नवसाहसाङ्क चरित' दिया, वैसे ही भोज उपनाम 'त्रिभुवन-नारायण' पर से उक्त मन्दिर का नाम रक्खा गया होगा । ऊपर चीरवा के लेख में यह बताया जा चुका है कि चित्तौड का तलारक्ष (तलार) मदन त्रिभुवननारायण नामक देवालय में शिवका पूजन किया करता था । अत-एव निश्चित है कि भोज का बनाया हुआ वह मन्दिर शिव का मन्दिर था । भोज परम शैव था, इसका उल्लेख ऊपर गणरत्न महोदधि के अव-तरणों में किया जा चुका है । नारायण नाम विष्णु का सूचक होने से यह भ्रम होना संभव है कि वह मन्दिर विष्णु का हो, परन्तु उक्त नाम में नारायण शब्द विष्णु का सूचक नहीं, किन्तु भोज के उपनाम का अंश होने से उसको चीरवा के शिलालेख के अनुसार शिव का मन्दिर मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती ।

मेरे इस लेख को पढने के बाद कोई इतिहास-प्रेमी अथवा प्राचीन शोधक चित्तौड के किले की सैर करने को जावें तो उसको यह जिज्ञासा अवश्य होगी कि प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज का बनाया हुआ 'त्रिभुवन-नारायण' या 'भोज स्वामी' नामक शिवालय अब विद्यमान है या नहीं, यदि है तो कौनसा और कहाँ है ? इसलिये उक्त मन्दिर का पता लगाने का यत्न किया जाता है ।

अब तो चित्तौड के किले या तलैटी के रहने वालों में से कोई भी यह नहीं जानता कि राजा भोज वहाँ रहा था और उसने वहाँ एक शिवालय भी

हैमायनीनां भव नायतायन्युपेहि दीर्घायणि देहि मार्गम् ।
[illegible]य चैत्रायणि चाटकायन्योदुम्बरायण्यमिति भोज ॥
(पृ० २७८)

मा [illegible] मा [illegible]यन्युपा[illegible] ।
[illegible] दृष्टो नृपनिर्गमः ॥
(पृ० २७९)

बनाया था। ऐसे ही न वे 'त्रिभुवननारायण' या 'भोजस्वामी' का नाम जानते हैं। इन बातो का पता अब प्राचीन शोध से ही लगा है। राजपूताने में सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध किला चित्तौड ही है, जिस पर हिन्दुओ तथा मुसलमानो की अनेक चढ़ाइयाँ हुईं। वि० स० १३६० में देहली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड पर चढाई कर छः मास से कुछ अधिक समय तक लडने के बाद वह किला लिया। उसने वहीं अपने सब से बडे बेटे खिजरखाँ को वलीअहद (युवराज) बनाया और चित्तौड के राज्य का शासक भी उसी को नियत किया। वह सात-आठ वर्ष तक वहाँ रहा, जिसके पीछे सुलतान ने वह किला जालोर के सोनगरो (चौहानो) के वशज मालदेव को सौंपा। अलाउद्दीन की विजय तथा खिजरखाँ के अधिकार के समय वहाँ के बौद्ध, जैन तथा हिन्दू मन्दिरो को मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। भोज ने वह मन्दिर वि० स० १०८८ से कुछ पहले बनाया होगा, क्योकि उसी समय उसका चितौड में रहना ऊपर बतलाया गया है। भोज के समय अथवा उसके पहले के प्राचीन चिन्हो में चित्तौड़ पर अब ठोस पत्थर के बने हुए बौद्धो के आठ स्तूप[1] तथा हिन्दुओ के दो मन्दिर, जिनका जीर्णोद्धार हुआ है, हैं। इन दो प्राचीन सुन्दर विशाल और दृढ मन्दिरो में से एक तो सूर्य का[2] है, जो पीछे से उसमें देवी की मूर्ति स्थापित किये जाने के कारण अब कालिकाजी का मन्दिर कहलाता है और दूसरा शिवालय है, जिसको अदवदजी (अद्‌भुतजी) का मन्दिर और मोकलजी का मन्दिर भी कहते है। वह शिवालय गोमुख नामक प्रसिद्ध तीर्थ (जलाशय) के ऊपर के ऊँचे हिस्से

---

1 इन सब स्तूपो के ऊपर शकु की आकृति का अश नष्ट कर दिया गया है। उसके नीचे का मोटा गोलाकृति वाला अश तथा उसके नीचे का चौरस भाग जिस पर वज्र के चिह्न सहित बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हुई है, विद्यमान है। ये स्तूप पहले राठौड जयमल की हवेली से पद्‌मिनी के महलो की ओर जानेवाली सडक की दाहिनी ओर के तालाब में एक चट्टान पर थे, जहाँ से उठाकर अनुमान बारह वर्ष पहले रियासत ने उनको तोपखाने के मकान की एक ओवरी में रखवा दिया है। ऐसा करने में दो के तो टुकडे भी हो गये है।

2 उस मन्दिर को प्रारम्भ में सूर्य का मन्दिर मानने का कारण यह है कि उसके सुन्दर और विशाल द्वार पर सूर्य की मूर्ति बनी हुई है और भीतरी परिक्रमा में तीनो ओर की ताको में भी सात घोडो सहित सूर्य (सप्राश्व) की प्राचीन मूर्तियाँ विद्यमान है। मुसलमानो के समय में यहाँ की मूर्ति तोड दी गई और मन्दिर अरसे तक बिना मूर्ति

में है और महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) के बनाए हुए कीर्तिस्तम्भ के दक्षिण में उससे थोड़ी ही दूरी पर है। यही चित्तौड़ पर के शिवालयों में सब से पुराना और सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसमें नीचे (छ सीढ़ी नीचे) तो शिवलिंग और अनुमान छः-सात फुट की ऊँचाई पर पीछे की दीवार में सटी हुई शिव की विशाल त्रिमूर्ति[1] प्राचीन बनी है। जिसकी अद्भुत आकृति के कारण ही लोग उसको अदबुदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते हैं। वि० सं० १४८५ में महाराणा मोकल ने उसका जीर्णोद्धार कराकर अपने नाम की एक बड़ी प्रशस्ति उसमें लगाई,[2] जिससे लोग उसको मोकलजी का मन्दिर भी कहते हैं। वह इस समय ही चित्तौड़ के शिवालयों में सब से अधिक प्रसिद्ध है, ऐसा ही नहीं, किन्तु देहली पर मुसलमानों का अधिकार होने से पहले भी वैसा ही प्रसिद्ध था, क्योंकि गुजरात के राजा कुमारपाल ने वि० सं० १२०७ में अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनल्लदेव आनाक) पर चढ़ाई कर उसको हराया। वहां से वह चित्तौड़ की शोभा देखने को चला। शालिपुर (सालेरा गाव, चित्तौड़ से थोड़े ही मील पर) में अपना

के पास रहा। पीछे से उसमें कालिका की मूर्ति स्थापित की गई जिसको अनुमान १५० वर्ष हुए हैं। जब से यह नवीन मूर्ति स्थापित की गई, तब से उसके पुजारी 'गिरि' नामान्त वाले बाबा (साधू) हैं। वर्तमान पुजारी भैरूगिरि मूल पुजारी का नवां वंशधर है। उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार (मरम्मत) वि० सं० १८६३ में नागेंद्रगिरि के चेले दौलतगिरि तथा कुशालगिरि ने करवाया। ऐसा उस मन्दिर के छज्जे के नीचे खुदे हुए लेख से पाया जाता है। उस मन्दिर के बड़े चौक में उन पुजारियों की समाधियां बनी रहने से उसका कितना एक अंश तो उन्हीं से भर गया है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो समय पाकर वहां पर एक खासा समाधिस्थान बन जायगा और उस अपूर्व प्राचीन मन्दिर और चौक की शोभा बिल्कुल नष्ट हो जायगी।

1 शिव की त्रिमूर्ति के लिए देखो मेरा लिखा हुआ 'सिरोही राज्य का इतिहास', पृ० ३६-३८ टिप्पण। कर्नल टाड ने त्रिमूर्ति के तीन मुख देखकर उस मन्दिर को ब्रह्मा का और महाराणा कुम्भा का बनाया हुआ माना है, पर यह भ्रम ही है (टाड राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०८-१३ ऑक्सफोर्ड संस्करण)।

2 एपि० इंडि०, जिल्द २, पृ० ४१०-२१।

शिविर (सेना का पडाव) रखकर चित्तौड गया। वहाँ पर उसने उक्त त्रिमूर्तिवाले) मन्दिर में शिव की आराधना कर एक गाँव भेट किया और स्मरणार्थ उक्त मन्दिर में एक शिलालेख लगाया, जो अब तक विद्यमान है[1]। इन सब बातो का विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि जिस शिवालय में तलारक्ष मदन शिव की पूजा किया करता था। वह उपर्युक्त त्रिमूर्ति वाला मन्दिर ही होना चाहिये। उक्त मन्दिर का सभा मण्डप तथा मुख्य अश, जहाँ शिवलिंग तथा त्रिमूर्ति बनी हुई है, पहले के ही है, जिनके शिल्प की ओर दृष्टि देते हुए उनका भोज के समय का होना मानना पडता है[2] उसके बनने के बाद उसके निकट ही शिव और और विष्णु आदि के भी मन्दिर बने, जो ऐसे दृढ और विशाल न होने से अब टूटी हुई दशा में है। कुमारपाल की मृत्यु के पीछे जब चित्तौड पर गुहिलवशियो का अधिकार फिर हुआ और वही मेवाड की राजधानी स्थिर हुई, तब से चित्तौड के राजाओ की महासती[3] (दाहस्थान) का स्थान भी उसी मन्दिर के निकट नियत हुआ। वि० सं० १३३१ में रावल समरसिंह ने उन सब मन्दिरो तथा महासतियो के इर्द गिर्द एक विशाल द्वार सहित हाता[4] बनवाया और उसके सम्बन्ध की प्रशस्ति[5] दो बडी-बडी शिलाओ पर खुदवा कर द्वार के भीतर दोनो ओर की दीवारो में लगाई, जिनमें से पहली शिला स० (१३३१) सहित अब तक विद्यमान है। उक्त प्रशस्ति की रचना वेदशर्मा ने की थी। वि० स० १३४२ में उसी कवि ने उसी राजा की आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति बनाई, जिसमें वह अपनी बनाई हुई पहली प्रशस्ति (चित्तौड

---

1 एपि० इन्डि०, जिल्द २, पृ० ४२२, २४।

2 कर्नल टॉड के 'राजस्थान' के ऑक्सफोर्ड सस्करण, जिल्द ३, पृ० १८ पर, उसके सम्पादक विलिअम् क्रुक का टिप्पण २।

3 ना० प्र० पत्रिका, भाग १, पृ १०४।

4 बडी-बडी दो शिलाओ पर खुदी हुई उस प्रशस्ति से यह सम्भव नही प्रतीत होता कि मन्दिरो का हाता, जो अब नष्ट-सा हो गया है, बनाने की यादगार में ऐसी बडी प्रशस्ति लगाई गई हो। सम्भव है कि उक्त हाते के बनवाने के साथ वहाँ कोई मन्दिर भी समरसिंह ने बनवाया हो, परन्तु दूसरी शिला के न मिलने से इसका कुछ भी निश्चय नही हो सकता।

5 भावनगर इंस्क्रिप्शन्स, पृ० ७४–७७।

यानी) का भी उल्लेख करता हुआ, उसके स्थान का परिचय इस तरह देता है कि चित्रकूट के रहने वाले नागर जाति के ब्राह्मण उसी वेदशर्मा ने इस (अचलेश्वर के मठ की) प्रशस्ति की रचना की, जिसने कि एकलिंग, त्रिभुवन इस नाम से प्रसिद्ध समाधीश (= शिव) और चक्र स्वामी (= विष्णु) के मन्दिरों के समूह की प्रशस्ति बनाई थी[1]। वेदशर्मा आबू की प्रशस्ति की रचना के पूर्व अपनी बनाई हुई एक ही और प्रशस्ति का उल्लेख करता है। वह चित्तौड़ की वि० सं० १३३१ की प्रशस्ति ही है। चित्तौड़ के उक्त हाते के भीतर दो शिवालय टूटी हुई दशा में मौजूद है, परन्तु उनमें शिलालेख न होने से यह जाना नहीं जा सकता कि उनमें से कौन सा मन्दिर एकलिंग का था। मेवाड़ के राजाओ के इष्टदेव एकलिंग होने के कारण उसके नाम का मन्दिर चित्तौड़ में भी बनाया गया हो, यह सम्भव है। त्रिभुवन नाम से प्रख्यात समाधीश (त्रिभुवन विदित श्री समाधीश) का मन्दिर ऊपर बतलाया हुआ त्रिमूर्ति वाला[2] शिव मन्दिर ही है। क्योंकि उसी मन्दिर में लगी हुई उसी के जीर्णोद्धार की महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति में उक्त मन्दिर के नाम का परिचय 'समाधीश[3]' और 'समिद्धेश[4]' दोनो नामो से दिया है और उसी मन्दिर में लगे हुए कुमारपाल के वि० सं० १२०७ के शिलालेख में उसका नाम समिद्धेश्वर[5] मिलता है। आबू की प्रशस्ति का

---

1 योऽकार्षीदेकलिंगत्रिभुवनविदितश्रीसमाधीशचक्र
स्वामिप्रासादवृन्दे प्रियपटुतनया वेदशर्म्मा प्रशस्तिम्।
तेनैषापि व्यधायि स्फुट गुण विशदा नागरज्ञातिभाजा
विप्रेणाशेष विद्वज्जनहृदयहरा चित्रकूट स्थितेन ॥६०॥

(आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति—इण्डि० एण्टि०, जि० १६ पृ० ३५)

2 चित्तौड़ के किले पर त्रिमूर्ति तथा शिवलिंग वाला एक और भी मन्दिर है, जिसको भी लोग अदबदजी (अद्भुतजी) का मन्दिर कहते हैं। [illegible] वि० सं० १५४० में बना था, ऐसा वहां के शिलालेख से पाया जाता है।

3 श्रीमत्समाधीश[illegible] (पंक्ति ४३)।

4 समिद्धेश [illegible]।

5 श्रीसमिद्धेश्वरस्य [illegible] (पंक्ति २२-२३)।

'त्रिभुवन विदित श्री समाधीश' समास वाला पद यद्यपि दो अर्थों में 'त्रिभुवन नाम से प्रसिद्ध समाधीश' (शिव) और त्रिभुवन में प्रसिद्ध समाधीश[1] का सूचक हो सकता है, तो भी उसका 'त्रिभुवन विदित (त्रिभुवन नामक)' अन्श 'त्रिभुवननारायण' नामक भोज के शिवालय की स्मृति दिलाता है, इसलिये उसे "त्रिभुवन इति विदितः" इसी व्यास (विग्रह) का मध्यम पद लोपी समास मानना अधिक उचित जान पड़ता है। चक्र स्वामी (विष्णु) का मन्दिर वहाँ पर कौनसा था, इस विषय का निर्णय नहीं हो सका, क्योंकि वहां कई पुराने मन्दिर टूटे हुए पड़े हैं, परन्तु यह निश्चय है कि वहां चक्र स्वामी (विष्णु) का कोई मन्दिर अवश्य था, क्योंकि उपर्युक्त महाराणा मोकल की वि० स० १४८५ की प्रशस्ति के प्रारम्भ में शिव को नमस्कार करने के बाद गजास्य (गणपति), एकलिंग (शिव या उक्त नाम के शिव), गिरिजा (पार्वती) और अच्युत (विष्णु) की आशीर्वादात्मक प्रार्थना की है[2]।

महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण) की वि० स० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में उसके पिता मोकल के वर्णन में लिखा है कि 'उसने चित्तौड में समाधीश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। दुर्गा के मन्दिर के आँगन में सर्व धातु का सिंह स्थापित किया और चक्रपाणि (चक्रस्वामी, विष्णु) के मन्दिर में सोने का गरूड बनवाया[3]।

ऊपर के सारे कथन का सार यही है कि जिस त्रिमूर्ति वाले शिवालय का जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने कराया, वही राजा भोज का बनाया

---

1 समाधीश, समिद्धेश और समिद्धेश्वर ये तीनो नाम उपर्युक्त शिलालेखो में शिव के अर्थ में प्रयुक्त हुए है।

2 श्लोक १-४ (एपि० इन्डि०, जि० २, पृ० ४१०-११)।

3 नृप समाधीश्वरसिद्धतेजा समाधिभाजा परमं रहस्यम्।
आराध्य तस्यालयमुद्धधार श्रीचित्रकूटे मणितोरणाक ।।२२२।।
य सुधाशुमुकुटप्रियागणे वाहनम् मृगपति मनोरम ।
निर्मितम् सकलधातुभक्ति भि पीठरक्षणविधार्विव व्यधात् ।।२२४।।
पक्षिराजमपि चक्रपाणये हेमनिर्मितमसौ दधौ नृप ।
येन नीलजलदच्छविर्विभु श्चँचलायुत इवाधिक बभौ ।।२२५।।

(कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति-अप्रकाशित)

हुआ 'त्रिभुवननारायण' नामका शिवालय होना चाहिये, जो पीछे से 'भोजस्वामी,' 'समिद्धेश्वर,' 'समाधीश,' 'समाधीश्वर,' 'अद्‌बद्‌जी' और 'मोकलजी का मन्दिर' कहलाया। *

ना० प्र० प० काशी, (नै०न०) भाग ३, ई० स० १९२२-२३, वि० स० १९७९

सम्पादकीय टिप्पण

* मालवे के परमार राजा भोज के विषय मे श्री ओझाजी द्वारा यह अपूर्व खोज हुई है और अपने असाधारण अध्ययन द्वारा उन्होने इस निबन्ध मे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि परमार राजा भोज चित्तौड मे भी रहा करता था और उसने वहाँ शिवमन्दिर बनवाया। उसका उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, जिससे वह मन्दिर 'भोजस्वामि देव जगती' और 'त्रिभुवननारायण' नामक देव मन्दिर कहलाता था। भोज का उपनाम 'त्रिभुवननारायण' था, इस विषय मे इसके पूर्व तक लोग अज्ञात थे।

हथूंडी के राष्ट्रकूट राजा धवल के वि० स० १०५३ (ई० स० ९९६) के शिलालेख से यह स्पष्ट है कि परमार राजा भोज के पिता सिंधुराज के ज्येष्ठ भ्राता मुन्ज ने मेवाड के गुहिलवंशी नरेशो के मुख्य नगर आघाटपुर (आहाड) को जो उस समय राजधानी रहना सम्भव है, नाश किया था। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मुंज ने इस विजय के साथ-साथ मेवाड का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया हो और चित्तौड भी। मुन्ज के साथ संघर्ष का मेवाड के शिलालेखो में तो कुछ भी उल्लेख नहीं है, पर परमारो के शिलालेखो एवम् उनके काव्यो में तो इसका वर्णन होना चाहिये, किन्तु वहाँ भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता। इधर-उधर जो कुछ भी मिला, श्री ओझाजी ने यह संग्रह किया है। वस्तुत चित्तौड पर भोज ने कोई देवालय बनवाया हो तो उसका निर्माणकाल वि० स० १०६६-८८ (ई० स० १०१०-३१) तक माना जायगा।

[illegible] भोज की मृत्यु के बाद पतन का प्रारम्भ होता है। [illegible] चला जाता है। [illegible] द्वारा मालवा विजय होकर [illegible] लगभग [illegible] वर्ष भोज के [illegible] परमार राज्य का [illegible] (सिद्धराज) [illegible] कुमारपाल वि० स० [illegible] (ई० स० [illegible]) में [illegible] [illegible] मन्दिर [illegible] श्री ओझाजी

भोज का वतलाते है, उसके दर्शन कर वहाँ ग्राम भेट करता है। कुमारपाल वहाँ अपनी तरफ से प्रशस्ति भी रागवाता है, जो अवतक विद्यमान है और उसमे वह इस देवालय का नाम 'श्रीसमिद्धेश्वरम् देवम् प्रसिद्धम् जगती' होना उल्लेख करता है । वही एक दूसरी प्रशस्ति वि म १४८५ (ई, स. १४२९) की महाराणा मोकल के समय की लगी हुई है, जिसमें उक्त देवालय का नाम 'समिद्धेश' और 'समाधीश दिया है । महारावल समरसिंह के समय की वि. सं १३४२ (ई स १२८५) की आबू की प्रशस्ति तथा महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय की वि स १५१७ (ई स १४६०) की कुम्भलगढ की प्रशस्ति में भी इस ही प्रकार के नामोल्लेख हुए हैं । यह स्पष्ट है कि महाराणा मोकल द्वारा पंद्रहवी शताब्दी के अन्त में इस शिवालय का जीर्णोद्धार होने से जनसाधारण में वह 'मोकलजी का मन्दिर कहलाता है और मूर्ति की वैचित्र्यता के कारण उस ही को 'अद्‌बद्‌जी का मन्दिर' भी लोग कहा करते है ।

परमारो द्वारा आघाटपुर का पतन तथा चित्तौड पर उनका अधिकार होना एव भोज द्वारा, चित्तौड पर देवालय निर्माण का उल्लेख उनके इतिहास में नही होने और इस मन्दिर में लगे हुए शिलालेखो में 'समिद्धेश', वा 'समाधीश' नाम उल्लिखित होने से इस मन्दिर के भोज द्वारा निर्माण होने के कथन में सन्देह हो सकता है, परन्तु श्री ओझाजी ने अनेक प्रमाणो और प्रवल युक्तियो से यह सिद्ध कर दिया है कि जिसको इस समय 'मोकलजी का मन्दिर' कहते है तथा जो महाराणा कुम्भकर्ण के बनवाये हुए कीर्तिस्तम्भ और गोमुख कुड के सन्निकट है, वही परमार राजा भोज द्वारा निर्मित 'त्रिभुवननारायण' अथवा 'भोजस्वामि देव जगति' देवालय होना चाहिये । भोज को 'त्रिभुवननारायण' (त्रैलोक्यनारायण) नाम से गणरत्न महोदधि में सम्बोधन किया है, जो उसका उपनाम (विरुद) सूचक है।

समय-समय पर इस शिवालय के जीर्णोद्धार होते रहे है । गुजरात के प्रसिद्ध सोलकी नरेश कुमारपाल के समय की उक्त प्रशस्ति में इस मन्दिर के दर्शन कर वहाँ एक गाँव भेंट करने का उल्लेख है, इससे स्पष्ट है कि वि० स० १२०७ (ई० स० ११५०) में जब कुमारपाल चित्तौड आया, तब वहाँ मन्दिर विद्यमान था । इससे उसके पूर्व का ही उक्त मन्दिर होना चाहिये । सम्भव है कि उस (कुमारपाल) ने वहाँ जीर्णोद्धार भी कराया हो । तदनन्तर गुहिलवशी महारावल समरसिंह के

समय इसके आस-पास नवीन मन्दिर बने, तब इसका जीर्णोद्धार होना सम्भव है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ का नाश होने पर इस मन्दिर की बड़ी भारी क्षति हुई, अतएव महाराणा मोकल ने इसका पन्द्रहवीं शताब्दी में जीर्णोद्धार कराकर प्रशस्ति लगवाई। तत-पश्चात् चारसौ वर्ष तक इस देवालय का कोई जीर्णोद्धार नहीं हुआ। गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह और मुगल सम्राट अकबर द्वारा होनेवाले समय-समय पर चित्तौड़ पर भयंकर आक्रमणों, अनेक तूफानों और बरसातों को सहते-सहते यह मन्दिर भग्नावशेष हो गया था और गिरने में कुछ भी सन्देह नहीं था कि बीसवीं शताब्दी के अन्त में परलोकवासी महाराणा फतहसिंहजी का इसके जीर्णोद्धार की तरफ ध्यान आकर्षित हुआ और महाराणा भूपालसिंहजी के समय इसका जीर्णोद्धार का कार्य समाप्त होकर यह यात्री-गणों के देखने लायक वस्तु हो गया है।

तक्षण कला—बनावट आदि से इस देवालय का निर्माण काल ग्यारहवीं शताब्दी का पाया जाता है। परमारों और सोलंकियों के बीच परम शत्रुता रही, अतएव कुमारपाल द्वारा इस मन्दिर के दर्शन कर गाँव भले ही भेंट किया जावे, परन्तु भोज की कीर्ति स्थिर न रहे, इस कारण से समिद्धेश्वर नामक नये नाम की सृष्टि हुई हो तो भी आश्चर्य की बात नहीं है। परमारों और गुहिलवंशियों के बीच भी वैमनस्य था, अतएव महारावल समरसिंह के लेख में भी भोज का चित्तौड़ में मन्दिर बनाने का उल्लेख होना असम्भव है, क्योंकि उसने कुमारपाल का ही पथ ग्रहण किया। [illegible] ने फिर तो भोज का नाम ही भूल गये और महाराणा मोकल तथा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के समय तक इस मन्दिर को बने, लगभग चार सौ वर्ष से ऊपर हो गये, अतएव उन्होंने परम्परागत नामों का ही उल्लेख किया, जैसा कि कुमारपाल तथा समरसिंह के शिलालेखों में था।

[illegible] श्री [illegible] ने इस निबन्ध द्वारा परमारों के इतिहास को [illegible] और [illegible] दिया है। [illegible] की कीर्ति को चिरस्थायी बनाने का [illegible] किया है। [illegible] उनकी [illegible] है कि इतिहास के [illegible] के [illegible] में [illegible] है।

---

१३ अनहिलवाड़े के पहले के गुजरात के सोलंकी ।

(१)

गुजरात में सोलंकियो का स्वतन्त्र और प्रतापी राज्य मूलराज ने अनहिलवाडे में स्थापित किया, किन्तु उसके पहले भी उक्त प्रान्त के लाट आदि प्रदेशो पर सोलकियो की छोटी-छोटी शाखाओ का अधिकार रहना पाया जाता है । इस लेख में उन्हीं शाखाओ का वृत्तान्त लिखा जाता है ।

खेडा [1] से एक दानपत्र[2] सोलकी राजा विजयराज का मिला है । इस राजा को 'विजयवर्मराज' भी कहते थे । दानपत्र का आशय यह है कि "सोलकी वंशी जयसिंहराज का पुत्र बुद्धवर्मा हुआ, जिसके विरुद 'वल्लभ' और 'रणविक्रान्त'[3] थे । उसके पुत्र राजा विजयराज ने [कलचुरि[4]] सवत् ३६४ (वि० स० ७००–ई० स० ६४३) वैशाखशुदि १५ के दिन जबूसर[5] के ब्राह्मणों को काशाकूल[6] विषय (जिले) के अन्तर्गत सधीयर[7] गाँव के पूर्व का परियर[8] गाँव प्रदान किया, जिस दिन कि उसका निवास

---

1 बम्बई हाते में उक्त नाम के जिले का मुख्य शहर ।

2 इन्डि० ऐंटि०, जिल्द ७, पृ० २४८–४९ ।

3 युद्ध में पराक्रम बतलानेवाला ।

4 गुजरात के लाट प्रदेश पर पहले कलचुरियो (हैहयवशियो) का राज्य रहने से वहां पर उनका चलाया हुआ कलचुरि सवत् जारी था, जिससे उनके पीछे वहां पर राज्य करनेवाले सोलकी तथा गुर्जर (गूजर)-राजाओ के कितने ही ताम्रपत्रो में वही सवत् मिलता है ।

5 बम्बई हाते के भडोच जिले में ।

6 शायद यह तापी नदी के उत्तरी तट के निकट का प्रदेश हो ।

7 बम्बई हाते के सूरत जिले के 'ओरपाड' तअल्लुके में है, जिसको इस समय संधिएर कहते है ।

8 सधिएर से कुछ मील पूर्व में है और इस समय 'परिया' नाम से प्रसिद्ध है ।

विजयपुर[9] में था ।

इन राजाओं के नाम तथा विरुदों से अनुमान किया जाता है कि वे वादामी के सोलंकियों में से थे, परन्तु उक्त, ताम्रपत्र का जयसिंह वादामी के कौनसे राजा से सम्बन्ध रखता है, यह स्पष्ट न होने से हम उसको वादामी के सोलंकियों के वंशवृक्ष में निश्चयपूर्वक स्थान नहीं दे सकते । तथापि समय की ओर दृष्टि देते हुए यह कह सकते हैं कि सम्भव है वह दक्षिण में सोलंकियों के राज्य की स्थापना करने वाले जयसिंह से भिन्न हो । वादामी के सोलंकियों का अपने पुत्रादिकों को समय-समय पर जागीर देते रहना पाया जाता है और उपर्युक्त ताम्रपत्र वादामी के प्रसिद्ध राजा पुलकेशी दूसरे के समय का है जिसने लाट आदि देश अपने अधीन किये थे[10] तथा जिसके पूर्व मंगलीश ने लाट पर राज्य करने वाले कलचुरियों की राज्य लक्ष्मी छीनली थी ।[11] अतएव सम्भव है कि मंगलीश अथवा पुलकेशी दूसरे ने अपने किसी वंशधर को लाट देश में जागीर दी हो । विजयराज के पीछे उक्त शाखा का कुछ पता नहीं चलता ।

जयसिंहराज
|
बुद्धवर्मा
|
विजयराज
(वि० सं० ७००)

(२)

वादामी के प्रसिद्ध सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे के चौथे पुत्र जयसिंह वर्मा को जिसे धाराश्रय[1] भी कहते थे, लाट देश जागीर में मिला था । उसके तीन पुत्र शीलादित्य, मंगलराज और पुलकेशी थे । शीला-

9 [illegible] निश्चय [illegible] ।

10 [illegible], प्रथम भाग, पृ० ३७–३८ ।

11 [illegible], पृ० ३०–३९ ।

1 [illegible] ।

2 [illegible], पृ० [illegible] ।

दित्य ने श्रयाश्रय[3] विरुद धारण किया था। उसके दो दानपत्र मिले जिनमें से एक[4] कलचुरि सवत् ४२१ (वि० सं० ७२७–ई० स० ६७० माघ शु० १३ का नवसारी से दिया हुआ और दूसरा[5] कलचुरि स० ४४ (वि० सं० ७४६ = ई० स० ६६२) श्रावण शु० १५ का कार्मणेय[6] के पा के कुसुमेश्वर के स्कंधावार[7] से दिया हुआ है। इन दोनो में उसको युवराज लिखा है, जिससे निश्चित है कि उस समय तक जयसिंह वर्मा विद्यमान था, और शीलादित्य अपने पिता के सामने प्रान्तो का शासक रहा हो। मगलराज के राज्य-समय का एक दानपत्र[8] शक सवत् ६५३ (वि० स० ७८८–ई० स० ७३१) का मिला है, जिसमें उसके विरुद 'विनयादित्य,' 'युद्धमल्ल' और 'जयाश्रय' दिये है। उसमें शीलादित्य का नाम न होने से अनुमान होता है कि वह कुवरपदे में ही मर गया हो और जयसिंह के पीछे मगलराज लाट देश का राजा हुआ हो। उस (मगलराज) का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई पुलकेशी हुआ, जिसने अवनिजनाश्रय[9] विरुद धारण किया। उसके राजत्व-काल का एक ताम्रपत्र[10] कलचुरि सवत् ४९० (वि० स० ७९६–ई० स० ७३९) का मिला है जिसमें लिखा है कि "ताजिको"[11] (अरबो) ने तलवार के बल से सैंधव[12] कच्छेल्ल,[13]

---

3 श्रयाश्रय = लक्ष्मी का आश्रय।

4 वम्बई ए० सो० ज०, जि० १६, पृ० २–३।

5 विएना ओरिऐंटल काग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन, पृ० २२५–२६।

6 कार्मणेय = कामलेज, बम्बई हाते के सूरत जिले में।

7 स्कन्धावार = सैन्य का पडाव, कैम्प।

8 इन्डि० एँ०; जिल्द १३, पृ० ७५।

9 अवनिजनाश्रय = पृथ्वी पर के लोगो का आश्रय (आश्रय-स्थान)

10 विएना ओरिऐंटल कांग्रेस का कार्य विवरण, आर्यन् सेक्शन पृ० २३०।

11 यह शब्द अरबो के लिये लिखा गया है [फलित ज्योतिष का एक अग 'ताजिक' या 'ताजिक' शास्त्र नाम से प्रसिद्ध है। उसमें भी 'ताजिक' शब्द अरबो का ही सूचक है क्योकि वह अग उन्हीके ज्योतिष शास्त्र से लिया गया माना जाता है।

12 सैंधव = सिंध।

13 कच्छेल्ल = कच्छ।

सौराष्ट्र,[14] चावोटक,[15] मौर्य,[16] गुर्जर,[17] आदि राज्यों को नष्ट कर दक्षिण के समस्त राजाओं को जीतने की इच्छा से दक्षिण में प्रवेश करते हुए प्रथम नवसारिका[18] पर आक्रमण किया । उस समय उसने घोर संग्राम कर 'ताजिकों' (अरबों) को विजय किया, जिस पर शौर्य के अनुरागी राजा वल्लभ[19] ने उसको 'दक्षिणापथसाधार'[20] 'चलुक्किकुला[21] लङ्कार' 'पृथ्वीवल्लभ' और 'अनिवर्तकनिवर्त्तयितृ'[22] ये चार विरुद प्रदान किये[23] ।

अरबों की यह लड़ाई खलीफा हेशाम के समय सिंध के हाकिम जुनैद के सैन्य की होनी चाहिए, क्योंकि खलिफा हेशाम का समय हि० सन् १०५ से १२५ (वि० सं० ७८० से ७९९ ई० स० ७२४ से ७४३) तक का है और पुलकेशी को वि० सं० ७८८ और ७९६ (ई० स० ७३१

---

14 सौराष्ट्र = सोरठ, दक्षिणी-काठियावाड़ ।

15 चावोटक = चापोत्कट, चावड़े ।

16 मौर्य = मोरी । शायद ये राजपूताना के मोरी हों । कोटा के पास कणसवा के शिवमन्दिर के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख में मौर्यवंशी राजा धवल का नाम मिलता है । उस समय के पीछे भी राजपूताने में मौर्यों का अधिकार रहना सम्भव है ।

17 गुर्जर = गुजरात (भीनमाल का राज्य) । चीनी यात्री हुएन्त्सङ्ग ने गुर्जर राज्य की राजधानी 'भीनमाल' होना लिखा है, जो अब जोधपुर राज्य के अन्तर्गत है ।

18 नवसारिका = नवसारी, गुजरात में ।

19 बादामी का सोलंकी राजा विजयादित्य या विक्रमादित्य दूसरा ।

20 'दक्षिणापथसाधार' = दक्षिण का स्तम्भ ।

21 'चलुक्किकुलालङ्कार' = सोलंकी वंश का भूषण ।

22 'अनिवर्तकनिवर्तयितृ' = न हारने (हटने) वालों को हराने (हटाने) वाला ।

23 [illegible] सौराष्ट्रचावोटक [illegible] दक्षिणापथप्रवेश • • • [illegible] प्रवृत्त [illegible] शौर्यानु- [illegible] दक्षिणापथसाधा- [illegible] दर्यासलवे [illegible] ([illegible]०, [illegible]) ।

और ७३९) के बीच राज्य मिला था । 'फुतूहुलबुल्दान[24] नामक अरबी तवारीख़ में लिखा है कि जुनैद ने अपना सैन्य मरमाड़,[25] मंडल,[26] दामलज,[27] बरूस,[28] उजैन,[29] मालिबा,[30] बहरिमद, (?) अलवेलमान,[31] और जज्र[32] पर भेजा था[33] ।

पुलकेशी के अन्तिम समय अथवा देहान्त के बाद राठोड़ो ने लाट देश भी सोलंकियो से छीन लिया, जिसके साथ इस शाखा की समाप्ति हुई । इन राजाओ की राजधानी नवसारी थी ।

१—जयसिंह वर्म्मा
वि० सं० ७२७,७४६

शीलादित्य

(२) मंगलराज वि० सं० ७८८,

(३) पुलकेशी वि० स० ७९६

(३)

जूनागढ़ (काठियावाड़ में) राज्य के ऊना नामक गांव से सोलकियो के दो ताम्रपत्र मिले है, जिनसे सोरठ पर राज्य करने वाली सोलकियो की एक शाखा का नीचे लिखे अनुसार वृत्तान्त मिलता है।

सोलकी वश में कल्ल और महल्ल नाम के दो भाई बड़े राजा हुए, जिनका सौभ्रात्र राम-लक्ष्मण के समान था । कल्ल का पुत्र राजेन्द्र[1] हुआ जो पराक्रमी

---

24 फुतूहुल् बुल्दान = अहमद इब्न याहिया ने खलीफा अलमुतवक्किल के समय ई० स० ८५० के आस-पास यह तवारीख लिखी थी ।

25 मरमाड = मारवाड ।

26 मण्डल = काठियावाड में (ओखामण्डल) ।

27 दामलज = शायद कामलेज हो (बम्बई हाते के सूरत जिले मे)।

28 बरूस = भडोच (बम्बई हाते में नर्मदा तट पर)।

29 उजैन = उज्जैन ।

30 मालिबा = मालवा ।

31 अल्वेलमान = भीनमाल ।

32 जज्र = गुर्जरदेश ।

33 इलियट, हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द १, पृ० ४४१—४२ ।

---

1 इस नाम की शुद्धता में कुछ शङ्का है। मूल ताम्रपत्र बहुत ही अशुद्ध खुदे हुए हैं ।

और बुद्धिमान् था। उसके बेटे बाहुक धवल ने अपने बाहुबल से धर्म[2] नामक राजा को नष्ट किया, राजाधिराज परमेश्वर पदधारी राजाओं को जीता, और कर्णाटक के सैन्य[3] को हराया। उसका पुत्र अवनिवर्म्मा हुआ, जिसके बेटे बलवर्मा ने विषढ को जीता और जज्जप आदि राजाओं को मार कर पृथ्वी पर से हूण वंश को मिटा दिया। उसने वलभी[4] स० ५७४ (वि० सं०) ९५० ई० स० ८९४) माघ शु० ६ को अपने बाहुबल से उपार्जन किए हुए गाँव वाले नक्षिसपुर[5] प्रदेश में से जयपुर गाँव तरुणादित्य नामक सूर्य मन्दिर के अर्पण किया। वह कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव[6] के पुत्र महेंद्रायुध (महेंद्रपाल) देव का सामन्त[7] और सौराष्ट्र देश के एक हिस्से का स्वामी था।

---

2 धर्म = यह प्रसिद्ध पालवंश का धर्मपाल हो सकता है जो कन्नौज [illegible] पड़िहारों से लड़ा करता था। इसीसे उनके सामन्त बाहुक धवल का उससे लड़ना सम्भव है।

3 कर्णाटक का सैन्य = दक्षिण के राठौड़ो का सैन्य। उस समय कर्णाटक देश पर राठौड़ो का राज्य था, जो कन्नौज के पड़िहारों से, जिनका राज्य पहले मारवाड़ पर था, लड़ते रहे थे। ये सोलंकी, पड़िहारों के सामन्त होने से, उनसे लड़े होंगे।

4 काठियावाड़ से गुप्तों का अधिकार मिट जाने बाद वहाँ पर वलभी के राज्य का उदय हुआ। उस समय वहाँ पर चलनेवाला गुप्त संवत् ही वलभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ई० स० की आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों ने वलभी राज्य को नष्ट किया, जिसके बाद भी कुछ समय तक वलभी संवत् वहाँ पर प्रचलित रहा। इसीसे पिछले ताम्रपत्रादि में भी कहीं कहीं उसका उल्लेख मिलता है (वलभी संवत् के लिये देखो भारतीय प्राचीन लिपिमाला, द्वितीय [illegible], पृ० [illegible])।

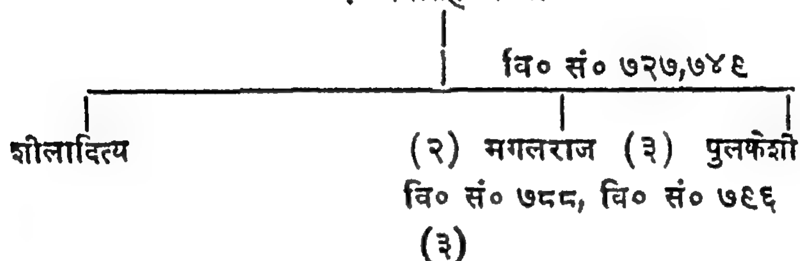
5 नक्षिसपुर = [illegible] (दक्षिण काठियावाड़ में)।

6 भोजदेव को मिहिर भी कहते थे और वह महाराज रामभद्र का पुत्र, नागभट का पौत्र और वत्सराज का प्रपौत्र था।

7 [illegible]परमेश्वरश्रीभोजदेव पादानुध्यानपरम भट्टा- [illegible] श्रीमहेन्द्रायुधदेवपादप्रसादात्[illegible]महा- [illegible]श्रीअवनिवर्मसुतश्रीबलवर्मा (बलवर्मा का [illegible], [illegible], जि० ९, पृ० १-१०)

और ७३६) के बीच राज्य मिला था। 'फुतूहुलबुल्दान[24] नामक अरबी तवारीख़ में लिखा है कि जुनैद ने अपना सैन्य मरमाड़,[25] मंडल,[26] दामलज,[27] बरूस,[28] उजैन,[29] मालिबा,[30] बहरिमद, (१) अलवेलमान,[31] और जज्र[32] पर भेजा था[33]।

पुलकेशी के अन्तिम समय अथवा देहान्त के बाद राठौडो ने लाट देश भी सोलकियो से छीन लिया, जिसके साथ इस शाखा की समाप्ति हुई। इन राजाओ की राजधानी नवसारी थी।



(३)

जूनागढ़ (काठियावाड में) राज्य के ऊना नामक गाँव से सोलकियो के दो ताम्रपत्र मिले है, जिनसे सोरठ पर राज्य करने वाली सोलकियो की एक शाखा का नीचे लिखे अनुसार वृत्तान्त मिलता है।

सोलंकी वश में कल्ल और महल्ल नाम के दो भाई बडे राजा हुए, जिनका सौभ्रात्र राम-लक्ष्मण के समान था। कल्ल का पुत्र राजेन्द्र[1] हुआ जो पराक्रमी

24 फुतूहुल् बुल्दान = अहमद इब्न याहिया ने खलीफा अलमुतवक्किल के समय ई० स० ८५० के आस-पास यह तवारीख लिखी थी।

25 मरमाड = मारवाड।

26 मण्डल = काठियावाड में (ओखामण्डल)।

27 दामलज = शायद कामलेज हो (बम्बई हाते के सूरत जिले में)।

28 बरूस = भडौच (बम्बई हाते में नर्मदा तट पर)।

29 उजैन = उज्जैन।

30 मालिबा = मालवा।

31 अल्वेलमान = भीनमाल।

32 जज्र = गुर्जरदेश।

33 इलियट, हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, जिल्द १, पृ० ४४१–४२।

1 इस नाम की शुद्धता में कुछ शङ्का है। मूल ताम्रपत्र बहुत ही अशुद्ध खुदे हुए हैं।

और बुद्धिमान् था । उसके बेटे बाहुक धवल ने अपने बाहुबल से धर्म[2] नामक राजा को नष्ट किया, राजाधिराज परमेश्वर पदधारी राजाओ को जीता, और कर्णाटक के सैन्य[3] को हराया । उसका पुत्र अवनिवर्म्मा हुआ, जिसके बेटे बलवर्मा ने विषढ को जीता और जज्जप आदि राजाओ को मार कर पृथ्वी पर से हूण वश को मिटा दिया । उसने वलभी[4] स० ५७४ (वि० स०) ९५० ई० स० ८९४) माघ शु० ६ को अपने बाहुबल से उपार्जन किए हुए गाँव वाले नक्षिसपुर[5] प्रदेश में से जयपुर गाँव तरुणादित्य नामक सूर्य मन्दिर के अर्पण किया । वह कन्नौज के पडिहार राजा भोजदेव[6] के पुत्र महेंद्रायुध (महेंद्रपाल) देव का सामन्त[7] और सौराष्ट्र देश के एक हिस्से का स्वामी था ।

---

2 धर्म = यह प्रसिद्ध पालवश का धर्मपाल हो सकता है जो कन्नौज के पडिहारो से लडा करता था । इसीसे उनके सामन्त वाहुक धवल का उससे लडना सम्भव है ।

3 कर्णाटक का सैन्य = दक्षिण के राठौडो का सैन्य । उस समय कर्णाटक देश पर राठौडो का राज्य था, जो कन्नौज के पडिहारो से, जिनका राज्य पहले मारवाड पर था, लडते रहे थे । ये सोलकी, पडिहारो के सामन्त होने से, उनसे लडे होगे ।

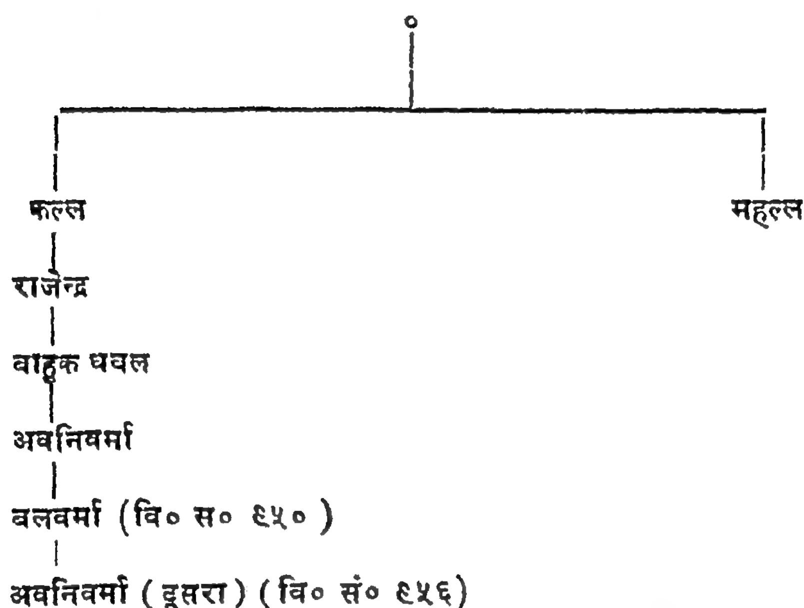
4 काठियावाड से गुप्तो का अधिकार मिट जाने वाद वहाँ पर वलभी के राज्य का उदय हुआ । उस समय वहाँ पर चलनेवाला गुप्त सवत् ही वलभी सवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ । ई० स० की आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे मुसलमानो ने वलभी राज्य को नष्ट किया, जिसके पीछे भी कुछ समय तक वलभी सवत् वहाँ पर प्रचलित रहा । इसीसे पिछले ताम्रपत्रादि में भी कही कही उसका उल्लेख मिलता है (वलभी सवत् के लिये देखो भारतीय प्राचीन लिपिमाला, द्वितीय सस्करण, पृ० १७५) ।

5 नक्षिसपुर = सोरठ (दक्षिण काठियावाड में) ।

6 भोजदेव को मिहिर भी कहते थे और वह महाराज रामभद्र का पुत्र, नागभट का पौत्र और वत्सराज का प्रपौत्र था ।

7 परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेव-पादानुध्यातपरम भट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीमहेन्द्रायुधदेवपादप्रसादाक्षतसमधिगतपन्चमहाशब्दमहासामन्तश्रीचालुक्यान्वयप्रसूतश्रीअवनिवर्मसुतश्रीबलवर्मा (बलवर्मा का दानपत्र, एपि० इन्डि०, जिल्द ९, पृ० १–१०)

उसके पुत्र अवनिवर्मा[8] दूसरे ने जिसका दूसरा नाम योग[9] था। यक्षदास आदि राजाओं के देशों पर आक्रमण कर उनकी सेनाओं को परास्त किया और राजा धरणीवराह[10] को भगाया। वह भी कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल का सामन्त था। उसने वि० स० ९५६ (ई० स० ९००) माघ शुदि ६ को अम्बुलक[11] गांव उपर्युक्त सूर्य-मन्दिर के भेंट किया।



---

8 बिल्हारी के शिलालेख में (देखो सोल० इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १५–१६) कलचुरि राजा केयूरवर्ष (युवराजदेव प्रथम) की रानी नोहला को सोलंकी अवनिवर्मा की पुत्री लिखा है। वह अवनिवर्मा उपर्युक्त अवनिवर्मा (दूसरे) से भिन्न था, क्योंकि उक्त लेख में उसके पिता का नाम सधन्व और दादा का नाम सिंहवर्मा लिखा है।

9 पूरा नाम शायद योगवर्म्मा हो।

10 धरणीवराह काठियावाड का चाप (चापोत्कट = चावडा) वंशी माडलिक और कन्नौज के प्रतिहार राजा महिपालदेव का सामन्त था। इसके समय का दानपत्र हड्डाला गाव (काठियावाड) से मिला है; जो शक स० ८३६ (वि० स० ९७१ = ई० स० ९१४) का है। इन्डियन एन्टिक्वेरी (जिल्द १२, पृ० १९०–९५) में डाक्टर बूलर ने इसका समय शक सवत् ६३६ (वि० स० ९७४ ई० स० ९१७–८) माना है और महीपालदेव को बिना किसी प्रमाण के गिरनार–जूनागढ के चूडासमा या आभीर राणको में से कोई माना है।

11 अम्बुलक = उपर्युक्त जयपुर गाव से उत्तर में।

अनहिलवाडे में चावडो के पीछे सोलकियो का प्रवल स्वतन्त्र राज्य-स्थापित करनेवाले मूलराज के पूर्वजो का कुछ पता नहीं चलता। मूल-राज ने अपने वि० स० १०४३ (ई० स० ९८७) माघ वदि अमावस्या के दान-पत्र में अपने को महाराजाधिराज श्रीराज का पुत्र लिखा है (इ० एँ, जिल्द ६, पृ० १९१)। प्रवन्धचिन्तामणि, कुमारपाल प्रबन्ध आदि के अनुमार छत्तीस लाख गांव वाले कान्यकुब्ज देश के कल्याणकटक नगर के राजा भूदेव (भूयगडदेव) के वशज मूजालदेव के तीन पुत्र राज, वीज और दडक सोमनाथ की यात्रा से लौटते थे, तव चावडावश के अन्तिम राजा भूयडदेव (सामन्तसिंह) ने राज की अश्वविद्या की चातुरी देख और उसे उच्चकुल का अनुमान कर अपनी वहिन लीलादेवी का विवाह उससे कर दिया। लीलादेवी की अकाल मृत्यु होने पर उसका पेट चीर कर वालक निकाला गया। इसका जन्म मूल नक्षत्र में और अप्राकृतिक रीति पर होने से वह मूलराज कहलाया। पीछे इसने मामा को मार कर अपने को राजा वनाया। कन्नौज में सोलकियो के राज्य होने का कोई प्रमाण नही मिलता। दक्षिण के कल्याण नगर पर वहुत पहले सोलकियो का राज्य था, जिसकी शाखाओ का ही 'लाट,' 'सोरठ' प्रभृति पर राज्य होना दिखाया जा चुका है। ये सोलकी कन्नौज के पडिहारो के सामन्त थे। अतएव सम्भव है कि मूलराज का पिता राज (राजि) और उसका पूर्वज भूयगडदेव सोलकियो की इसी सोरठ वाली शाखा के वन्शधर हो, जिसका वर्णन अभी किया जा चुका है। इससे उसका कान्यकुब्ज देश के अन्तर्गत होना, तथा (किसी, कालमें) कल्याणकटक के राजवश से उद्भूत होना सम्भव है। 'भूदेव, अवनिवर्मा का पर्याय भी हो सकता है।

(४)

कल्याण के सोलकी राजा तैलप के वृत्तान्त में सोलंकी वारप (वारप्प) का कुछ हाल आता है[1] उसके वश का जो कुछ हाल मिलता है वह इस तरह है—

सोलकी वश में निंवार्क[2] का पुत्र वारप हुआ जिसने लाट देश प्राप्त किया। प्रवन्धचिन्तामणि[3] में लिखा है कि सोलकी राजा मूलराज पर

---

1 देखो सोल० इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १०५।

2 वारप के पौत्र कीर्तिराज के ताम्रपत्र में निंवार्क से वशावली दी है।

3 प्रवन्धचिन्तामणि की समाप्ति वि० स० १३६१ (ई० स० १३०५) फाल्गुन सुदि १५ को हुई थी।

सपादलक्षीय (सांभर के चौहान) राजा (विग्रहराज दूसरे) ने चढ़ाई की, उसी अवसर पर तैलगण देश के राजा तैलप के सेनापति वारप ने भी उस (मूलराज) पर चढाई की, जिसमें वह मारा गया और उसके १०,००० घोडे[4] तथा १८ हाथी मूलराज के हाथ[5] लगे। द्वयाश्रय काव्य में लाटेश्वर (लाट के राजा) द्वारप (वारप) का मूलराज के पुत्र चामुंडराज के हाथ से मारा जाना लिखा है[6]। कीर्तिकौमुदी[7] में लिखा है कि मूलराज ने लाटेश्वर के सेनापति वारप को मार कर उसके हाथी छीन लिये[8]। सोलकी तैलप ने राठौडो का राज्य छीना, उस समय उनके अधीन का लाट देश भी उसके अधीन हुआ था, वह उसने अपने सेनापति तैलप (वारप) को दिया हो यह सभव है। ऐसी दशा मे उसको तैलप का सेनापति, लाट का राजा, अथवा लाट के राजा का सेनापति लिखने में कोई विरोध नहीं आता, परन्तु सुकृत-सकीर्तन[9] में लिखा है—कि 'मूलराज ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा के सेनापति वारप को जीत कर उसके हाथी छीन लिए,[10]। इससे सशय उत्पन्न होता है, कि वह तैलप का सेनापति था या कन्नौज के राजा का ? हमारी राय में उसका तैलप का सेनापति होना अधिक सभव है[11]। वारप का गोग्गि-

4 यह सख्या अतिशयोक्ति के साथ लिखी जान पडती है।

5 वम्बई की छपी हुई 'प्रवन्धचिन्तामणि', पृ० ४०–४३।

6 द्वयाश्रय काव्य में वारप पर मूलराज की चढाई का हाल वडे विस्तार से लिखा है (सर्ग ६, श्लोक ३६ से ९५ तक) परन्तु वह कवि-कल्पना मात्र ही है।

7 गुजरात के सोलकियो के पुरोहित सोमेश्वर ने वि० स० १२८७ (ई० स० १२३०) के आस-पास 'कीर्तिकौमुदी' रची थी।

8 लाटेश्वरस्य सेनान्यमसामान्यपराक्रम। दुर्वारम् बारपम् हत्वा-हास्तिकयः समाग्रहीत। (कीर्तिकौमुदी, सर्ग २, श्लोक ३)

9 अरिसिह ने ई स १३०० (वि स. १२४३) से कुछ वर्ष पूर्व 'सुकृतसकीर्त्तन' की रचना की थी।

10 विजित्य य संयति कन्यकुब्ज महीभुजो बारपदण्डनाथम्।
जहार हस्तिप्रकरम् कराग्रसूत्कारसदीपितपौरुषाग्निम्॥
सुकृतसकीर्त्तन, सर्ग २ श्लोक ५

11 वारप को तेलप का सेनापति मानने का कारण यह है कि प्रथम तो बारप (बारप्प) नाम ही दक्षिण का है, फिर उसीको लाट देश का राज्य मिला था, ऐसा उसके वशज त्रिलोचनपाल के तामपत्र में लिखा है

राज हुआ, जिसकी पुत्री नायल देवी का विवाह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव राजा वेसुक (वेसुगी) से हुआ था[12]। उसका पुत्र कीर्तिराज हुआ जिस के समय का एक दानपत्र[13] श० सं० ६४० (वि० स० १०७५, ई० स० १०१८) का मिला है। उसका बेटा वत्सराज और उसका त्रिलोचनपाल हुआ जिसका एक ताम्रपत्र[14] श० स० ९७२ (वि० स० ११०७, ई० स० १०५१) पौष अमात कृष्णा अमावस्या का मिला है। उसके पीछे का कुछ भी हाल नही

(वारप्पराज इति विश्रुतनामधेयो राजा वभुव भुवि नाशितलोकशोकः ।।८।। श्री लाटदेशमधिगम्य कृतानि येन सत्यानि नीति वचनानि मुदे जनानाम्। इन्डि० एन्टि०, जि० १२ पृ० २०१)। तैलप ने राठौडो का राज्य छीना उस समय उक्त राज्य का दूर का उत्तरी हिस्सा (लाट) उसने अपने सेनापति को जो सोलकी ही था, दिया हो, यह सम्भव है। कन्नौज के पडिहार राजा महीपाल को, जो भोजदेव (मिहिर) का पौत्र और महेन्द्रपाल का पुत्र था, दक्षिण के राठौड राजा इन्द्रराज तीसरे ने शक स० ८३८ (वि० स० ९७३ = ई० ९१६) के आस-पास हराया। उस समय से ही कन्नौज का महाराज्य कमजोर होने लगा और वि० १०१७ (ई० स० ९६०) में सोलकी मूलराज ने अनहिलवाडे में सोलकियो का स्वतन्त्र राज्य कायम किया। उस समय से अथवा उसके पूर्व कन्नौज के राजाओ का गुजरात आदि अपने राज्य के दक्षिणी हिस्सो पर से अधिकार उठ जाना सम्भव है। ऐसी दशा में वारप को तैलप की तरफ से लाट देश मिलना अधिक सभव है, परन्तु जब तक नवीन शोध से हमारे इस अनुमान की पुष्टि न हो, तब तक हम उसको सशयरहित नही मान सकते।

12 देवगिरि के यादव राजा सेऊणचन्द्र (दूसरे) के समय के शक स० ९९१ (वि० स० ११२६ = ई० स० १०६९) के ताम्रपत्र मे उसके पूर्वज वेसुक की रानी नायलदेवी का सोलकी मण्डलेश्वर गोगि की पुत्री होना लिखा है। वह गोगि वारप का पुत्र गोगिराज होना चाहिये। (चालुक्यान्वयमण्डलीकतिलकाच्छ्रीगोगिराजाकरादुत्पन्ना दुहिताश्रयाद्गुणवती धाम्ना कुलद्योतिता। स्त्रीरत्नम् वत वेवसा प्रकटितम् सामन्त रत्नायसा श्रीनायलदेविनाम सुभगा श्रीपट्टराज्ञी सदा) इन्डि एन्ठि, जिल्द १२, पृ० १२०

13 डाक्टर कीलहार्न सग्रहीत इन्स्क्रिपशन्स आफ नार्दर्न इन्डिया, सं ३५४, पृ ५०।

14 इन्डि० एन्टि जि १२, पृ २०१–२०३।

मिलता। ये सोलंकी बादामी के सोलंकियो के वंशज होने चाहिएँ।

निंबार्क
|
बारप
|
गोग्गिराज
|
कीर्तिराज (वि० स० १०७५)
|
वत्सराज
|
त्रिलोचनपाल (वि० स० ११०७)

(ना० प्र० प०, नवीन सस्करण, काशी, भाग १, संख्या १, सं० १९७७)

१४—लाखा फूलाणी का मारा जाना

चन्द्रवंशी यादव क्षत्रियो की एक शाखा जाडेजा अथवा जाडेचा नाम से प्रसिद्ध है। उक्त शाखा के जाम (राजा) मंड ने ईस्वी सन् की ९ वीं शताब्दी में सिंध से आकर अपने मामा कच्छ के राजा वाघम चावडे को मार कच्छ देश को अपने आधीन किया। उसका पौत्र फूल हुआ जिसका पुत्र लाखा फूलाणी[1] बडा ही समृद्धिवान[2] और उदार राजा था। उसकी ख्याति राजपूताना, गुजरात आदि देशो में अब तक चली आती है, इतना ही नहीं, किन्तु उसका नाम धनाढ्यता और उदारता के विषय में एक साधारण कहावत सा हो गया है।

---

1 फूलाणी=फूल का पुत्र (जैसे जाडाणी=जाडाका पुत्र आदि)

2 मायामाणी वगडावता (के) लाखे फूलाणी,

रहती-सहती माणग्यो हरगोविन्नाटाणी * ॥१॥

लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार।
पारेवाँ मोती चुगे, लाखारे दरबार ॥२॥
पल्लाणी हीरे जडी, सूरत पञ्चाणी,
पच्छम हिन्दो पातशा, लाखो फूलाणी ॥३॥

---

* वगडावत जाति के गूजर थे। अजमेर जिले में रेण नामक स्थान में इनका निवास था, जो भिणाय के समीप है। कहते है कि भिणाय के आस-पास का समग्र देश इनके अधिकार में था और भिणाय साधा-

हमारे यहाँ प्राचीन काल में इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण अनेक प्राचीन राजवशियो आदि के समय तक का भी ठीक पता नहीं चलता और उनके इतिहास के लिये भाट लोगो की मनमानी घडतो पर ही निर्भर रहना पडता है । यही हाल लाखा फूलाणी के समय का है ।

रण बोलचाल में अब भी 'रेण-भिणाय नाम मे प्रसिद्ध है । वे चौवीस भाई थे, जो वीर होने के साथ ही असाधारण सम्पत्तिशाली थे । इनका समय वीरतामय कार्यो में ही व्यतीत होता था और आठो प्रहर मदिरादेवी की आराधना में तत्पर रहते थे । इनमे वडा भाई भोज था, जो पडिहार वाघ की दुराचारिणी स्त्री जयमति को ले आया । वह उसके साथ विलासमय जीवन विताने लगा, किन्तु उसके अन्य तेईस भाई भी उक्त जयमति की तरफ आसक्ति प्रकट करते हुए अनुराग रखते थे । फलत वे परस्पर कट मरे और प्रसिद्ध है कि जयमति चौवीस ही वगडावत भाइयो के मस्तको की माला पहिन सती हो गई । मेवाड के आसीन्द नामक गाँव में जयमति का स्थान है, जहाँ गूजरो का कामड गुरू रहता है और वह स्थान 'वनी' कहलाता है । वगडावतो का समय अभी निश्चित् नही हुआ है । सामान्य रूप से पन्द्रहवी शताब्दी के लगभग उनका उद्गम मानना पडेगा । विलास कामना के हेतु प्रचुर मात्रा में इन्होने अपनी सम्पत्ति का उपयोग किया और अन्त में एक स्त्री के पीछे चौवीस ही भाइयो ने अपने जीवन को लगा दिया । राजस्थान में अवतक इनकी वडी ख्याति है । लोक साहित्य में इनकी वीरता और प्रेममय जीवन के गीतो का वडा महत्व है और गूजर ही नही, अन्य लोग भी वडे चाव से उन्हें गाते है । विक्रम के इधर के एक सहस्र वर्षो मे सम्पत्ति का उपयोग करने वालो मे उपरोक्त दोहे में उल्लिखित तीनो व्यक्ति वडे नामी हुए अर्थात् भोग-विलास में उपयोग करने वाले वगडावत, दातारी में उपयोग करने वाला लाखा फूलाणी और खाने-पीने की सामग्री में व्यय करने वाला हर गोविन्द नाटाणी ।

राजस्थान के कवि इन तीनो व्यक्तियो को नही भूले है । सम्पति का उपयोग करने में कजूसी करने वाले व्यक्तियो के समक्ष यह दोहा उदाहरण रूप में रखते है ।

हरगोविन्द नाटाणी जाति का (सरावगी !) महाजन था । वह जयपुर के कछवाहा नरेश ईश्वरीसिंह के समय केशवदास खत्री के स्थान पर मत्री वना । महाराजा की असाधारण कृपा से लक्ष्मी देवी ने भी उस पर

कर्नल टॉड लिखते है[3] कि—"कन्नौज के राठोड राजा जयचन्दजी के पौत्र सियाजी के हाथ से लाखा फूलाणी मारा गया था," और ऐसा ही राजपूताने में प्रसिद्ध है। रामनाथजी रत्नू अपने "इतिहास राजस्थान" में लिखते है कि—"कन्नौज के राठोड राजा जयचन्दजी के पौत्र सेतरामजी के बेटे सियाजी ने द्वारिका की यात्रा के लिये प्रस्थान किया, जहां से लौटते समय अनहलवाडा पाटन के सोलकी राजा मूलराज ने इनको सत्कार-पूर्वक कुछ दिन अपने यहां रक्खा और सियाजी को अपनी पुत्री ब्याही, जिसके पलटे में सियाजी ने सोलकियो के शत्रु किले कोट के साडेया राजा लाखा फूलाणी को मार कर उनका पीछा छुडाया"।

इन[4] दोनो ग्रंथकारो के लिखे अनुसार विक्रम संवत् १३०० के आस-पास लाखा फूलाणी का मारा जाना मानना पडता है, क्योंकि विक्रम संवत् १२५० (ई० सन् ११९३) में कन्नौज के अन्तिम राठोड राजा जयचन्दजी शाहबुद्दीन गोरी से लडकर युद्ध में मारे गये थे, जिनके पोते (कर्नल टॉड के अनुसार या पडपोते इतिहास राजस्थान के अनुसार) सियाजी[5] थे ।

---

3 टॉड राजस्थान जिल्द दूसरी, पृ० १४ (कलकत्ते में छपी हुई)

4 इतिहास राजस्थान, पृ० १३८।

5 सियाजी का जयचन्दजी के साथ क्या सम्बन्ध था इसका अभी तक ठीक निर्णय नही हुआ। कर्नल टॉड एक राजस्थान में तो सियाजी को जयचन्द का पुत्र (टा० रा० जि० १ पृ० ९५) और दूसरे स्थान में पौत्र होना प्रकट करते है, और ख्यातो की पुस्तको में जयचन्द के पुत्र

कृपा प्रदर्शित की। स्वय के खाने-पीने के कार्य में धन का उपयोग करने में वह अद्वितीय पुरुष था। प्रसिद्ध है कि 'मत्री मोटो मारियो, खत्री केसोदास। जद ही छोडी ईसरा राजकरण की आस,' इस दोहे के अनुसार महाराजा ईश्वरीसिंह ने विषपान द्वारा अपने जीवन को त्याग दिया और उनके छोटे भाई माधवसिंह ने राजा बन कर हरगोविन्द को बंदी कर लिया। तब महाराजा माधवसिंह की आज्ञानुसार हरगोविन्द की हवेली को राज कर्मचारियो द्वारा सभाला गया तो अन्य बहुमूल्य वस्तुओ के अतिरिक्त केवल खाने का आचार ही इतनी मात्रा में निकला कि जिसका मूल्य एक लाख पच्चीस हजार रुपये कूता गया। हरगोविन्द का समय वि० सं० की उन्नीसवी शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है। सं० टि०

जब ऐतिहासिक प्राचीन पुस्तको आदि की तरफ दृष्टि देते है तो ऐसे प्रमाण मिलते है, जिनसे यह पाया जाता है कि उपर्युक्त दोनो ग्रथकारो ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह केवल राजपूताने के भाटों की कल्पित कथाओ पर विश्वास करके लिख दिया है, और उसमें कुछ भी सत्यता नहीं है। लाखा फूलाणी सियाजी के जन्म से २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व वि० १०३६ (ई० सन् ९८०) के आस-पास आन्हिलवाडा के सोलकी राजा मूलराज के हाथो से मारा गया। इस विषय के जो प्रमाण मिले है वे पाठको के विनोदार्थ नीचे उद्धृत किये जाते है--

(क) "द्वयाश्रय[6] काव्य" से पाया जाता है, कि "गुजरात के

वडई सेन, जिनके सेतराम और सेनराम के सियाजी होना लिखा है, परन्तु ये पुस्तकें भाटो की वडन्तो के आधार पर लिखी गई है, जिनमे उक्त-राजाओ के जो राज्याभिषेक सवत् दिए है, वे बिलकुल बनावटी है (जयचन्दजी वि० स० ११५१, वडई सेन वि० स० ११६५ सेतराम वि० स० ११८३ और सियाजी वि० स० १२०५) जिसमें उक्त नामो की सत्यता पर भी शका होती है। दूसरा कारण यह है कि जयचन्दजी के दान पत्रो से उनके पुत्र हरिचन्द्र होना पाया जाता है, जिनका जन्म वि० स० १२३२ भाद्र पद कृ० १२ रविवार को, और नाम करण भाद्र पद शु० १३ रविवार को काशी मे हुआ था, परन्तु कर्नल टाड की पुस्तक और ख्यातो मे हरिश्चन्द्र का नाम ही नही है। कर्नल टॉड को बड़ई मेन का नाम मिला था, जिसको उन्होने राजाओ की नामावली मे दाखिल नही किया, किन्तु उसे कन्नौज के राजा जयचन्दजी का खिताब अनुमान कर उसका अर्थ 'सेना का भाट' किया है। 'चन्दवरदाई' कविको 'चन्दभाट' भी कहते है, इससे शायद उन्होने 'बरदाई' को भाट का पर्य्याय समझ कर ऐसा अर्थ किया हो तो आश्चर्य नही।

6 प्रसिद्ध जैन सूरी हेमचन्द्र ने गुजरात के सोलकी राजकुमार पाल के समय वि० स० १२१७ (ई० सन् ११६०) के आस पास 'द्वयाश्रय काव्य' नामक भट्टी काव्य की शैली की पुस्तक रची, जिसमे उक्तसूरी रचे हुए 'सिद्ध हैम' नामक सस्कृत व्याकरण के सूत्रो के क्रमश उदाहरण और गुजरात के सोलकी राजा मूलराज से कुमारपाल तक का इतिहास दोनो आशय होने से ही उसका नाम 'द्वयाश्रय काव्य' रक्खा गया है।

चौलुक्य (सोलंकी) राजा मूलराज ने सौराष्ट्र सोरठ, दक्षिणी काठियावाड के राजा ग्राहरिपु * पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ का महा प्रतापी राजा लक्ष (लाखा) जो फूलत (फूल) का पुत्र था, अपने मित्र ग्राहरिपु की मदद पर चढ़ा, और मूलराज के कुन्त (भाले) से मारा गया[7]" ।

(ख)—"कीर्ति कौमुदी[8]" में लिखा है कि "मूलराज ने शत्रु के अग में पूरे प्रवेश करने वाले अपने वाण वर्षा इच्छा करने वाले राजा लक्ष (लाखा) पर ताके[9]" ।

(ग) प्रवन्ध चिन्तामणिकार[10] कहता है कि—"अपने प्रतापरूपी अग्नि में लक्ष (लाखा) को होमने वाले मूलराज ने उसकी (लाखा की) स्त्रियो को आंसुओ की वृष्टि कराई, और कच्छ के उक्त स्वामी को अपनी विस्तृत जाल में फांस कर सग्राम रूपी समुद्र में मारा, और अपनी वीरता प्रकट की[11]" ।

---

7 'द्वयाश्रय काव्य' के दूसरे से पाचवे सर्ग तक मूलराज की उक्त चढाई का और पाँचवें सर्ग में लाखा के मारे जाने का हाल विस्तार से लिखा है। ऊपर केवल उसका साराश मात्र उद्धृत किया गया है, (कुन्तेन सर्वसारेणा वधील्लक्ष चुलुक्य राष्ट्र)।

द्वयाश्रय, सर्ग ५ (१२८)।

8 गुजरात के सोलकी राजाओ के पुरोहित महाकवि सोमेश्वर ने वि० सं० १२७७ (ई० सन् १२२०) और १२९२ (ई० सन् १२३५) के वीच 'कीर्तिकौमुदी' नामक ऐतिहासिक काव्य रचा, जिसमे गुजरात के सोलकी राजाओ का इतिहास है ।

9 समत्रा कृत शत्रूणा सपराये स्वपत्रिणाम् ।
महेच्छ कच्छ भूपाल लक्षं लक्षी चकारय ।।

(सर्ग २।४)

10 जैन सूरी मेरूतुग ने वि० सं० १३६१ (ई० सन् १३०५) में प्रवन्ध चिन्तामणि, नामक ग्रन्थ रचा, जिसमे अनेक ऐतिहासिक कथाओ का सग्रह किया ।

11 स्वप्रतापावले येन लक्ष होम वितन्वता ।
सूचि तस्तत्कलत्राणा वाष्पा वाग्रह निग्रह ।।१।।
कच्छप लक्ष हत्वा सहसाधिक लम्ब जाल मायातं ।
संगर सागर मध्ये धीवरता दर्शितायेन ।।२।।

(वम्बई की छपी प्रवन्ध चिन्तामणि पृ० ४७)

सम्पादकीय टिप्पण

* इसका नाम ग्रहरिपु भी लिखा हुआ मिलता है। (सम्पा० टि०)

(घ) प्राचीन गुजराती कविता में लाखा के जन्म और मृत्यु का वृत्तान्त इस तरह दिया है[12] कि—"शक सवत् ७७७ (वि० स० ९१२ = ई० सन् ८५६) श्रावण (शुक्ला) ७ को सोनल राणी के गर्भ से लाखा का जन्म हुआ और शक सवत् ९०१ (वि० स० १०३६ = ई० सन् ९८०) कार्तिक शुक्ला ८ शुक्रवार के दिन अपने पिता का वैर लेने वाले मूलराज के हाथ से वह मारा[13] गया। इस लडाई में १५०० समा (जडेया), सोलकी और १९०० चावडे राजपूत राज्य की रक्षा के लिये लडकर काम आए"।

---

12 दोहा—शाके सात सातो तरे, (शुद्ध) सातम श्रावण मास।
मो वल लाखो जनमियो, सूरज जोत प्रकाश ॥१॥
छप्पय-शाके नव एक में, मास कार्तिक निरन्तर।
पिता वैर छल ग्रहे, साहड दाखे अत अधर ॥१॥
पडे समा मो पनर पडे सोलकी सो खट।
सो ओगणिस चावडा, मुवाराज रक्षवट ॥
पातले गाव वी मगल गई, हाथमल सेल सिहना आशरे।
आठ में पक्ष शुक्र चाँदणे, मूलराज हाथ लाखो मरे ॥
(राजमल गुजराती—जिल्द १ पृ० ८९)

ऊपर के दोहे मे जो शक सवत् ७७७ वि० स० ९१२ मे लाखा का जन्म होना लिखा है वह सशय—युक्त है, क्योकि इस हिसाब से उसका १२४ वर्ष की अवस्था में मारा जाना सिद्ध होता है, और ऐसी वृद्धावस्था मे लडकर मारे जाने के उदाहरण वहुत ही कम मिलेंगे।

13 मूलराज ने लाखा फूलाणी को मारा जिसका कारण गुजरात के भाट लोग ऐसा प्रकट करते है कि—"किसी समय मूलराज का पिता राजा सोलकी द्वारिका यात्रा से लौटता हुआ लाखा के दरवार में गया, और वहाँ पर लाखा की वहिन रायाजी से उसका विवाह हुआ, जिससे रखायच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर किसी कारण से विवाद हो जाने पर राजा सोलकी लाखा के हाथ मे मारा गया, जिसका वैर लैने की इच्छा से मूलराज ने कच्छ पर चढाई कर लाखा को मारा"। परन्तु उनकी यह कथा भी विश्वास योग्य नही है, क्योकि यदि ऐसा हुआ होता तो उसका चवूतरा (जहाँ वह मारा गया) कच्छ में होना चाहिए था, परन्तु वह सोरठ में आट कोट के पास वना हुआ है, जिससे यही पाया जाता है, कि वह सोरठ के राजा ग्राहरिपु की मदद पर चढ कर वह वही मारा गया, जैसा कि हेमचन्द्र सूरि ने लिखा है।

(उ) कच्छ भाषा की प्राचीन कविता में ऐसा लिखा मिलता है कि[14]-- "लाखा फूलाणी ने आकर अभिमान किया, परन्तु लड़ाई में मूलराज के हाथ की साग लगने से मारा गया" ।

इन प्रमाणो से स्पष्ट है कि, लाखा फूलाणी राठोड सियाजी के हाथ से नहीं, किन्तु मूलराज के हाथ से मारा गया था और कर्नल टॉड ने तथा इतिहास राजस्थान के कर्त्ता ने इस विषय में जो कुछ लिखा है वह ठीक नही है[15] । ऐसे ही मूलराज सोलकी की पुत्री से सियाजी का विवाह

---

14 अची फूलाणी, फरोस्थो, रारो मडाणू ।
मूलराज साग उग्वती, लखी मराणू ॥

15 कर्नल टॉड ने ई० सन् ९३१ (वि० स० ९८७) में और फार्वस साहिब ने ई सन् ९४२ (वि० स० ९९८) में मूलराज का राज्य पाना निश्चय किया है और पिछले लेखो में टॉड साहिब के दिये हुए समय को स्वीकार न कर फार्वस साहिब का निश्चय किया हुआ सवत् ही उद्धृत किया है (गुजरात राजस्थान पृ० ३, इण्डियन एटिक्वेरी जिल्द ६, पृ० २१३)। परन्तु फार्वस साहिब का निर्णय किया हुआ सवत् सही नही माना जा सकता क्योकि उक्त साहिब ने यह भी लिखा है कि "ई० सन् ९३५ (वि० स० ९९१) में चावडा वश का अन्तिम राजा सामन्त सिंह अनहिलवाडा की गद्दी पर वैठा । उसके समय में सोलकी वश के राज, बीज और दण्डक नामी तीन भाई सोमनाथ की यात्रा से लौटते हुए उसके दरबार में आये, उनमें से राज की वीरता पर प्रसन्न होकर उसने अपनी वहिन लीलादेवी का विवाह उसके साथ कर दिया जिसके गर्भ से मूलराज उत्पन्न हुआ, जो अपने मामा के पास ही रहा और ई० सन् ९४२ (वि० ९९८) में उसने अपने मामा को मारकर उसका राज्य छीन लिया । विचार का स्थान है कि सामन्त सिंह के मारे जाने के समय फॉर्बस साहब के हिसाब से मूलराज की अवस्था अधिक से अधिक पाँच या छ वर्ष की हो सकती है तो ऐसी अवस्था में उसका एक राजा को मारकर राज्य छीन लेना कैसे सभव हो सकता है ? अत मेरूतुङ्गसूरि ने जो अपने रचे हुए 'विचार श्रेणी' नामक पुस्तक में मूलराज को अनहिलवाडा की गद्दी पर वि० स० १०१७ में बैठना लिखा है वह ठीक माना जा सकता है, क्योंकि उस समय मूलराज की अवस्था वीस वर्ष के करीब होना सभव है। इसी तरह उक्त सूरि ने अपने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' नामक ग्रथ में चावडा वश के अन्तिम राजा सामन्तसिह (भूयगडदेव)

होना इतिहास राजस्थान में लिखा है वह भी निर्मूल है । क्योंकि सियाजी के राज्य का प्रारम्भ वि० स० १३०० (ई० सन् १२४३) के आस-पास और मूलराज सोलंकी का राज्याभिषेक सवत् १०१७ (ई० सन् ९६१) में हुआ था । इसलिये सियाजी का मूलराज के समय में विद्यमान होना कैसे सम्भव हो सकता है । †

(मासिक ममालोचक, जयपुर, जनवरी-फरवरी १९०४, भाग २, सख्या १७-१२, पृ० २१८-२२५)

का वि० स० ९९० पोप शुदि १ को गद्दी पर वैठना और २७ वर्ष राज्य करना लिखा है उससे भी मूलराज का वि० स० १०१७ में राज्य पाना सिद्ध होता है और यही सवत् शुद्ध मानने योग्य है *।

---

* साभर के उमरशाह नामक कुए मे मिले हुए सोलकी राजाओ के शिलालेख से गुजरात के सोलकी राजा मूलराज प्रथम का वि० स० ९९८ (ई० स० ९४१) में अनहिलवाडे का स्वामी होना स्पष्ट है । अतएव चावडा वश के अतिम राजा सामर्तासह (भूयगडदेव) का राज्य काल सात-आठ वर्ष से अधिक नही मानना पडेगा । सभव है कि विचार श्रेणी और प्रवन्ध चिन्तामणि के कर्त्ता मेरूतुङ्ग द्वारा मूलराज के राज्य प्राप्ति का सवत् और चावडा राजा सामर्तसिह का राज्य-काल लिखने में भूलें हुई हो ।

यहां गुजरात राजस्थान के कर्त्ता मि० फॉर्वस का दिया हुआ मूलराज के राज्य प्राप्ति का समय प्रामाणिक ठहरता है, जिसका मूल आधार 'कुमारपाल प्रवन्ध' हो, जिसमें मूलराज प्रथम का वि० म० ९९८ (ई० स० ९४१) में राज्य पाने का उल्लेख है। आगे जाकर श्री० ओझाजी ने 'गुजरात से मिले हुए प्रतिहारो तथा राजपूताना से मिल हुए सोलकियो के दानपत्र और शिलालेख' शीर्षक लेख में मूलराज के राज्य प्राप्ति का यही समय ठीक मानकर उपरोक्त अनुमान को वदल दिया है।

† कर्नल टॉड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रथ एनाल्स एड एटिक्वीटीज आँफ राजस्थान की रचना की थी, उस समय पुरातत्वानुसधान का कार्य आरभ ही हुआ था और प्राचीन इतिहास सवधी सामग्री प्राप्ति के साधन सुलभ नही थे । इसलिए उन्हें ख्यातें जनश्रुतियो आदि को भी ग्रहण करना पडा। फलत उनके राजस्थान में ऐसी कितनी ही भूलें है, जिनको समय २

पर विद्वानों ने दृष्टिगोचर कराया है। इनमें श्री० ओझाजी भी हैं, जिन्होंने टॉड के भ्रमपूरित लेखो पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला है।

इस लेख में श्री० ओझाजी ने कर्नल टॉड के इस कथन 'लाखा फूलाणी' जोधपुर के वर्तमान राठोड राज्य के संस्थापक राव सीहा द्वारा मारा गया और श्री० रामनाथ रत्नु के "इतिहास राजस्थान" के इस वर्णन 'गुजरात के सोलंकी नरेश मूलराज (प्रथम) की पुत्री का विवाह राठोड राव सीहा से हुआ' पर प्रकाश डालते हुए दोनो के कथनो को भ्रमपूरित सिद्ध किया है।

वस्तुतः लाखा फूलाणी गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम, वि० स० ६६८–१०५१ = ६४१ ६६४) द्वारा मारा गया, यह प्रमाणोक्त है। राव सीहा, लाखा फूलाणी और मूलराज के तीन सौ वर्ष पीछे हुआ था। उस (राव सीहा) का स्मारक लेख भी मिल गया है, जिसमे उसका वि० स० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स १२७३ तारीख ६ अक्टोबर) सोमवार को परलोकवास•होने का उल्लेख है।

जोधपुर के राठोड नरेश तथा उनके वशधर अन्य राठोड नरेशो की ख्यातो मे लाखा फूलाणी का राठोड रावसीहा द्वारा मारे जाने, एवं सोलंकी नरेश की मूलराज की पुत्री का विवाह होने का उल्लेख अवश्य है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिए ख्यातो का कथन प्राय कल्पित ही ठहरता है। वास्तव में ख्यातो का लेखन काल अधिक प्राचीन नही है और वे सुनी-सुनाई वातो को जोडकर निर्मित की गई है।

अब तो यह विषय विवाद ग्रस्त है ही नही, क्योकि जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् महा महोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने कई वर्ष पूर्व 'भारत के प्राचीन राजवश' तृतीय भाग, पृ० १२० में इन दोनो भ्रमपूरित बातो को ठीक नही माना है।

(सं० टि०)

प्रकरण तीसरा

मूर्तिकला

१—राजपूताना में शिव-मूर्तियां

एकेश्वरवादी होने के कारण वैदिकधर्मावलम्बी भारतवासी अत्यन्त प्राचीन काल से एक ही ईश्वर को सृष्टि का उत्पादक, पालक एव सहारक मानते आ रहे है। ईश्वर के भिन्न-भिन्न कार्यो के अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नामो की कल्पना की गयी, परन्तु ये सब नाम एक ही ईश्वर के द्योतक है। ईश्वर द्वारा जगत् की उत्पत्ति, पालन और सहार होने से उसके क्रमश ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) नाम रक्खे गये। पहले ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की उपासना होती थी, पीछे उसकी भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियां बनने लगीं। मूर्तियों की कल्पना में मनुष्य की बुद्धि अपने से अधिक सुन्दर वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती थी, तो भी देव मूर्तियो की कल्पना करते समय मनुष्य को अपनी अपेक्षा कुछ विशेषता प्रदर्शित करने की आवश्यकता जान पडी। देव-प्रतिमाओ की कल्पना में शरीर की आकृति तो मनुष्य जैसी ही मानी गयी, परन्तु कहीं-कहीं हाथो और मुखो की सख्या बढा कर उनमें विशेषता उत्पन्न की गयी।

भारतवर्ष के जल वायु में हजारो वर्ष पूर्व के मन्दिरो अथवा मूर्तियो का अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहां अत्यन्त प्राचीन कालकी मूर्तियां उपलब्ध नहीं होतीं। ऐसी दशा में यह स्पष्टरूप से नहीं जान पडता कि प्रारम्भ में मूर्तियां द्विभुज बनायी जाती थीं अथवा चतुर्भुज। अब तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओ की जो मूर्तिया मिली है उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव चतुर्भुज है। सूर्य की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ द्विभुज है। अजमेर के राजपूताना-म्यूजियम' में सूर्य की दस से अधिक प्राचीन मूर्तियाँ है। उनमें केवल एक चार भुजाओ से युक्त एव सात घोडो के रथ में विराजमान है, परन्तु यह दो सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। शेष भी द्विभुज है। इसी प्रकार आरम्भ में शिव प्रतिमा द्विभुज और एकमुखी बनायी जाती रही हो, यह असम्भव नही है। ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी के आसपास के कई सिक्को पर स्कन्द, विशाख और महासेन की मूर्तियां बनी हुई है, जो द्विभुज और एक सिर वाली है। उसी शताब्दी के कुषाणवशी राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के कतिपय सिक्को पर शिवजी की द्विभुज और एक सिर वाली मूर्ति अङ्कित है। उनमें शिव अपने वाहन नन्दी के समीप हाथ

में त्रिशूल लिये खड़े हैं। मूर्ति के नीचे प्राचीन यावनी (ग्रीक) लिपि में 'आइशो' (Oeshio) अर्थात् ईशो—ईश = शिव लिखा है। इन मूर्तियों से हम यह मान सकते हैं कि पहले शिव की मूर्ति द्विभुज एक सिर वाली रही हो; परन्तु उसी समय के कुछ सिक्कों पर शिव की ऐसी भी मूर्तियाँ हैं, जिनके एक मुख है और चार हाथ हैं और हाथों में माला, वज्र, त्रिशूल और पात्र दीख पड़ते हैं। इनसे जान पड़ता है कि शिव के चार हाथों की कल्पना भी नवीन नहीं, किन्तु उतनी ही प्राचीन है। भारतवर्ष में ईस्वी सन् की पाँचवीं शताब्दी के पूर्व की कोई हाथ पैर वाली पाषाण-निर्मित शिव-प्रतिमा अब तक देखने में नहीं आयी।

राजपूताने में शिव-पूजा बहुत प्राचीन काल से चली आती है और वहाँ कई प्रकार की शिव-मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें से बहुत-सी मूर्तियाँ तो गोलाकार लिङ्ग के रूप में जलहरी (जलाधारी) के मध्य में स्थापित हैं। सम्भवतः वे शिव के 'स्थाणु' नाम की सूचक हों। राजपूताना में कई जगह राजाओं, सरदारों आदि की स्मारक छतरियों तथा साधुओं की समाधियों के मध्य में भी ऐसे लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

बहुत सी मूर्तियों में ऊपर के भाग में थोड़ा-सा बाहर निकला हुआ वृत्ताकार शिव लिङ्ग और उसके चारों ओर जटाजूट सहित चार सिर होते हैं। कोटाराज्यान्तर्गत चार चोमा के प्राचीन शिवालय में, मेवाड़ में एकलिङ्गजी के प्रसिद्ध मन्दिर में तथा अन्यत्र भी ऐसी अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

उपर्युक्त लिङ्ग का वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्ड का द्योतक माना जाता है और चार मुखों में से पूर्व-मुख सूर्य का, उत्तर-मुख ब्रह्माजी का, पश्चिम-मुख श्रीविष्णु का और दक्षिण-मुख रुद्र (शिव) का सूचक होता है। जिन मन्दिरों में प्राचीन पद्धति के अनुसार शिवार्चन होता है, वहाँ उन मुखों में उन्हीं देवताओं की कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है और विष्णु सूचक मुख की पूजा के समय उस पर तुलसी भी चढ़ायी जाती है।

भरतपुर-राज्य के कामाँ (कामवन) नामक ग्राम से मिला हुआ एक चतुरस्र शिवलिङ्ग राजपूताना-म्युजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसके ऊपर का एक इंच ऊँचा गोल भाग लिङ्ग (ब्रह्माण्ड) का सूचक है। शिव भक्त उसे शिव का पाँचवाँ मुख मानते हैं। उसमें नीचे के चारों भागों में मुखों के स्थान पर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पूर्व में सूर्य की आसीन मूर्ति है, जिसके नीचे सात घोड़े और हाथ में उनकी रास लिए सूर्य का सारथि अरुण दीख पड़ता है। उत्तर की

ओर दाढी वाले ब्रह्मा की चतुर्मुख (चोथा मुख अदृश्य है) मूर्ति है, पश्चिम की ओर गरुडासीन विष्णु और दक्षिण की ओर नन्दी सहित शिव की मूर्ति है। पचमुखी शिव की मूर्तियो में चारो दिशाओ के मुख इन्ही चार देवताओ के सूचक होने से यही जान पडता है कि ये चारो देवता एक ही ईश्वर के ब्रह्माण्ड स्थित रूप है। कामाँ से एक वडा शिवलिङ्ग मिला है, जिसके ऊपर का एक इच वाहर निकला हुआ वृत्ताकार भाग शिव के पाचवें मुख (ब्रह्माण्ड) का प्रदर्शक है। उसके नीचे चारो ओर साधारण शिवलिङ्गो के समान जटा-जूट सहित चार मुख है। पूर्व के मुख के नीचे घुटनो तक लम्बे वूट पहने हुए सूर्य की द्विभुज मूर्ति और उत्तर की ओर दाढी वाले ब्रह्माजी की चतुर्मुख, पश्चिम में विष्णु की चतुर्भुज एव दक्षिण में नन्दी सहित रुद्र की चतुर्भुज मूर्तियाँ है। ये चारो मूर्तियाँ ढाई-ढाई फीट ऊँची और खडी हुई है इस शिव-लिङ्ग को देखने से यह निश्चय होता है कि इसके चारो दिशाओ के चारो मुख क्रमश सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के द्योतक है।

ईस्वी सन् की दूसरी शताब्दी क कुषाणवशी राजाओ के कुछ सिक्को पर नन्दी के पास खडी हुई द्विभुज, परन्तु चार मुख वाली (चौथा मुख अदृश्य है) शिव की मूर्ति वनी है, जो ऊपर की कल्पना को पुष्ट करती है। इस प्रकार शिव के पाच मुख माने जाने के कारण वे 'पचानन', 'पचमुख', 'पचास्य' अथवा 'पचवक्त्र' आदि नामो से प्रसिद्ध है।

जोधपुर-राज्य के गोडवाड प्रान्त में सादडी गाँव से कुछ दूर राणपुर का सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर है। उसके निकट ही एक प्राचीन सूर्य मन्दिर है, जिसके गर्भगृह में सूर्य की मूर्ति है और उसके वाहर की ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी मूर्तियाँ वनी हुई है, जिनमें कमर से नीचे का भाग सूर्य का और ऊपर का भाग ब्रह्मा आदि देवताओ का है। ये सारी मूर्तियाँ ७ घोडे वाले रथ में वैठी हुई है, उन्हें देखकर यही अनुमान हो सकता है कि ये सव देवता एक ही ईश्वर के पृथक-पृथक नाम के सूचक है। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ देखने में आयी है, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य का सम्मिश्रण है। उनके हाथो में धरे हुए भिन्न-भिन्न आयुधो से उनके स्वरूप का निश्चय होता है।

राजपूताना-म्यूजियम में रक्खी हुई एक विशाल शिला पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सुन्दर मूर्तियाँ---उनके वाहन सहित---वनी हुई है। ब्रह्माजी की प्राचीन मूर्तियो के ऊपर के एक किनारे पर विष्णु आर दूसरे पर शिव की छोटी-छोटी मूर्तियाँ रहती है। इसी तरह विष्णु की मूर्ति के किनारो पर

ब्रह्मा और शिव की, तथा शिव की मूर्ति के दोनो ऊपरी पार्श्वों पर ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियां होती हैं। ये सब एक ही ईश्वर के इन तीन रूपो को सूचित करती हैं। उनके रूप भी अलग-अलग माने गये हैं। राजपूताना-म्यूजियम में एक सुविशाल प्राचीन शिवलिङ्ग है, जिस पर ब्रह्मा नीचे (पाताल) से ऊपर (ब्रह्माण्ड में) जाते हुए प्रदर्शित किये गये हैं और एक-एक के ऊपर दो-दो मूर्तियां दीख पडती हैं। दूसरी तरफ विष्णु नीचा मुख किये हुए ऊपर से नीचे आ रहे हैं। विष्णु को भी एक-एक के नीचे दो-दो मूर्तियां बनी हुई हैं। ये मूर्तियां अनन्त ब्रह्माण्ड रूप शिवलिङ्ग की थाह लेने के लिये ब्रह्मा का ऊपर की तरफ और विष्णु का नीचे की ओर जाना सूचित करती हैं। इससे हम यह मान सकते हैं कि शिवलिङ्ग की कल्पना वस्तुत अनन्त ब्रह्माण्ड की सूचक है।

जिस समय इन देवताओ की मूर्तियो की कल्पना हुई, उस समय इनकी पत्नियो की कल्पना का होना भी स्वभाविक ही था। शिव की पत्नी शिवा, उमा, पार्वती, गौरी, दुर्गा, कालो आदि नामो से प्रसिद्ध हुई। राजपूताने में ऐसी बहुत-सी मुर्तियां मिलती हैं। जिनमें शिव नन्दी के ऊपर बैठे हुए हैं और उनकी बायीं जङ्घा पर पार्वतीजी बैठी है। इस प्रकार की तीन मूर्तियां राजपूताना-म्यूजियम में विद्यमान हैं। कहीं-कहीं शिव और पार्वती की नन्दी के निकट खडी हुई मूर्तिया भी मिलती हैं। शिव पार्वती के विवाह के दृश्य भी प्रस्तराङ्कित हुए हैं। इनमें आमने-सामने खडे हुए शिव-पार्वती ऊपरी भाग में विवाह में सम्मिलित होने को आये हुए इन्द्र आदि देवता और मध्य में अग्नि के सामने विवाह कार्य सम्पादित करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा प्रदर्शित हैं। ऐसे दो नमूने राज-पूताना म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

जब शिव पत्नी की कल्पना हुई, तब शिव और पार्वती दोनो का मिल-कर एक शरीर भी माना जाने लगा—दाहिना भाग शिव का और बायाँ एक स्तनसहित पार्वती का। ऐसी मूर्तियां 'अर्द्धनारीश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें शिव के साथ नन्दी और पार्वती के साथ उनका वाहन सिंह दिखलाया जाता है। यह कल्पना भी प्राचीन है। क्योंकि संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट के पुत्र पुलिनभट्ट ने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में अर्द्धनारीश्वर की स्तुति की है।* कहीं-कहीं शिव की विशालकाय तीन

---

* देहद्वयार्धघटनारचितं शरीर-
मेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्धयै
सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ॥

मुख वाली मूर्ति (त्रिमूर्ति, महेश्वर) भी पायी जाती है। उसके छ हाथ, जटायुक्त तीन सिर और तीन मुख होते है, जिनमें से रोता हुआ एक मुख शिव के रुद्र नाम को चरितार्थ करता है। मध्य के दो हाथो में से एक में विजौरा और दूसरे में माला, दाहिनी ओर के दो हाथो में से एक में सर्प और दूसरे में खप्पर और बायीं ओर के हाथो में से एक में पतले दण्ड-सी कोई वस्तु और दूसरे में ढाल या काच की आकृति का कोई छोटा सा गोल पदार्थ होता है। त्रिमूर्ति वेदी के ऊपर दीवार से सटी रहती है और उसमें वक्ष स्थल से कुछ नीचे तक का ही भाग होता है। त्रिमूर्ति के सामने भूमि पर वहुधा शिवलिङ्ग होता है। ऐसी त्रिमूर्तियाँ चित्तौड के किले तथा सिरोही-राज्य के कई स्थानो में देखने में आयी है। शिव 'नटराज' कहलाते है और उनकी ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्तियाँ भी राजपूताना के कई स्थानो में देखने में आयी है।

इस प्रकार शिव की भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ राजपूताने में मिलती है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार शिव भक्त किसी न किसी रूप में अपनें उपास्य की पूजा करते है।

जिस प्रकार बौद्धो ने २४ अतीत बुद्ध, २४ वर्तमान बुद्ध एव २४ भावी बुद्ध की और जैनो ने २४ तीर्थंङ्करो की तथा वैष्णवो ने २४ अवतारो की कल्पना की, उसी तरह शिव के उपासको ने भी शिव के कई अवतारो की कल्पना की, परन्तु उन सब अवतारो की मूर्तियाँ नहीं मिलतीं। राजपूताना में शिव के लकुलीश (नकुलीश, लकुटीश) अवतार की मूर्तियाँ बहुत मिलती है। विश्वकर्मावतारवास्तुशास्त्रम्' नामक ग्रन्थ में लकुलीश-मूर्ति के वर्णन में लिखा है।

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ् पद्मासनसुसस्थितम्।
दक्षिणे मातुलिङ्ग च वामे दण्ड प्रकीर्तितम्॥

'लकुलीश की मूर्ति ऊर्ध्वमेढ्र (ऊर्ध्वलिङ्गी) पद्मासन स्थित, दाहिने हाथ में बिजौरा और बायें हाथ में दण्ड (लकुट) लिये होती है। लकुलीश के मन्दिर कई जगह मिलते है। लकुलीश-सम्बन्धी देवालयो में उदयपुर-राज्य में एकलिङ्गजी के मन्दिर के पास वि० स० १०२८ का बना हुआ और कोटा-राज्य के प्रसिद्ध कवालजी (कपालेश्वर-मन्दिर) से अनुमान एक मील पर जयपुर की सीमा में आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मन्दिर मेरे देखने में आया। इस सम्प्रदाय के मानने वाले पाशुपत शैव कनफटे साधु होते थे। लकुलीश का अवतार कब हुआ, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु मथुरा से मिले हुए गुप्त सवत् ६१ (वि० स० ४३७ = ई० स० ३८०)

के लेख से पाया जाता है कि लकुलीश के शिष्य कुशिक की परम्परा में ११वाँ आचार्य उदिताचार्य उक्त संवत् में विद्यमान था, अतः लकुलीश का प्रादुर्भाव ई० स० की दूसरी सदी के अन्त के आसपास होना अनुमान किया जा सकता है।

लकुलीश का प्राकट्य स्थान कायावरोहण, (कायारोहण कारवान, बडौदा राज्य मे) माना गया है। उनके चार शिष्यो के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिंगपुराण २४।१३१) मिलते हैं। एकलिंगजी तथा राजपूताने के अन्य मन्दिरो के मठाधीश कुशिक के शिष्य-परम्परा में थे। ये साधु कान फडवाते, सिर पर जटाजूट रखते और शरीर पर भस्म लगाते थे। ये विवाह नहीं करते थे, किन्तु ये चेले मूडते थे।

राजपूताना के शिव भक्त राजा अपने इष्टदेव शिव के बडे-बडे मन्दिर बनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे। ये मठ बहुधा लकुलीश-सम्प्रदाय के कनफटे साधुओ के अधिकार में होते थे। वे लोग राजाओ के गुरु माने जाते थे। एकलिंगजी तथा मेनाल (मेवाड) आदि के मठाधीश भी यही लोग थे। इन मन्दिरों के द्वार पर लकुलीश मूर्ति रहती है। इन मन्दिरो और मठो के निर्वाह के लिए बडी-बडी जागीरें दी जाती थी। वर्तमान काल के 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदाय से निकले हुए है, परन्तु अब वे लोग लकुलीश का नाम तक नहीं जानते।°

२—चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ

कीर्तिस्तम्भ किसी घटना की कीर्ति को चिरस्थाई बनाने के लिये बनाये जाते है। जैसे दिल्ली से तेरह मिल दूर महरोली गांव में कुतुबुद्दीन ऐबक की प्रसिद्ध कुतुब की लाट है, वैसे ही चित्तौड के किले पर महाराणा कुभा (कुभकर्ण) का बनाया हुआ प्रसिद्ध कीर्तिस्तभ भारत भर में हिन्दु जाति की कीर्ति का एक मात्र अलौकिक स्तम्भ है। महाराणा कुंभकर्ण मेवाड़ के सीसोदिया राजाओ में सबसे पहला प्रबल राजा हुआ। उसने अपनी वीरता से दिल्ली और गुजरात के सुलतानो का कितना ही प्रदेश अपने आधीन किया, जिस पर उन्होंने 'हिन्दु सुल्तान[1]' का खिताब

° 'कल्याण' के 'शिवांक' से प्रतिमुद्रित।

1 विषमतमाभग सारगपुर-नागपुरगागरणनराणक अयजमेरु मडोरमडल कर बूंदीरवाटूचाटसूजनादिनानामहादुर्गलीलामात्र ग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य · · 'म्लेच्छ महीपालव्यालचक्रवाल विदलनविहगमेंद्र-

देकर उसे हिन्दू बादशाह स्वीकार किया। उसने कई वार गुजरात के सुलतानों को हराया, नागौर को विजय किया। गुजरात और मालवे के सम्मिलित सैन्य को पराजित किया और राजपूताने का अधिक अश एव माडू, गुजरात और दिल्ली के राज्यो का कुछ अश छीन कर मेवाड को महाराज्य बना दिया। जैसा वह वीर एव विजयी था, वैसा ही वह विद्यानुरागी भी था। प्राचीन शिलालेखो से पाया जाता है कि वह विद्याव्यसनी, विद्वानो का सम्मानकर्ता, साहित्यप्रेमी, सगीत का आचार्य, नाटचकला में कुशल, कवियो का शिरोमणि, अनेक ग्रथो का रचयिता, वेद, स्मृति, दर्शन, उपनिपद और व्याकरण आदि का विद्वान सस्कृतादि भाषाओ का ज्ञाता[1] था। उसे शिल्प से भी बहुत अनुराग था, जिनमें से मुख्य और उल्लेखनीय चितौड का गढ़ और वहाँ की रथ पद्धति (सडक), वहाँ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ, कुभ स्वामी का मन्दिर, एकलिङ्गजी का मन्दिर और उससे पूर्व का कुभमण्डप, कुभलगढ का दुर्ग, वहाँ का कुभस्वामी का देवालय, आबू पर अचलगढ का किला तथा कुभ स्वामी का मन्दिर आदि अब तक विद्यमान हैं। यदि इन सबका वर्णन किया जावे तो एक पुस्तक वन जावे। हम आज 'मनोरमा' के पाठको के मनोरजन के लिए उनमें से केवल कीर्ति स्तम्भ का ही यहाँ वर्णन करते है।

महाराणा कुभा के पिता मोकल को, चाचा व मेरा नामक पुरुषो ने

स्य 'प्रबलपराक्रमाक्रान्त ढिल्लीमडलगुर्जरत्रा सुरत्राणदत्ततपत्रप्रथितहिन्दुसुरत्राण विरुदस्य'' ' राणा श्री कुभकर्ण सर्वोर्वीपति सार्वभौमस्य ।

राणपुर के जैनमदिर का शिलालेख, एन्युअल् रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इडिया, ई० स० १९०८ पृ० २१४ ।

1 वेदा यन्मौलिरत्न स्मृतिविहितमत सर्वदा कठ भूपा
मीमासे कुडलेद्वेहृदि भरतमुनिव्याहृत हारवल्ली।
सर्वांगीण प्रकृष्ट कवचमपि परेराजनीति प्रयोगा
सार्वज्ञ्यविभ्र दुच्चैरगणितगुणभूर्भाति कुँभभूप ॥१७२॥
अष्टव्याकरणी (?) विकाम्युपनिपतस्पष्टाष्ट्दष्टोत्कट
पट्तर्क्की (?) विकटोक्तिमुक्ति विसरत्प्रस्फार गुजारव ।
सिद्धान्तोद्धतकान नैक वसति साहित्यभूक्रीडनो'
गर्ज 'दिगुणान्विदार्य प्रज्ञास्फुरत्केसरी ॥१७३॥
(एकलिग महात्म्य, राजवर्णन अ०याय)

हत्या की थी, उसमें महपा (महीपाल) पवार भी शामिल था। कुंभा ने राज्य सिंहासन पर आरूढ होते ही चाचा व मेरा पर सैन्य भेजकर उन्हें मरवा डाला, परन्तु महपा पवार वहाँ से भाग कर मांडू के सुलतान महमूद खिल्जी (प्रथम) की शरण में चला गया। महाराणा ने सुलतान को महपा को सुपुर्द कर देने के लिए लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किस तरह सौंप सकता हूँ ? यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा हो तो मैं भी तैयार हूँ। यह उत्तर पाकर महाराणा ने मालवे पर चढाई करदी। इस चढ़ाई में महाराणा की सेना में १,००,००० सवार और १,४०० हाथी थे। इधर से सुल्तान भी लडने को चला। वि० स० १४६४ (ई० स० १४३७) में सारगपुर के पास दोनो सेनाओ का मुक़ाबला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हार कर माडू को भाग गया। कुभकर्ण ने सारगपुर में असख्य मुसलमान स्त्रियो को कैद किया। महमूद का महामद छडवाया, उस नगर को जलाया और मालव सैन्य का सहार किया[1]। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने चितौड पर यह विशाल कीर्तिस्तम्भ बनाया। यह कीर्तिस्तम्भ चितौडगढ पर के प्रसिद्ध गोमुख नामक जलाशय के तट स्थित समाधीश्वर के मन्दिर से कुछ ही दूर अनुमानत १२ फुट ऊची, ४२ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी वेदी पर खड़ा हुआ है। यह आकृति में चौकोर है और इसके प्रत्येक पार्श्व की लम्बाई ३५ फुट है। इसमें कुल नौ मजिल है और सात मजिलो के चारो ओर एक-एक झरोखा बना हुआ है, जिससे स्तम्भ के भीतर पर्याप्त प्रकाश रहता है। मध्य का भाग (गर्भभाग) कुतुबमिनार की भाति गोल नहीं है, किन्तु चतुरस्र है और अन्दर स्थान भी इतना पर्याप्त है कि प्रत्येक मजिल में ३०–४० आदमी खडे रहकर भीतर की मूर्तियां आदि का निरक्षण कर सकते हैं। प्रत्येक मजिल के अनुमानत. तीन चतुर्थांश भाग में परिक्रमा है, जिसके अत से ऊपर की मजिल में जाने के लिए बहुधा सीढिया बनी

---

1 त्यत्का दीनादीनदीनाधिनाथा दीना बद्धा येन सारंगपुर्यां।
योषा प्रौढाः पारसीकाधिपाना ता सख्यातु नैव शक्नोतिकोपी ॥२६८॥
महोमदो युक्ततरोन चैषः स्वस्वामिघातेन घनार्जनरवे ।
इतीव सारगपुर विलोड्य महमद त्याजितवान्महमद ॥२६९॥
एतद्दग्धपुरान्तिवाडवमसौ यन्मालवाभोनिधि ।
क्षोणीश पिबति स्मखड्ग चुलुकस्तस्मादगस्त्य स्फुट ॥२७०॥
(कुंभलगढ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

ग पर एक गुबज बना हुआ है, जहाँ का प्रत्येक
है। वेदी के ऊपर के भाग से गुबज तक की ऊचाई
स्तम्भ पर क्या वाहर, क्या भीतर सर्वत्र सुन्दर खुदाई
ी हुई हैं।

गाभिमुख है। द्वार में प्रवेश करते ही सामने जनार्दन
र होती है। वहा से दो सीढी चढ कर प्रथम मजिल
पर क्रमश. अनत, रुद्र और ब्रह्मा की मूर्तिया तीनो
को में वनी है। ब्रह्मा के निकट से दूसरे मजिल
ानी है। दूसरी मजिल की तीनो पार्श्वों के मध्य की
ा शरीर विष्णु का और आधा शिवका), अर्द्धनारीश्वर
ौर आधा पार्वती का) और हरिहरपितामह (विष्णु,
ेवताओ की सम्मिलित एक मूर्ति) की मूर्तियाँ मुख्य
रिक्त स्थानो में क्रमश अग्नि, यम, भैरव, वरुण
ः इन्द्र इन दिक्पालो की मूर्तिया बनाई गई है।
ाश्वों के मुख्य ताको में विरचि, जयन्त, नारायण
ी मुख्य मूर्तिया है। चौथी मजिल नीचे लिखी हुई
-त्रिखण्डा, तोत्तला, त्रिपुरालक्ष्मी, नन्दा क्षेमकरी,
ी, सर्वमगला, रेवती, हरिसिद्धि, लीला, सुलीला,
ती, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगुलाज श्री ,
ासत, शिशिर, हेमत, शरद, वर्षा और ग्रीष्म,
ेर सरस्वती नदियाँ तथा गधर्व, विश्वकर्मा और
है। पाचवी मजिल के तीनो पार्श्वों के मध्य की
ायण, उमा महेश्वर और ब्रह्मा-सावित्री की युगल
रिक्त स्थानो में परशु, त्रिशूल, खड्ग शक्ति,
ाल, भिल्ल, चक्र, शार्ङ्गधर, हल, भिंडि, डण्ड,
र्त्तरी, छुरिका, करवाल, फरिका, फलक, शकु,
ादृश, अर्गला, फारिका, मृणाल, डमरू, कमल,
ामक शस्त्रो की मूर्तिया वनी है। इनके नीचे मूर्तियो
जसमें रुद्रलिंग (शिवलिंग), कर्पुरमजरी, शय्या,

ा का अश जाता रहा है, उनके स्थान में चिन्ह

हत्या की थी, उसमें महपा (महीपाल) पंवार भी शामिल था। कुंभा ने राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होते ही चाचा व मेरा पर सैन्य भेजकर उन्हें मरवा डाला, परन्तु महपा पवार वहाँ से भाग कर माडू के सुलतान महमूद खिल्जी (प्रथम) की शरण में चला गया। महाराणा ने सुलतान को महपा को सुपुर्द कर देने के लिए लिखा, जिसका उसने यह उत्तर दिया कि मैं अपने शरणागत को किस तरह सौंप सकता हूँ? यदि आपकी युद्ध करने की इच्छा हो तो मैं भी तैयार हूँ। यह उत्तर पाकर महाराणा ने मालवे पर चढ़ाई करदी। इस चढाई में महाराणा की सेना में १,००,००० सवार और १,४०० हाथी थे। इधर से सुल्तान भी लडने को चला। वि० स० १४६४ (ई० स० १४३७) में सारगपुर के पास दोनो सेनाओ का मुक़ाबला होकर घोर युद्ध हुआ, जिसमें महमूद हार कर माडू को भाग गया। कुभकर्ण ने सारगपुर में असंख्य मुसलमान स्त्रियो को कैद किया। महमूद का महामद छुडवाया, उस नगर को जलाया और मालव सैन्य का सहार किया[1]। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने चित्तौड पर यह विशाल कीर्तिस्तम्भ बनाया। यह कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़गढ पर के प्रसिद्ध गोमुख नामक जलाशय के तट स्थित समाधीश्वर के मन्दिर से कुछ ही दूर अनुमानत १२ फुट ऊची, ४२ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी वेदी पर खड़ा हुआ है। यह आकृति में चौकोर है और इसके प्रत्येक पार्श्व की लम्बाई ३५ फुट है। इसमें कुल नौ मजिल है और सात मजिलो के चारो ओर एक-एक झरोखा बना हुआ है, जिससे स्तम्भ के भीतर पर्याप्त प्रकाश रहता है। मध्य का भाग (गर्भभाग) कुतुबमिनार की भाति गोल नहीं है, किन्तु चतुरस्र है और अन्दर स्थान भी इतना पर्याप्त है कि प्रत्येक मजिल में ३०-४० आदमी खडे रहकर भीतर की मूर्तियां आदि का निरक्षण कर सकते है। प्रत्येक मजिल के अनुमानत तीन चतुर्थांश भाग में परिक्रमा है, जिसके अत से ऊपर की मजिल में जाने के लिए बहुधा सीढिया बनी

---

1 त्यरक्का दीनादीनदीनाधिनाथा दीना बद्धा येन सारगपुर्यां।
योषा. प्रौढाः पारसीकाधिपाना ता सख्यातु नैव शक्नोतिकोपी ।।२६८।।
महोमदो युक्ततरोन चैष. स्वस्वामिघातेन घनार्जनत्वे ।
इतीव सारंगपुर विलोडय महमदं त्यर्गजित्वान्महंमद ।।२६९।।
एतद्दग्धपुरान्तिवाडवमसौ यन्मालवाभोनिधि ।
क्षोणीश पिबति स्मखड्ग चुलुकस्तस्मादगस्त्य स्फुट ।।२७०।।
(कुभलगढ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

हुई है। सर्वोच्च भाग पर एक गुवज वना हुआ है, जहाँ का प्रत्येक पार्श्व १७ फुट लम्वा है। वेदी के ऊपर के भाग से गुवज तक की ऊचाई १२२ फुट है। सारे स्तम्भ पर क्या वाहर, क्या भीतर सर्वत्र सुन्दर खुदाई का काम, मूर्तिया वनी हुई है।

इसका द्वार दक्षिणाभिमुख है। द्वार में प्रवेश करते ही सामने जनार्दन की मूर्तिया दृष्टि गोचर होती है। वहा से दो सीढी चढ कर प्रथम मजिल की परिक्रमा में जाने पर क्रमश· अनत, रुद्र और ब्रह्मा की मूर्तिया तीनो पार्श्वों के मध्य की ताको में वनी है। ब्रह्मा के निकट से दूसरे मजिल में जाने की सीढिया वनी है। दूसरी मजिल की तीनो पार्श्वों के मध्य की ताको में हरिहर (आधा शरीर विष्णु का और आधा शिवका), अर्द्धनारीश्वर (आधा शरीर शिवका और आधा पार्वती का) और हरिहरपितामह (विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनो देवताओ की सम्मिलित एक मूर्ति) की मूर्तियाँ मुख्य है। इनके मध्य के रिक्त स्थानो में क्रमश. अग्नि, यम, भैरव, वरुण वायु, धनद, ईशान और इन्द्र इन दिक्पालो की मूर्तिया वनाई गई है। तीसरी मजिल के तीनो पार्श्वों के मुख्य ताको में विरचि, जयन्त, नारायण और चन्द्रावर्क पितामह की मुख्य मूर्तिया है। चौथी मजिल नीचे लिखी हुई मूर्तियो से भरी हुई है—त्रिखण्डा, तोत्तला, त्रिपुरालक्ष्मी, नन्दा क्षेमकरी, सर्व्वती, महारडा, भ्रामणी, सर्वमगला, रेवती, हरिसिद्धि, लीला, सुलीला, लीलागी, ललिता, लीलावती, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगुलाज श्री ,[1] हिमवती आदि देवियो, वसत, शिशिर, हेमत, शरद, वर्षा और ग्रीष्म, ऋतुओ, गङ्गा, यमुना और सरस्वती नदियाँ तथा गधर्व, विश्वकर्मा और कार्तिकेय की मूर्तिया वनी है। पाचवी मजिल के तीनो पार्श्वों के मध्य की ताको में क्रमश लक्ष्मीनारायण, उमा महेश्वर और ब्रह्मा-सावित्री की युगल मूर्तियाँ है। इनके मध्य के रिक्त स्थानो में परशु, त्रिशूल, खङ्ग शक्ति, कुत, तोमर, तूण, शक्तिशाल, भिल्ल, चक्र, शार्ङ्गधर, हल, भिंडि, डण्ड, मुद्गर, पाशिका, कणक, कर्तरी, छुरिका, करवाल, फरिका, फलक, शकु, अकुश, दु स्फोट, भुशुडी, पदिश, अर्गला, फारिका, मृणाल, डमरू, कमल, आदर्श शकु और खट्वाङ्ग नामक शस्त्रो की मूर्तिया वनी है। इनके नीचे मूर्तियो की एक और पक्ति है, जिसमें रुद्रलिंग (शिवलिंग), कर्पुरमजरी, शय्या,

1 जिन मूर्तियो के नाम का अश जाता रहा है, उनके स्थान में चिन्ह किया गया है।

संभोग, शिल्पी[1] (कीर्तिस्तम्भ बनाने वाला) मृदंगिनी, नटी, शिक्षाकार, वांधिक पात्र (नाटक के), हनुमान, सीता, राम लक्ष्मण सुग्रीव, अर्जुन, भीम, युधिष्टिर, नकुल, द्रौपदी, सहदेव, भिल्ल, दंभ, भैरव, वैताल, भूत, फुलटा, तरुणी, स्नातवनिता, मालिका, सुवा, अक्षमाला और कमडलु की मूर्तिया है । छःठी मजिल के तीनो पार्श्वों के मुख्य ताको में क्रमशः महा सरस्वती, महालक्ष्मी, और महाकाली की मूर्तियां है। बीच के खाली स्थानो में भृगीगण, तपस्वी (कई जगह कोने में) याभ्याशक्ति, आग्नेय-शक्ति, वैणिक सेवक, भैरव, नट, हनुमत, लक्ष्मण, चमरहस्ता, व्यजनिनी, सेविका (कई स्थानो पर) कुंभहस्ता, सावित्री, ब्रह्मा, गायत्री, गणधर, गणी, गलहार, शिवलिंग, पाडुरोगण, वारूणी, भैरवी, महाकाल, नर्तकी, सेवक, वरुण, भैरव गणेश, कार्तिकेय, शिव पार्वती, सितोगण, असितोगण, विजया, जया, नट, नर्तकी (कई जगह) श्रुतिधर, वांशिक, मार्दंगिकं, कौवैरी, वायवी, शिवपरिचारिका, पूजक, शिवभक्त, गायक, नंदीगण, भिल्ल, किरात रुद्र, शबरी रूप, भिल्ली आदि की प्रतिमाए बनी है । सातवीं मजिल में की सीढ़ियों के ऊपर के भाग में किन्नर युग्म बना है। इस मजिल में वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, बलदेव और बुद्ध आदि विष्णु के अवतारो की मूर्तिया है। यहां से सीढियो के द्वारा आठवीं मजिल पर पहुँचते है । पाषाण की सीढियां, जो प्रत्येक खंड की परिक्रमा के अन्त से आरम्भ होकर ऊपर की मजिल में जाती है, यहा समाप्त होती है। आठवीं मंजिल में मध्य का भाग (गर्भभाग) न होने से वहां कोई मूर्ति-नहीं है और न झरोखे है, यहा चारो स्तम्भ बने हुए है और बाकी हिस्सा खुला हुआ है । यहां से लकडी की एक सीढ़ी लगी हुई है, जिसके द्वारा दर्शक नवीं मजिल में पहुच सकते है और जिस पर गुवज[2]

---

1 शिल्पकारो की चार मूर्तिया खुदी हुई है, जिनमें से एक जइता की मूर्ति कुर्सी पर बैठी हुई है और उसके पास ही तीन खडी हुई मूर्तिया उसके पुत्रो की है, जिनके नाम नापा-पामा और पुजा दिए हुए है । यह चारो इस स्तम्भ के बनवाने वाले मुख्य शिल्पी थे, क्योंकि 'शिल्पन' खोद कर फिर प्रत्येक के नीचे उनके नाम खुदे है। दूसरी मंजिल वाले लेख में भी इनमें से तीन नाम दिए हुए है ।

2 यह गुवज उस पर बिजली गिरने से गिर गया था, जिससे वि० सं० १९११ में महाराणा स्वरूपसिह ने किसी प्राचीन मदिर का गुम्वज उखड़वा कर उसे यहा लगवा दिया, जिससे उसमें कमलो आदि की पंक्ति

वना है । गुंवज के नीचे के भाग में कई शिलाओ पर खुदी हुई वि० स० १५१७ मार्गशीर्षवदि ५ सोमवार की प्रशस्ति लगी हुई थी, जिसकी अव केवल दो शिलाए पहली और अन्त के पूर्व की विद्यमान है और वे भी कुछ विगडी हुई दशा में है। उनमें ४८ श्लोक वचे हैं । इस प्रशस्ति की वि० स० १७३५ फाल्गुनवदि ७ को किसी पडित ने पुस्तकाकार नकल की थी, जो हमें मिल गई है । उससे पाया जाता है कि पहले ४० श्लोको में वप्प (वापा) वशी महाराणा हमीर से महाराणा मोकल तक का वर्णन है । तदनन्तर फिर एक से श्लोक का आरम्भ कर १८७ श्लोको में प्रशस्तिकार तथा उसके वश का परिचय है । उक्त लिपि के लिखे जाने के समय भी कुछ शिलाए नष्ट हो चुकी थी, जिससे कुभा के वर्णन के श्लोक ४३—१२४ तक जाते रहे, तिस पर भी जो कुछ अश प्रशस्ति में कुम्भकर्ण के युद्धो, का शिल्पकार्यों, विद्या सम्वन्धी कार्यों आदि का वहुत कुछ वर्णन मिलता है, जो अन्य साधनो से ज्ञात नहीं हो सकता ।

ऊपर लिखी हुई समस्त मूर्तियो के ऊपर या नीचे उनके नाम भी खुदे हुए है, जिससे हिन्दूओ के पौराणिक अनेक देवताओ की मूर्तियो का ज्ञान सपादन करने वालो के लिए यह अद्वितीय साधन है । गणपति आदि की मूर्तिया बाहर की तरफ खुदी हुई है । भारत भर के तमाम अजायवघरो में भी इनमें से केवल थोडी ही मूर्तिया सुरक्षित है । प्रतिमा परिचय के इस अलभ्य सग्रह को देखकर भारतवर्ष के पुरातत्त्व विभाग ने इन सब मूर्तियो के फोटो का एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार किया और उदयपुर राज्य ने उसके लिए पर्याप्त सहायता भी देना स्वीकार

वरावर नही जमी । यह त्रुटि वास्तव में खटकती है । †

सम्पादकीय-टिप्पण

† इस कीर्तिस्तम्भ की दीवारो में दरारें होकर ऊपरी भाग झुक गया था और ऊपर की मजिल के गिर जाने का भय था । अतएव उदयपुर के महाराणा फतहसिह के राज्य काल के पिछले वर्षो मे इसके जीर्णोद्धार का कार्य आरम्भ होकर वर्तमान महाराणा भूपालसिह्जी के शासन काल में समाप्त हुआ, जिससे महाराणा कुम्भा की कीर्ति रक्षित होगई है, एव चित्तौड का दुर्ग देखने वाले यात्रियो को वह उक्त महाराणा की शिल्पकला-प्रियता का आदर्श वतलाता है । इस वार के जीर्णोद्धार में ऐसी भूलें नही की गई है, जिनका श्री० ओझाजी ने उल्लेख किया है ।

किया, परन्तु उन सबका फोटो लेना असम्भव जानकर उक्त विभाग ने इन तमाम मूर्तियो के चित्र तैयार करवा लिए है, जिनके पुस्तकाकार प्रकाशित होने पर भारत के विद्वानो के लिए पौराणिक मूर्तियो की अपूर्व सामग्री उपस्थित होजायगी । मैंने कई बार इस कीर्तिस्तम्भ में बैठकर प्राचीन मूर्तियो के सम्बन्ध की अपनी शङ्काएँ निवृत्त की है ।

इसकी दूसरी मजिल में उत्तर या पूर्व की जाली पर दो पक्तियो का एक लेख खुदा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वि० स० १४६६ फाल्गुनसुदि २ महाराजाधिराज राणा श्री कुभकर्ण के विजय राज्य के समय सूत्रधार जैता और उसके पुत्र नापा और पूजा श्री समिद्धेश्वर को प्रणाम करते है। इस लेख से निश्चित है कि नीचे की वेदी और कीर्तिस्तम्भ की दो मजिलें उक्त सवत् तक बन चुकी थी । अतएव उसका आरम्भ वि० स० १४९५ या १४९६ में हुआ होगा । उक्त स्तम्भ की समाप्ति वि० स० १५०५ माघसुदि १० को हुई थी[1] ।

भारतवर्ष में इसके बराबर ऊँचा कोई दूसरा स्तम्भ या मिनार नहीं है । इस स्तम्भ के भीतर और बाहरी हिस्से में सचित्र सुन्दर खुदाई का काम है और इसके महत्त्व का इसके साक्षात् देखे बिना अनुमान ही नहीं किया जा सकता । इसके बनाने में कई करोड़ रुपये व्यय हुए होगे। इतिहास प्रेमियो, भारत के प्राचीन शिल्प के अनुरागियो और हिन्दू जाति के गौरव का अभिमान रखने वालो से हमारा सविनय अनुरोध है कि वे एक बार चित्तोड की वीर भूमि में पदार्पण कर राजपूत जाति के गौरव के इस एक मात्र अवशेष महाराणा कुभा के अपूर्व अश्रुत और दर्शनीय स्मारक-कीर्तिस्तम्भ को देखकर जीवन सफल करें।

(मनोरमा, काशी वर्ष ३, भाग २, सख्या ५, पृ० ५५४–५८ सम्मेलनाक-फरवरी १९२७, वि० स० १९८३) ।

---

1 पुण्येपचदशेशते व्ययगते पचाधिकेवत्सरे ।
माघेमासिवलक्षपक्ष दशमी देवेज्यपुण्यागमे ।
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपति श्री चित्रकूटा चले
नानानिर्मित निर्जरावतरणै मेरोर्हसतंश्रिय ।।१८५।।
(कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति अप्रकाशित)

प्रकरण चौथा

विविध

१–यूनानी राजदूत और वैष्णव धर्म

प्राचीन शिलालेख और पुस्तक आदि से हिन्दुस्तान में बसने वाले प्राचीन काल के यूनानियो (ग्रीक) लोगो में से कितने एक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उदाहरण तो मिल जाते है, परन्तु भारतवर्ष के प्राचीन शोध के अध्यक्ष मि० मार्शल साहब के यत्न से गत वर्ष एक शिलालेख मिला, जिससे पाया जाता है कि तक्षशिला के यूनानी राजा ऐंटि आल्किडस (Antialkidas) का दूत हेलिआडारस् (Heliodors) वैष्णव धर्म के भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। उस लेख के भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिए विशेष उपयोगी होने के कारण हम इसका परिचय कराते है।

सेंट्रल इडिया के ग्वालियर राज्य के भेलसा जिले का मुख्य स्थान भेलसा (भिलसा) है जो बौद्धो के पवित्र प्राचीन स्तूपो के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ के स्तूपो के विषय में जनरल कनिंग्हाम साहिब ने 'भिलसा टोप्स' नाम का एक बहुमूल्य ग्रथ प्रकाशित किया है। इसी भेलसा से थोडी दूर पर वेस नगर नाम का एक छोटा सा गाव है, जिसके निकट दूर-दूर तक प्राचीन काल के इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगरी के खडहर है, जिनकी छानबीन जनरल कनिंग्हाम साहब ने सन् १८७७ ईस्वी में की, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होने अपनी प्रकट की हुई 'आर्किआलॉजिकल् सर्वे' रिपोर्ट की दूसरी जिल्द (पृ० ३६–४६) में किया है। वहाँ पर उन्होने बेतवा और वेस नदियो के सगम के पास प्राचीन एक विशाल स्तम्भ का पता लगाया, जिसका सुन्दर चित्र ऊचाई के नाप के साथ उक्त रिपोर्ट की प्लेट १४ वीं (प्रथम चित्र) में उन्होने दिया है। वह स्तम्भ वहा पर 'खम्भा बाबा के नाम से प्रसिद्ध है और उसको पवित्र समझते है। कई यात्री उसके लिए वहा जाते है उसके आगे जानवरो का बलिदान करते है और उस पर सिंदूर चढ़ाते है। जिस समय कनिंग्हाम साहब ने इस स्तम्भ की जाच की, उस समय सारे स्तम्भ पर सिंदूर का गहरा रग जमा हुआ था और लोग उसको पवित्र मान कर पूजते थे, इस कारण सिंदूर को उखाड कर पूरी जाच करना सभव न हुआ। उसकी ऐसी स्थिति पर से भी उन्होने यह अनुमान किया कि वह गुप्तो के

समय का होना चाहिए और सिंदूर के नीचे उसके बनाने वाले का नाम समय आदि प्रकट करने वाला लेख होना चाहिये, परन्तु जब वहा के पुजारियो ने उनसे यह कहा कि उस पर कोई लेख नहीं है, तब वे निराश होकर वहाँ से लौटे। दैवयोग से वह सिंदूर का रग अधिक मोटा होने के कारण कुछ वर्ष हुए स्वयं उखड गया और पत्थर निकल आया, परन्तु लोग फिर उस पर सिंदूर लगाते ही रहे। गत वर्ष के जनवरी मास में मिस्टर मार्शल साहब वहाँ पर पहुँचे, उस समय ग्वालियर राज्य के इजीनियर मि० लेक साहब ने उस स्तम्भ के हिस्से पर अक्षरो के निशान देखे और थोडा सा सिंदूर हटाते ही अक्षर स्पष्ट दिखलाई दिये। फिर मि० मार्शल साहब ने उस स्तम्भ को साफ करवाया तो उस पर दो लेख निकल आये, जिनके लिए वे सारे शिक्षित समाज के धन्यवाद के भागी है। ये लेख गुप्तो के समय के नहीं, किन्तु उससे बहुत पहले के अर्थात् ईस्वी सन् के पूर्व की दूसरी शताब्दी की प्राचीन लिपि में खुदे हुए है, जो मौर्य वशी राजा अशोक के शिलालेखो की लिपि से बहुत ही मिलती है। इन दो लेखो में हमारा यह लेख है। मिस्टर मार्शल साहब ने उस लेख की छाप तैयार कर एक तो डॉक्टर ब्लाक (Dr. Thes Block) के पास भेजी तथा दूसरी छाप तथा उसका फोटो डॉ० फ्लीट साहब के पास इग्लैंड भेजा। डॉ० ब्लाक साहब का तैयार किया हुआ उक्त लेख का रोमन अक्षरातर तथा अग्रेजी भाषान्तर मि० मार्शल साहब ने "भारतीय प्राचीन शोधसम्बन्धी टिप्पणियां (Notes on Archaeological exploration on India, 1908-9) नामक अपने लेख में छपवाया (रायल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १९०९ जर्नल की अक्टोबर की सख्या में, पृ० १०५५-५६) और साथ ही उसका फोटो भी प्रकट किया। डॉ० फ्लीट साहब ने भी अपना तैयार किया हुआ, उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अग्रेजी अनुवाद सहित उसी सख्या (पृ०१०७७–९२)में छपवाया।। फिर मि० देवदत्त भंडारकर ने उक्त छपे हुए फोटो पर से उसका रोमन अक्षरान्तर तथा अग्रेजी भाषान्तर बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल (अंक २३, (ठीक-ठीक पाठ)पृ० १०३) में प्रकाशित किया। परन्तु इन तीनो अक्षरान्तरों में एक में भी अंतिम पक्ति का फोटो तथा छाप में उक्त पंक्ति के कुछ अक्षरो का स्पष्ट न होना ही था। फिर इस वर्ष में मि० लेक साहब ने उक्त स्तंभ को साफ करवा कर उस लेख की एक उत्तम छाप प्रोफेसर वेनिस साहब के पास भेजी जिसमें अतिम पक्ति के अक्षर स्पष्ट पढे गये और मख्य कठिनाई दूर हो गई।

उक्त लेख का नागरी अक्षरान्तर तथा भाषान्तर नीचे लिखा जाता है—

अक्षरान्तर

(१) देव देवस वा [सु] देवस गरुड ध्वजे अय
(२) कारित्तोइ [अ] होलिओ दोरेण भाग–
(३) वेतन दिअस पुत्रेण तखसिला केन
(४) योन इतेन आगतेन महाराज स
(५) अतिलि कितस उपता सकास रजो
(६) कासो पुत्तस [भा] ग भद्रस त्रातारस
(७) वसेनस चतुरसेन राजेन वधमानस

भाषान्तर

"देवताओं के देवता वासुदेव का यह गरुड ध्वज तक्षशिला के रहने वाले (Dion) के पुत्र भागवत, हेलिओदोर (Heliodors) नामक यवनदूत ने यहा पर बनवाया, (जो) महाराज अतलिकित (Antialkidas) के यहा से त्रातार राजा काशी पुत्र भागभद्र के पास (उसके) प्रवर्द्धमान राज्य वर्ष १४ वें में आया था।"

टिप्पणी

भाषा— इस लेख की भाषा प्राकृत है, परन्तु सस्कृत मे बहुत ही मिलती हुई है।

हिन्दुस्तान के यूनानी (ग्रीक) राजाओ के सिक्को पर के खरोष्ट्री (गाधार) लिपि के लेखो की भाषा भी इसी प्रकार की है।

गरुडध्वज—यह स्तम्भ गरुड ध्वज ही था। विष्णु मन्दिरो में सामने कभी-कभी बडा स्तम्भ बनाकर उसके सिर पर गरुड की मूर्ति बिठलाते है। ऐसे स्तम्भो को गरुडध्वज कहते है। गुप्त राजाओ के सिक्को में ऐसे स्तम्भो के चिन्ह पाये जाते है।

तक्षशिला—पजाब का एक प्राचीन नगर, जिसका खण्डहर सिधु और झेलम नदियो के बीच शाह ढेरी के पास होना जनरल कनिंघम प्रकट करते है। सिकन्दर बादशाह इस नगर में रहा था। यहा के राजा ने हिन्दू राजाओ मे सबसे पहले बिना लडे सिकन्दर की अधीनता स्वीकार की थी। पीछे से इसी नगर में यूनानी राजाओ की राजधानी रही थी और ग्रीक राजा ऐंटिआल्कि की राजधानी भी जान पडती है, यही थी।

दीअ—यह यूनानी नाम डीऑन (Dion) का सूचक है। जब एक भाषा के नाम दूसरी भाषा में लिखे जाते हैं, उस समय उनमें कुछ परिवर्तन हो ही जाता है। अशोक के लेखों में ऐंटिओकस के स्थान पर अतियक, अतियोक या अतियोग लिखा मिलता है। ऐसे ही टॉलमी के तुरमाय ऐंटिगानस्ट को अतकिनि या अतोकिनस, मेगस को मक या मग और अलेकजेंडर को अलिकसन्दर लिखा है। मुसलमानों के समय के संस्कृत लेखों ने भी अमीर के स्थान पर हमीर और सुलतान के स्थान पर सुरत्राण लिखा है और अब भी ऐसा होता है।

भागवत—वैष्णवों के अनेक सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन भागवत सम्प्रदाय, जिसके अनुयायी भगवद्भक्ति के कारण भागवत् कहलाते हैं। वे वेद विहित यज्ञादि कर्मों को गौण भगवद् भक्ति को ही मुख्य मानते हैं।

हेलिओदोर—यह यूनानी (ग्रीक) नाम 'हेलिऑडारस के वास्ते लिखा गया है।

अतलिकित—यह यूनानी नाम 'ऐंटि आल्किडस' का प्राकृत रूप है। ऐंटी-आल्किडस पंजाब का राजा था और वह ई० स० से पूर्व की दूसरी शताब्दी में हुआ। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। हेलि-ऑडारस इसी का दूत था, जो इसका भेजा हुआ विदिशा के राजा भागभद्र के पास गया था। इस राजा के कई चांदी के सिक्के मिले हैं। जिनके एक तरफ प्राचीन ग्रीक लिपि में ग्रीक भाषा का लेख है और दूसरी ओर खरोष्ट्री लिपि में "महरजस जयधरस अति अलिकिदस" लेख है। यूनान के बादशाह अलेकजेंडर (सिकन्दर) ने ई० स० से ३२६ वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर पंजाब तथा सिन्ध का बहुत कुछ भाग अपने अधीन किया था। उस पर तो यूनानियों का अधिकार नौ वर्ष के भीतर ही उठ गया, परन्तु हिन्दुकुश से उत्तर में बाक्ट्रिया का यूनानी राज्य (जिसे सिकन्दर ने ही कायम किया था) दृढ़ हो गया था। वहां के राजा युथिडिमस के पुत्र डिमिट्रिअस ने ईसा के लगभग १९० वर्ष पहले हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर अफगानिस्तान, पंजाब आदि पर फिर यूनानियों का राज्य जमा दिया, जो कई सौ वर्ष तक बना रहा।

इस समय के पच्चीस से अधिक राजाओ के सिक्के मिले है, जिन पर के लेखो मे उनके नाम तथा उपाधि आदि का पता लगता हैं। इन राजाओ में से एक का भी नाम पहले किसी शिलालेख मे नही मिला था। वेस नगर का लेख ही पहला लेख है, जिसमे पजाव के यूनानी राजा का नाम मिलता है।

त्रातार—(सस्कृत त्रात् से बना है) इसका अर्थ 'रक्षक' होता है, परन्तु यहा पर यह उक्त अर्थ का सूचक नही है, किन्तु उपाधि है। यह उपाधि किसी हिन्दु राजा के नाम के साथ लगी हुई पहले नही मिली, परन्तु यूनानी राजा डायामिडस, एग्रालोडाटस, स्टैये, मिनेडर, जोइलस, डायोनिअस, हिपस्ट्रिटस, हर्मिअस् आदि के सिक्को पर प्राकृत लेखो में मिलती है और यूनानी उपाधि 'सोटर' (Soter) का प्राकृत अनुवाद है। उपर्युक्त लेख एक यूनानी राजदूत का खुदवाया हुआ होने से उसमें राजा की उपाधि यूनानी राजाओ की भी हो तो कोई आश्चर्य की वात नही, परन्तु वह उपाधि वहुत वडे राजाओ की थी, जिससे अनुमान होता है कि भागभद्र भी जिसके नाम से स्तम्भ लगा हुआ है, प्रवल राजा था।

काशीपुत्र—राजा भागभद्र के नाम के साथ उसकी माता काशी के नाम का उल्लेख किया गया है। प्राचीन लेखो में कई राजाओ के नामो के साथ उनकी माताओ के नाम लिखे मिलते है, जिसका कारण कदाचित यह हो कि उस समय के राजाओ के अनेक रानियां होती थी, इसमे कौन सी राणी के विशेष गुण या योग्यता के कारण पुत्र के नाम के साथ उसके नाम का भी उल्लेख किया जाता रहा हो। आन्ध्रभृत्य (सातवाहन) वश के राजा शात कर्ण को गौतमी पुत्र, पुलुभाई को वसिष्ठ पुत्र, शकस को माढरी पुत्र लिखा है। ऐसे ही अनेक उदाहरण सिक्को तथा लेखो मे मिलते है। सस्कृत शिक्षा में प्रसिद्ध वैयाकरणिक पाणिनि को दाक्षि पुत्र वतलाया है और प्रसिद्ध कवि भवभूति अपने को (जातुकर्णी पुत्र) लिखता है।

भागभद्र यह राजा किस वश का था इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं है। इसकी राजधानी विदिशा नगरी होना सभव है। महाकवि कालिदास के रचे हुए 'मालविकाग्निमित्र नाटक' मे पाया जाता है कि शुगवश के सस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा नगरी में राज करता

था। भागभद्र का समय पुष्पमित्र के समय से बहुत दूर नहीं हो सकता। अतएव यह सभव है कि यह भी उसी वंश से सम्बन्ध रखता हो।

डॉक्टर ग्रियर्सन साहब ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सन् १६०७ के जर्नल में (पृ० ३११–३६) एक लेख* लिख कर यह बतलाने का यत्न किया था, कि "इसाई लोगो की एक बस्ती प्राचीन काल मे मद्रास हाते में स्थापित हुई थी, जहा के इसाईयो द्वारा हिन्दुओ में भक्ति मार्ग चालू हुआ है और दक्षिण से सारे हिन्दुस्तान में फैल गया हो' परन्तु उपर्युक्त बेसनगर के लेख से जो इसाई धर्म के प्रादुर्भाव से करीब दो शताब्दी पूर्वका है, स्पष्ट पाया जाता है कि उस समय भी हिन्दुस्तान में भक्ति मार्ग को मानने वाली भागवत सम्प्रदाय विद्यमान था और यूनानी लोग भी उसके अनुयायी बनते थे।

मर्यादा प्रयाग, दिसम्बर १६१०।

२–माघ कवि का समय

भारतवर्ष का प्राचीन लिखित इतिहास न होने के कारण यहा के अनेक विद्वानों आदि की जीवन-लीला के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जान सकते। इतना ही नहीं, किन्तु उनका समय भी अज्ञात ही है। हमारे यहां के विद्वान् निरभिमानी और नि स्वार्थी होने के कारण अपने ग्रथों में बहुधा अपना नाम नही दिया करते थे, अपनी जीवन-लीला का वर्णन करना वे आडम्बर समझते थे। कभी-कभी किसी ने अपने वश का कुछ परिचय या अपने ग्रंथ की समाप्ति का समय भी दिया है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

माघ कवि का प्रसिद्ध ग्रंथ "शिशुपाल-वध" काव्य सस्कृत के प्रेमी बड़े उत्साह से पढते हैं, क्योंकि यह प्रसिद्धि चली आती है कि कालिदास के ग्रथों में उपमा, भारवी के किरानार्जुनोय में अर्थ-गौरव और दण्डी के ग्रथो में पद-लालित्य की विशेषता है; परन्तु माघ का शिशुपालवध इन तीनो गुणो से परिपूर्ण है‡। ऐसे विद्वद्रत्न का जीवनचरित्र तो दूर रहा, निश्चित समय भी अज्ञात ही है।

---

* Modern Hinduism and its debt to the Nestorians.

‡ उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दडिन, पदलालित्य माघे सन्ति त्रयोगुणा.॥
(प्राचीन पद्य)

माघ कवि ने शिशुपालवध काव्य के अन्त में अपना वंश वर्णन किया है, जिसका आशय यह है—"राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी (प्रधान मन्त्री) सुप्रभदेव हुआ । राजा अपने हित की इच्छा से उस (सुप्रभदेव) के शुद्ध कथन को भगवान् बुद्धदेव के कथन के समान मानता था । सुप्रभदेव का पुत्र दत्तक हुआ जो क्षमाशील और धर्मपरायण था । उस सत्पुरुष के गुणो से रंजित होकर लोगो ने उसको सर्वाश्रय की उपाधि (उपनाम) प्रदान की थी । उस (दत्तक) के पुत्र (माघ) ने 'शिशुपालवध काव्य' की रचना की'* । माघ का दिया हुआ यह परिचय उसका समय निर्णय करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

शिशुपाल वध की भिन्न-भिन्न हस्त-लिखित पुस्तको में वर्मलात के स्थान पर "वर्मलाख्य, वर्मनाम, चर्मलात, धर्मनाभ, धर्मनाथ, धर्मलाभ, धर्मदेव, धर्मलात और निर्मलान्त" पाठ मिलते हैं † । प्राचीन नागरी लिपि में 'ध' और 'व' में अन्तर केवल यही था कि 'ध' के ऊपर सिर की आडी लकीर नहीं लगाई जाती थी, किन्तु 'व' में लगाई जाती थी । इस प्रकार 'ध' और 'व' का वास्तविक भेद न जानने के कारण नकल करने वालो ने वर्मलात को धर्मनाभ, धर्मनाथ धर्मलाभ, और धर्मदेव आदि लिख दिया हो, यह संभव है । ऐसे ही 'व' को 'ध' पढकर "धर्मलात" और 'व' को 'च' पढकर "चर्मलात" लिख दिया हो ।

---

* सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलातस्य बभूव राज्ञः ।।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ।।१।।
काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः ।।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ।।२।।
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः ।।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ।।३।।
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन ।।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ।।४।।
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु ।।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयाद
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम् ।।५।।
(शिशुपाल-वध काव्य के अंत का कवि-वंश वर्णन)

† महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसादजी लिखित शिशुपालवध काव्य का उपोद्घात, पृ० ६ (निर्णयसागर संस्करण) उक्त सब पाठो में से शुद्ध पाठ 'वर्मलात' है, जैसा कि उसी राजा के वि० सं० ६८२ के शिलालेख में मिलता है ।

भिन्न २ युरोपियन विद्वानो ने माघ का समय भिन्न२ माना है। प्रोफेसर हर्मन जैकोबी ने ईस्वी सन् की सातवी शताब्दी* से पूर्व, डाक्टर फ्लीट ने ई० सन् की नवी शताब्दी† के अन्त में, प्रोफेसर मैक्डोनल ने ईस्वी सन् की दसवीं शताब्दी ‡ के पूर्व और डॉक्टर कीथ ने ईस्वी सन् ७०० के आस-पास उसका समय वतलाया है¶। महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी का कथन है कि माघ पडित का समय ईस्वी सन् की नवीं शताब्दी से पीछे किसी प्रकार नही माना जा सकता §। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि वास्तव में माघ कवि कब हुआ ?

वि० स० की ११ वी शताव्दी के पीछे जैन विद्वानो ने इतिहास की तरफ ब्राह्मणो की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया, जिससे उनके यहा कई चरित्र-ग्रंथो की रचना हुई। उनमें जैन एव जैनेत्तर राजाओ, विद्वानो आदि के चरित अकित किए गए हैं, परन्तु उनमें भी पहले के राजाओ, विद्वानो आदि के सम्बन्ध में जो कुछ परम्परागत जनश्रुति से उन्होने सुना, वही सग्रह किया हैं। इसलिये अपने से अधिक समय पहले के विद्वानो आदि के सबध में जो कुछ उन्होने लिखा है, वह सब का सब प्रमाणयुक्त है, यह नही कहा जा सकता।

अब तक पहले के तीन सस्कृत लेखको का माघ कवि के सम्बन्ध का कथन उपलब्ध हुआ है, जिसमें से दो जैन हैं; और उनमें भी सब से पहला जैन लेखक चन्द्रप्रभ सूरि है। उसने वि० स० १३३४ में प्रभावक-चरित नामक चरितावलि लिखी, जिसके १४ वें श्रृङ्ग या प्रबन्ध में सिद्धर्षि का वृत्तान्त लिखा हैं। वह माघ के सम्बन्ध में उपयोगी है, इस कारण उसका आशय नीचे दिया जाता है।

"गुर्जर (गुजरात) देश के समृद्धिवान् श्रीमाल नगर के राजा वर्मलात का मन्त्री सुप्रभदेव था। उसके दो पुत्र दत्त (दत्तक) और शुभकर हुए। दत्त (दत्तक) का पुत्र माघ हुआ, जिसका बाल-मित्र विद्वान् राजा भोज था। माघ ने 'शिशुपाल-वध काव्य' की रचना की, जिसकी सतत प्रशसा हो रही है। माघ का चचा शुभकर श्रेष्ठी (व्यापारी) बडा दानी हुआ। उसकी सती

---

* वियेना ओरिएण्टल जर्नल, जि० ३, पृ० १४१।

† वही, जि० ४, पृ० ६१ और आगे, तथा पृ० २३६ और आगे।

‡ मैक्डॉनल, ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृ० ३२९।

¶ कीथ, क्लासिकल् सस्कृत लिट्रेचर, पृ० ५४।

§ शिशुपालवध का उपोद्घात, पृ० ५।

स्त्री लक्ष्मी, विष्णु-पत्नी लक्ष्मी जैसी थी। जिससे सिद्ध नामक पुत्र हुआ। सिद्ध का विवाह एक कुलवती कन्या से हुआ था। पर वह दुराचरण में पड़कर व्यभिचारी और जुआरी हो गया। अपनी माता के कठोर वचन सुनकर वह एक रात्रि को जैन उपाश्रय में जा रहा। वहा जैन साधुओ की तपस्या और निर्मल आचरण देखकर उसने जैन धर्म की दीक्षा लेकर साधु होना निश्चित किया। पिता ने उसको बहुत कुछ समझाया, परन्तु वह अपने निश्चय से नही डिगा। अत में उसने गर्गर्षि नामक जैन साधु से दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह विद्याध्ययन कर वडा विद्वान् हो गया और सिद्धर्षि नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने 'उपमितिभवप्रपचा महाकथा' नामक वडे ग्रथ की रचना की। हरिभद्र सूरि का ग्रन्थ (ललित विस्तर) पढने से उसके चित्त पर वडा प्रभाव पडा था, जिससे वह उनको भी गुरुवत् मानता था।"*

'प्रभावक चरित' में सत्य का अश अवश्य है, क्योकि माघ कवि ने स्वय अपने वश का जो कुछ परिचय दिया है, वह ज्यो का त्यो उसमें भी पाया जाता है। वर्मलात भी गुर्जर देश¶ की राजधानी श्रीमाल (भीनमाल) नगर का राजा अवश्य था। चीनी यात्री हुएन्त्सग ने भी गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल‡ होना लिखा है।

चन्द्रप्रभसूरि ने माघ या राजा वर्मलात का कोई समय नहीं दिया। परन्तु यदि वास्तव में सिद्धर्षि माघ का चचेरा भाई§ हो, तो माघ के समय का कुछ अनुमान हो सकता है, क्योंकि सिद्धर्षि ने अपनी "उपमितिभवप्रपचा कथा" की समाप्ति सवत्सर '९६२ ज्येष्ठ सुदी ५, पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार'

---

* चन्द्रप्रभसूरि-प्रणीत 'प्रभावकचरितम्' निर्णयसागर सस्करण, पृ० १९६-२०५ मे सिद्धर्षिसूरि प्रवन्ध।

¶ इस समय गुर्ज्जर अर्थात् गुजरात देश उसी प्रदेश को कहते हैं, जहाँ गुजराती भाषा वोली जाती है। परन्तु प्राचीन काल में जोधपुर राज्य के उत्तरी हिस्से से लेकर दक्षिण तक का सारा प्रदेश तथा उससे मिला हुआ गुजरात का भडौच तक का सारा प्रदेश गुर्ज्जर देश या गुजरात कहलाता था। अव तो केवल उसका गुजरात का अश ही उक्त नाम से प्रसिद्ध है। गुर्ज्जर देश के विशेष वर्णन के लिये देखो—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३४१—४६।

‡ वील, 'वुद्धिस्ट रेकर्ड्ज ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड,' जि०२, पृ० २७०।

§ माघ को सिद्धर्षि का चचेरा भाई मानने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नही है और न सिद्धर्षि ने अपनी 'उपमितिभवप्रपचा कथा' में इस विषय का कोई उल्लेख किया है। चन्द्रप्रभसूरि ने माघ से अनुमान ६०० वर्ष पीछे यह वात लिखी है, इसलिये यह विश्वसनीय नही प्रतीत होती।

के दिन होना लिखा है*। सिद्धर्षि ने इसमें केवल सवत्सर शब्द का प्रयोग किया है; परन्तु यह स्पष्ट नहीं लिखा कि यह शब्द विक्रम संवत् का अथवा शक सवत् का सूचक है । तो भी उसके साथ मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और वार दिए है, जिससे गणित के द्वारा उसका निर्णय हो सकता है । सवत्सर ९६२ शक सवत् तो हो नही सकता, क्योंकि उक्त शक संवत् में ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नहीं, किन्तु अश्लेषा नक्षत्र और सोमवार था। यदि वह विक्रम सवत् हो, तो यह भी निश्चय करना आवश्यक है कि वह चैत्रादि (उत्तरी गणना का) अथवा कार्तिकादि (दक्षिणी गणना का) विक्रम सवत् है । चैत्रादि विक्रम सवत् ज्येष्ठ सुदी ५ को भी पुनर्वसु नक्षत्र और गुरुवार नही, किन्तु पुष्य नक्षत्र और रविवार था। कार्तिकादि विक्रम सवत् ९६२ ज्येष्ठ सुदि ५ को पुनर्वसु नक्षत्र भी था और गुरुवार भी, ऐसा गणित से पाया जाता है। अतएव 'उपमितिभवप्रपचाकथा' की समाप्ति कार्तिकादि विक्रम सवत् ९६२ (चैत्रादि ९६३) में होना निश्चित है । परन्तु माघ का इस सवत् के आस-पास होना हम स्वीकार नहीं कर सकते, जिसका कारण आगे लिखा जायगा।

वि० स० १३६१ § में वर्द्धमान (वढ़वाण, काठियावाड) में मेरूतुगाचार्य ने अपनी 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक पुस्तक समाप्त की थी। उक्त पुस्तक में माघ पण्डित के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश नीचे लिखा जाता है ।

"मालवे के प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज ने माघ पडित की विद्वत्ता का हाल सुनने पर उसको श्रीमाल (भीनमाल) नगर से बडे सम्मानपूर्वक अपने यहाँ बुलाकर उसके विनोद तथा सुख का सब प्रबन्ध किया और रात्रि में वह उससे वार्तालाप करता रहा। दूसरे दिन प्रात.काल ही माघ ने राजा से अपने घर जाने की आज्ञा मागी । राजा ने विस्मित होकर पूछा कि क्या आपके भोजन आच्छादन आदि में कुछ त्रुटि रह गई है ? इस पर माघ ने खाने पीने की बात छोडकर कहा कि मै तो शीत-रक्षार्थ

---

* सवत्सरतनवके द्विषष्ठिसहिते लघिते चास्या ।
ज्येष्टे सितपञ्चम्या पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥

(उपमितिभवप्रपचा कथा)

§ बम्बई की छपी हुई (सवत् १९४४) 'प्रबन्ध चिन्तामणि' पृ० ३२३ ।

रजाइयों के ही बोझ से मर रहा हूँ। इस पर राजा ने खिन्न होकर उसे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी और शहर के बाहर के बगीचे तक वह उसे पहुँचाने भी गया। वहा माघ पडित ने राजा से प्रार्थना की कि आप भी कृपाकर मेरे यहां पधारें। जब राजा ने इस बात को स्वीकार किया, तब वह स्वदेश को लौटा। फिर कुछ समय के बाद राजा भोज माघ का वैभव आदि देखने के लिये श्रीमाल नगर को गया। माघ पडित उसकी पेशवाई कर उसे अपने घर ले आया। राजा उसका अतुल वैभव देखकर चकित हो गया और कुछ दिन वहां ठहरकर मालवे को लौट गया। कुबेर जैसी सपत्तिवाला माघ विद्वानो और याचको को उनके इच्छानुसार द्रव्य दे देकर वृद्धावस्था में दरिद्र हो गया, जिससे अपने देश में रहना उसने उचित न समझा। उसने 'शिशुपालवध महाकाव्य' की रचना की और अपनी स्त्री सहित जाकर धारा नगरी में निवास किया। उसने द्रव्य-प्राप्ति की आशा से अपना ग्रथ (शिशुपालवध महाकाव्य) अपनी स्त्री को देकर उसे राजा (भोज) के पास भेजा। भोज ने उस स्त्री की वह दशा देखकर उस पुस्तक को खोला, तो प्रात काल के वर्णन का 'कुमुदवनमपश्रि*' से प्रारम्भ होने वाला एक श्लोक दृष्टिगोचर हुआ। उस श्लोक का भाव देखते ही उसने मुग्ध होकर कहा कि काव्य का तो कहना ही क्या, यदि उक्त श्लोक के लिये ही सारी पृथ्वी दे दी जाय तो भी कम होगा। फिर उसको एक लाख रुपये देकर विदा किया। घर जाते हुए याचको ने उसे माघ की पत्नी जानकर याचना की, जिस पर उसने वह सारा द्रव्य उन लोगो को दे दिया। घर पहुँचकर उसने यह सारा हाल

---

* शिशुपालवध काव्य में यह पूरा श्लोक इस तरह है—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजपण्ड

त्यजति मुदमुलूक प्रीतिमाश्चक्रवाक ।

उदयमहिमरश्मिर्याति शीताशुरस्ते

हतविधिलसिताना ही विचित्रो विपाक ॥

सर्ग ११, श्लोक ६४।

आशय—सूर्य के उदय और चन्द्र के अस्त होने पर कुमुद (रात्रि मे खिलनेवाले कमलो) की शोभा नष्ट हो जाती है और अम्भोज (दिन मे खिलनेवाले कमल) सुशोभित होते है, उल्लू निरानन्द और चकवाक सानन्द होते है। (इसमे प्रतीत होता है कि) भाग्यहीन और भाग्यवान् के लिये कर्म की गति अवश्य विचित्र होती है।

अपने पति से कहा । उसने उत्तर दिया कि तू मेरी मूर्तिमती कीर्ति ही है । फिर याचक लोग जब उसके पास मांगने को गए, तो अपने पास कुछ न देखकर उसको यहाँ तक दु:ख हुआ कि उसका प्राणान्त हो गया । प्रातःकाल जब राजा को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ, तब उसने सोचा कि श्रीमाल नगर में स्वजाति के धनवानो के होते हुए भी माघ जैसा पुरुषरत्न भूख से मरा; इसलिये उसने श्रीमाल नगर का नाम 'भिल्ल-माल') भीलो का नगर) रक्खा *।"

मेरुतुंग ने यह वृत्तान्त किसी अन्य जनश्रुति के आधार पर लिखा है और उसने चन्द्रप्रभसूरि का प्रभावक चरित देखा हो, ऐसा पाया नहीं जाता; क्योकि इन दोनों का वृत्तान्त परस्पर नहीं मिलता । प्रभावक चरित में यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया कि माघ का बालमित्र भोज कहाँ का राजा था, परन्तु मेरुतुन्ग ने उसे मालवे का प्रसिद्ध राजा भोज† मान लिया है । मालवे का राजा भोज वि० स १०७६ से १०९९[4] तक तो अवश्य विद्यमान था, ऐसा उसके दानपत्रो तथा ग्रंथादि से निश्चित है । भोज का देहान्त वि० स० १०९९ और १११२ के बीच किसी समय

* मेरुतुग-रचित प्रवन्ध-चिन्तामणि (वम्वई संस्करण) पृ० ८३—८८ ।

† प्रभावक चरित में विद्वान् राजा भोज को माघ कवि का बालमित्र कहा है । यदि इस कथन में कुछ सत्य हो, तो भी मालवे का राजा भोज उसका समकालीन नही हो सकता, क्योकि वह तो माघ से अनुमान ३४० से भी अधिक वर्ष पीछे हुआ था । माघ के समय के आस-पास भोज नाम का मौर्य (मोरी) वंशी राजा चित्तौड और उसके आसपास के प्रदेश पर राज्य करता था, ऐसा चित्तौड के निकट के पूठोली गाव के पास मानसरोवर नामक तालाब पर लगे हुए, उक्त भोज के पुत्र राजा मान के वि० स० ७७० (ई० सन् ७१३)[5] के शिलालेख से पाया जाता है, परन्तु उसका कुछ भी सबन्ध भीनमाल से रहा हो, ऐसा मानने के लिये कोई कारण नही मिलता । ऐसी स्थिति मे यही अनुमान होता है कि प्रभावक चरित के कर्ता ने पुरानी जन-श्रुति के आधार पर माघ का भोज से सम्बन्ध बतलाया हो, जैसा कि मेरुतुग और वल्लाल पडित ने बतलाया है ।

4 (सम्पा० टि०) भोज के पिता सिंधुराज की मृत्यु वि० स० १०६६ (ई० स० १००९) के लगभग मानी गई है । अतएव भोज के राज्याभिषेक का समय वि० स० १०६६ (ई० स० १००९) से मान सकते हैं । (स० टि०)

5 यह शिलालेख कर्नल टॉड को मिला था, जो अब तक अप्रकाशित है ।

हुआ था‡। मेरुतुंग के अनुसार माघ का समय 'उपमितिभवप्रपचा कथा' की रचना से सौ वर्ष मे भी अधिक पीछे मानना पडता है, जो सभव नहीं। ऐसे ही भोज ने माघ के मरने पर श्रीमाल का नाम भिल्लमाल नाम रक्खा, यह भी मानने योग्य नहीं है, क्योकि भिल्लमाल नाम प्राचीन है और वि० सं० की सातवो शताब्दी के अन्त के लगभग चीनी यात्री हुएन्त्सग ने गुर्ज्जर देश की राजधानी का नाम 'भीनमाल' लिखा है, जो विशेष विश्वास योग्य है।

‡ मेरा लिखा हुआ, 'राजपूताने का इतिहास,' पहला खड, पृ० १६१।

वह अब कहाँ पर है, यह भी कोई नही जानता, क्योकि उसके विषय में अब तक किसी विद्वान् ने अपना मतव्य प्रकट नही किया है। यदि वह सुरक्षित होता तो श्री ओझाजी तथा अन्य विद्वान् उस पर विशेप रूप से प्रकाश डालते हुए कोई अभिमत भी प्रकट करते।

टॉड ने उसका अग्रेज़ी अनुवाद अपने एनॉल्स एड एटीक्विटीज ऑफ राजस्थान में दिया है और उसका भापानुवाद महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के वीरविनोद नामक ग्रथ के प्रथम भाग के शेप सग्रह में छपा है।

इस ही आधार पर इतिहास के पाठको को चितौड पर आठवीं शताब्दी में मौर्यों का अधिकार होने का पता लगता है। उक्त भापान्तरो में मौर्यवशी राजा मान की चार पीढी का उल्लेख करते हुए (मान) को अवन्ती प्रदेश (उज्जैन, मालवा) का राजा होना वतलाया है, एव भोज का पुत्र मान होने का वर्णन है, जिसने चितौड के समीप मानसरोवर नामक तालाव वना कर उपरोक्त वि० स० ७७० (ई० स० ७१३) का शिलालेख लगाया।

प्रभावक चरित्र के रचयिता चन्द्रप्रभसूरि ने माघ कवि को राजा भोज का वाल्यमित्र होना वतलाया है। यहा भोज का आशय किसी भोज नामक विद्वान राजा से है। मालवे का प्रसिद्ध परमार राजा भोज तो उसका समकालीन नही हो सकता, क्योकि वह उसके तीनसौ वर्ष पीछे हुआ था। रघुवंशी प्रतिहारो तथा गुहिलवशियो में भी भोज या भोजदेव और काल भोज नामक राजा हुए है, एव चित्तौड के शिलालेख में मौर्यवशियो में राजा मानका पिता भोज लिखा है। माघ के समय-काल को देखते गुहिलवन्शी भोज

वल्लाल पडित रचित भोज-प्रबन्ध से पाया जाता है कि पंडित माघ गुर्ज्जर देश से मालवे के राजा भोज की राजधानी धारा नगरी में गया और उसने अपनी स्त्री को एक पत्र देकर राजा भोज के पास भेजा। भोज ने उस पत्र को पढा, तो उसमें प्रात काल के वर्णन का उपर्युक्त "कुमुदवनमपश्रि" से प्रारम्भ होने वाला श्लोक देखकर वह बडा प्रसन्न हुआ और माघ की पत्नी को तीन लाख रुपये देकर कहा कि माता! यह तो आपके भोजन के लिए है। कल प्रातःकाल आपके पति के दर्शन कर उनका मनोरथ पूर्ण करूँगा। आगे माघ की स्त्री के वह धन मार्ग में याचको को दे देने और माघ के मर जाने का वृत्तान्त प्रवन्ध-चिन्तामणि के अनुसार ही है। भोजप्रबन्ध से इतना और अधिक पाया जाता है कि माघ की पत्नी अपने पति के साथ सती हुई और राजा भोज ने पुत्रवत् उन दोनो का अतिम सस्कार किया*।

वल्लाल पडित का भोजप्रबन्ध कब बना, यह अनिश्चित है; परन्तु अनुमान होता है कि वह प्रवन्धचिन्तामणि से पीछे का बना हुआ होगा; क्योंकि उसमें ऐतिहासिक तत्व कुछ भी नहीं है। उस (वल्लाल पडित) को तो यह भी मालूम नहीं था कि मुज वडा भाई था और सिंधुल छोटा, जिससे यह लिख दिया कि सिंधुल ने मरते समय अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुज के सपुर्द कर दिया, जिसने राज्य के लोभ से भोज को मारने की आज्ञा दे दी आदि। सच बात तो यह है कि मालवे का

* भोज प्रबन्ध (बेल्वेडियर प्रेस का सस्करण) पृ० ६७—६९।

और रघुवशी प्रतिहार राजा भोजदेव माघदेव के समकालीन नही हो सकते। गुहिलवंशी काल भोज (बापा रावल) और मौर्यवशी भोज का समय माघ से मिलता है। इनमें से मौर्य राजा भोज का माघ से सम्पर्क रहा हो, यह सभव है। मौर्य राजा भोज का प्रत्यक्षत भीनमाल से कोई सबन्ध होना पाया नही जाता और न मालवे के परमार राजा भोज का। परन्तु वैवाहिक सम्बन्ध तथा अन्य रिश्तेदारी से मौर्यवशी राजा भोज का भीनमाल से सपर्क हो सकता है, क्योंकि भीनमाल भी एक राज्य था। इसके अतिरिक्त राजा विद्यानुरागी, उदार और मिलनसार हो तो चाहे कितना ही दूर का विद्वान् हो, उससे सम्बन्ध हो जाता है। माघकवि का परमार राजा भोज के दरबार में जाने का, प्रवन्ध-चिंतामणि के कर्ता मेरुतुङ्ग का कथन इतिहास से विरुद्ध है, और वह स्वीकार योग्य नही है।

राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघवर्ष) बडा विद्वान् था, जिसने अपने भतीजे भोज पर अधिक प्रीति होने तथा उसके योग्य होने के कारण उसी को अपना उत्तराधिकारी (गोद लेकर) बना दिया था। परन्तु वि० स० १०५०-१०५४ के बीच कर्णाटक के राजा तैलप के साथ की लडाई में कैद होकर मारे जाने के कारण उसका छोटा भाई सिंधुल (सिंधुराज, नवसाहसाक) और उसके पीछे उसका पुत्र भोज मालवे का राजा हुआ था*। इसी तरह बल्लाल पडित ने "भवभूति, बाण, कालिदास, मयूर, शकर कवि, गोविंद पडित, सीता पडिता, वररुचि, लक्ष्मीधर, माघ" आदि जितने कवियो के नाम उसको मालूम हो सके, उन सबका भोज के दरबार में होना लिख दिया है, जो सर्वथा अविश्वसनीय है।

इन तीनो ग्रथकारो ने माघ को गुर्ज्जर देश का रहनेवाला बतलाया है, और पहले दो ने गुर्ज्जर देश की राजधानी भीनमाल का उल्लेख किया है, जो ठीक है। स्वय माघ ने तथा प्रभावक चरित के कर्ता ने भी माघ के दादा को राजा वर्मलात का प्रधान मत्री लिखा है, अतएव यदि राजा वर्मलात का ठीक समय ज्ञात हो जाय, तो माघ के समय का भी ठीक ठीक निश्चय हो सकता है।

ई० सन् १९०४ (वि० स० १९६१) में सिरोही राज्य का इतिहास लिखते समय उक्त राज्य में प्राचीन शिलालेखो की खोज करते हुए वहाँ के वसतपुर (आबू पर्वत से थोडे ही अन्तर पर) नामक प्राचीन नगर से राजा वर्मलात का वि० स० ६८२ का शिलालेख मुझे मिला, जिसका आशय इस प्रकार है--"बडे बलशाली और विजयी राजा वर्मलात का भृत्य (सामत) वज्रभट, (सत्याश्रय) अर्बुद (आबू) का स्वामी था, जिसका पुत्र राज्जिल हुआ। उस समय बटाकर (बट, वसिष्ठपुर, वसतपुर) स्थान में पितामह के पुत्र सत्यदेव वणिक (महाजन) ने अन्य कई गोष्ठिको (मदिरादि में चन्दा देनेवालो का समुदाय) सहित क्षेमार्या (क्षेमकरी, खीमेल माता) नामक देवी का मन्दिर बनवाया †।"

---

* मेरा लिखा हुआ 'राजपूताने का इतिहास,' पहला खड, पृ० १८६-८७, और 'सोलकियो का प्राचीन इतिहास,' प्रथम भाग, पृ० ७५-७७ और उनकी टिप्पणिया।

† एपिग्राफिया इडिका, जिल्द ९, पृ० १९१-९२।

इस लेख से यह निश्चय हो गया कि वि० सं० ६८२ में आबू का प्रदेश वर्मलात नामक बड़े राजा के सामत वज्रभट (सत्याश्रय) और उसके पुत्र राज्जिल के अधिकार में था । उक्त लेख में वर्मलात का नाम देखकर मैंने यह निश्चय किया कि माघ का दादा सुप्रभदेव जिस वर्मलात राजा का मंत्री था, वह यही राजा होना चाहिए, क्योंकि उसकी राजधानी भीनमाल आबू से केवल ४० मील उत्तर-पश्चिम में है । इस प्रकार माघ के दादा का समय निश्चित हो जाने पर उस (माघ) का समय भी सहज ही ज्ञात हो सकता है ।

सस्कृत साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में वह शिलालेख बहुत महत्व का था, इससे मैंने उसकी सूचना सन् १९०५ ई० में अपने विद्वान् मित्र वियेना (आस्ट्रिया) निवासी डॉक्टर कीलहॉर्न को दी और उसकी एक छाप भेजकर यह भी सूचित किया कि इस लेख से माघ कवि का समय निश्चित हो जायगा । उक्त विद्वान ने १९०६ ई० में Gottingen Nachrichten नामक पत्रिका के दूसरे खड में 'एपिग्राफिक नोटस्' नाम की अपनी भारतीय पुरातत्व सम्बन्धी लेख माला की सख्या १९ में उक्त लेख का आशय प्रकट कर माघ कवि का समय इसवी सन् की ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना; और साथ में यह भी लिखा कि मिस्टर ओझा का मानना ठीक है† । डाक्टर कीथ ने ई० सन् ७०० के आस पास माघ का होना अनुमान किया है, जिसका आधार भी यही लेख है ।

'उपमितिभवप्रपचा कथा' चैत्रादि विक्रम सवत् ९६३ में समाप्त हुई थी । उसके कर्ता सिद्धर्षि को प्रभावक चरित के कर्ता चन्द्रप्रभ सूरि ने माघ का चचेरा भाई माना है, जो सशय युक्त ही है; क्योंकि माघ का वि० स० की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना सभव नहीं।

माघ ने शिशुपालवध काव्य में राजनीति का वर्णन करते हुए श्लेषालकार में राजनीति की समता शब्द-विद्या (व्याकरण शास्त्र) के साथ

† When Mr. Ojha first informed me of the discovery of this inscription, by a letter of the 24 th December 1905, he suggested that it would perhaps 'settle the date of the poet Magha' My subsequent examination having confirmed this view······(Gottingen Nachrichten, 1906, Heft 2, P I.)

की है, जिसका आशय यह है—"पद २ पर नियम का पालन करनेवाली अर्थात सब व्यवहार-वाली (अनुत्सूत्रपदन्यासा) सेवको को यथा योग्य जीविका देनेवाली (सद्वृत्ति) और स्थायी जीविका देनेवाली (सन्निवन्धना) होने पर भी यदि राजनीति गुप्त दूत रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नहीं देती, जैसे कि सूत्रो के पदो को न छोडनेवाले न्यासवाली (अनुत्सूत्र-पदन्यासा) सुन्दर वृत्तिवाली (सद्वृत्ति) और भाष्य (महाभाष्य) वाली (सन्निवन्धना) शब्द-विद्या (व्याकरण विद्या) यदि उपोद्घात रहित (अपस्पशा) हो, तो शोभा नहीं देती*।" उपर्युक्त श्लोक के दूसरे भाग में वृत्ति†, न्यास‡ और पस्पश¶ शब्द व्याकरण शास्त्र के साकेतिक रूप

---

* अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्ति सन्निवन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।।११२।।
(शिशुपालवध काव्य, सर्ग २)

† पाणिनि के सूत्रो पर जयादित्य और वामन की काशिकावृति, आचार्य रामचन्द्र की 'प्रक्रिया कौमुदीवृत्ति' और भट्टोजी दीक्षित की 'सिद्धान्त कौमुदीवृत्ति' प्रसिद्ध है । इसी तरह उनके पूर्व भी कुर्ण, चुल्ली, भट्टी और निर्ल्लूर के प्राचीन वृत्ति ग्रथ भी थे, जो अब उपलब्ध नही है, किन्तु उनका उल्लेख व्याकरण के ग्रथो में मिलता है । कुर्ण की वृत्ति तो महाभाष्यकार पतजलि के समय भी विद्यमान थी, ऐसा 'एड् प्राचा देशे' (१ १ ७५) सूत्र की व्याख्या में कैयट और नागोजी सूचित करते है । (महाभाष्य पर कैयट और नागोजी की टीका, वनारस सस्करण, पृ० ३९३) । इसी तरह पीछे से हेमचन्द्रसूरि ने 'सिद्धहैम शब्दानुशासन, नामक नवीन व्याकरण रचा । उस पर 'बृहद्वृत्ति' नामक विवरण और बृहद्वृति पर न्यास नाम का ग्रन्थ भी स्वय लिखा था ।

‡ काशिका वृत्ति पर जिनेन्द्रबुद्धि ने टीका लिखी जो न्यास नाम से प्रसिद्ध है । पहले भी न्यास ग्रथ अवश्य होगे, क्योकि वाण भट्ट ने, जो माघ से पूर्व हुए, अपने हर्षचरित में वृत्ति और न्यास का उल्लेख किया है—उपाया इव सामप्रयोगललितमुखा, गणपति, अधिपति, तारापति, श्यामल इति पितृव्यपुत्रा भ्रातर प्रसन्नवृत्तय गृहीतवाक्या, कृतगुरुपदन्यासा, न्यायवादिन सुकृत सग्रहाभ्यासगुरव लब्धस, घुशब्दा । लोक इव व्याकरणेऽपि • • •(वाण भट्टरचित 'हर्षचरित' निर्णयसागर-सस्करण, पृ० ८६–८७) । वृत्ति और न्यास दोनो प्रकार के ग्रथो का उल्लेख स्वय पाणिनि ने उक्थादि गण में किया है । (सिद्धान्तकौमुदी, निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपी हुई, चतुर्थ सस्करण, पृ० ६५२) ।

¶ पतजलि के महाभाष्य का प्रथम आह्निक, जो उस ग्रथ का उपोद्घात है, पस्पश नाम से प्रसिद्ध है ।

है । व्याकरण के मूल सूत्रो की व्याख्या (टीका) रूप ग्रयों की वृत्ति २ के टीका रूप ग्रथो को न्यास और ग्रथारम्भ के उपोद्घात रूप अश को पस्पश कहते है ।

उक्त श्लोक की टीका करते हुए मल्लिनाथ ने व्याकरण के सम्बन्ध में वृत्ति को काशिका वृत्ति और न्यास को उक्त वृत्ति पर का न्यास (जिनेन्द्रबुद्धि का) मान लिया है जो उपलक्षण मात्र है। वृत्ति और न्यास काशिका वृत्ति से पूर्व भी अनेक थे और पीछे भी बने, ऐसा पहले (टिप्पणी में) बताया जा चुका है ।

चीनी यात्री इत्सिग अपने यात्रा-विवरण की पुस्तक में भारतीय पठन-पाठन का वर्णन करते हुए काशिका-कार जयादित्य की मृत्यु अपनी पुस्तक के लिखे जाने से ३० वर्ष पूर्व अर्थात ई० सन् ६६१–६२ (वि० स० ७१८–१९) के आस-पास होना सूचित करता है* और जिनेन्द्रबुद्धि या उसके न्यास का उल्लेख नहीं करता, अतएव जिनेन्द्रबुद्धि का इत्सिग के ग्रथ की रचना अर्थात् ई० सन् ६९१–९२ (वि० स० ७५२–५३) के पीछे ‡ होना अनुमान किया जा सकता है।

ई० सन् १९०७–८ में श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भडारकर ने राजा वर्मलात के समय के वसन्तगढ के उक्त शिलालेख का सपादन करते समय मल्लिनाथ के कथनानुसार "वृत्ति" को काशिकावृत्ति और "न्यास" को जिनेन्द्रबुद्धि का न्यास समझकर माघ का उन दोनो ग्रथकारो के पीछे अर्थात् ईस्वी सन् की आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना माना है† जो सर्वथा उपेक्षणीय है, क्योकि जयादित्य और जिनेन्द्रबुद्धि के पहले भी वृत्ति और न्यास के कई ग्रथ थे, जैसा कि हम ऊपर बता चुके है ।

माघ का दादा सुप्रभदेव भीनमाल के राजा वर्मलात का मत्री था, और वर्मलात वि० स० ६८२ (ई० सन् ६२५) में विद्यमान था; अतएव माघ का समय उसने अनुमानतः ५० वर्ष पीछे अर्थात् वि० स० ७३२ (ईसवी ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध) के लगभग होना निश्चित है ।

ना० प्र० (त्रै० न०) काशी भाग ५, सख्या २, वि० स० १९८३, ई० स० १९२६ ।

---

* टाकाकूसू, इत्सिग की यात्रा का विवरण (अग्रेजी) पृ० १७५-७६ ।

‡ टाकाकूसू, इत्सिग के यात्रा-विवरण की भूमिका पृ० ५३, ५४ ।

† एपिग्राफिया इडिका, जि० ९, पृ० १९० ।

३—कवि राजशेखर की जाति

काव्यमीमासा , कर्पूरमजरी, विद्धशालभजिका, बालरामायण, बालभारत आदि[1] ग्रथो का रचयिता प्रसिद्ध सस्कृत कवि राजशेखर किस जाति या वर्ण का था, इसका ठीक-ठीक निर्णय अब तक नहीं हुआ। काव्यमाला के सुप्रसिद्ध सम्पादक महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी (स्वर्गवासी) ने ईस्वी सन् १८८७ की काव्यमाला में राजशेखर के कर्पूरमजरी और बालभारत नाटको का बडी योग्यता के साथ सम्पादन किया, और कर्पूरमजरी की विस्तृत सस्कृत भूमिका में राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया था। उन्होंने उक्त कवि की जाति का निर्णय करते हुए लिखा था—"राजशेखर ब्राह्मण था वा क्षत्रिय, यह सदिग्ध हैं। बालरामायण आदि में वह 'उपाध्याय', 'गुरु' आदि शब्दो से अपना परिचय देता है, जिससे उसका ब्राह्मणत्व स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योकि क्षत्रिय को अध्यापनादि का अधिकार नही है। 'राजशेखर' नाम का समास (विग्रह) 'राजाओं का शेखर (शिरोमणि)' करना भी उचित नहीं है। उचित समास तो यही है कि 'राजा अर्थात् चन्द्र है शेखर जिसका', क्योकि कर्पूरमजरी की प्रस्तावना में राजशेखर नाम का पर्याय 'रजनीवल्लभ-शिखड', मिलता है, जिसका अर्थ—'रजनीवल्लभ' (चन्द्र) है, शिखड जिसका' होता है। कर्पूरमजरी की प्रस्तावना में राजशेखर कवीन्द्र की गेहिनी (स्त्री) को चाहमान कुल की मौलिमाला (सिर पर धारण करने की पुष्पमाला) कहा है। चाहमान कुल 'चौहान' नाम का प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल है, जिसमें हमीर, पृथ्वीराज आदि राजा हुए हैं। उस कुल की कन्या इस युग में ब्राह्मण की स्त्री कैसे हो सकती है ? अतएव 'राजशेखर क्षत्रिय था' ऐसा मानना भी विशेष अनुचित प्रतीत नहीं होता[2]।"

ई० स० १९०१ में क्रिस्टिआनिआ युनिवर्सिटी (नार्वे) के प्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता और सस्कृत के विद्वान् स्टीनकॉनो ने 'हार्वर्ड ओरिएटल् सीरीज' नाम की ग्रन्थमाला में राजशेखर की कर्पूरमजरी का अनेक हस्तलिखित प्रतियो के

---

1 राजशेखर के ऊपर लिखे हुए पाँच ग्रथ ही प्रसिद्धि मे आये हैं, परन्तु हेमचन्द्राचार्य ने अपने काव्यानुशासन विवेक में राजशेखर के 'हर-विलास' का नाम भी दिया है (स्वनामाकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे) (पृ० ३३५) और उसमे से दो श्लोक भी उद्धृत किये हैं। उज्ज्वलदत्त ने भी हरविलास से आधा श्लोक उद्धृत किया है (२।२८), परन्तु अब तक वह ग्रथ प्रसिद्धि में नही आया।

2 कर्पूरमजरी की सस्कृत भूमिका पृ० २–३।

आधार पर एक उत्तम संस्करण प्रकाशित किया था। उसमें राजशेखर का बहुत कुछ परिचय दिया है, जहाँ उसको यायावर ब्राह्मण मानकर लिखा है—"भारत के अधिकाश ग्रथकर्ताओ की अपेक्षा राजशेखर अपना तथा अपने कुल का विशेष परिचय देता है। बालरामायण (१. ६ १३.) और विद्धशालभंजिका (१. ५) के अनुसार वह यायावर कुल का था। हॉल (पृ० १४, टिप्पणी) यायावर शब्द का अर्थ 'यज्ञ की अग्नि का रक्षक' करता है, और नारायण दीक्षित ने विद्धशालभंजिका की टीका (१ ५.) में देवल का वचन उद्धृत कर बतलाया है कि यायावर का अर्थ 'एक प्रकार का गृहस्थ' है। "द्विविधो गृहस्थो यायावर· शालीनश्च"। गृहस्थ दो प्रकार के—यायावर और शालीन—होते हैं। परतु सभवतः यायावर एक कुटुम्ब का नाम है। यायावर ब्राह्मण है। आप्टे (पृ० १८) ने ठीक कहा है—"राजशेखर को भी ब्राह्मण मानना चाहिए; क्योंकि उसको भवभूति का अवतार माना है[3]। दूसरी बात यह भी है कि क्षत्रिय का 'उपाध्याय' या 'गुरु' होना उचित· नहीं। इसके विरुद्ध राजशेखर की पत्नी अवन्तीसुन्दरी को कर्पूरमजरी (१ ११) में चौहान कुल की मौलिमालिका कहा है[4], अतएव वह राजपूत कुल की राजकन्या थी[5]"।

ई० सं० १९१६ में श्रीयुत सी० डी० दलाल एम्० ए० ने 'गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़' में राजशेखर की काव्यमीमासा का सम्पादन करते समय उसकी अग्रेजी भूमिका में राजशेखर की जाति का निर्णय करने के प्रसग में लिखा है—"हमें यह ज्ञात हुआ है कि राजशेखर यायावर कुल का था, परन्तु यह निश्चित नहीं है कि वह ब्राह्मण था, या क्षत्रिय। यदि राजा महेन्द्रपाल का उपाध्याय होना उसके ब्राह्मण होने का समर्थन करता है, तो उसका राजशेखर नाम तथा उसकी स्त्री का चौहान वंश

---

3 बभूव वल्मीकभव पुरा कविस्तत. प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर ॥
बालभारत, १।१२

4 चाहुआणकुलमोलिमालिआ राजसेहरकइन्दगेहिणी ।
भत्तुणो किइमवन्ति सुन्दरी सा पउञ्जइउमिच्छइ ॥

कर्पूरमजरी १।११; और मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खड, पृ० १३ टिप्पण १।

5 डॉ० स्टीन कॉनो सम्पादित कर्पूरमजरी, पृ० १८०।

में उत्पन्न होना, ये उसको क्षत्रिय मानने की ओर प्रवृत्त कराते हैं[6]।"

उपर्युक्त तीनो ग्रन्थ-सम्पादको के लेखो से राजशेखर की जाति का सन्तोषजनक निर्णय नहीं होता।

राजशेखर अपने नाटको में अपना विशेष परिचय देता है। विद्धशालभंजिका और बालभारत में वह अपने को यायावर[7] बतलाता है, और बालरामायण में लिखता है—"जिस यायावर कुल में अकालजलद, सुरानन्द, तरल, और कविराज (या तरल कविराज) आदि विद्वान् हुए, उसी कुल में यह महाभाग (राजशेखर) उत्पन्न हुआ है[8]।" अतएव निश्चित है कि हमारे लेख का नायक यायावर कुल में उत्पन्न हुआ था। अब यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि यायावर कुल किस जाति या वर्ण से सम्बन्ध रखता है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि नारायण पंडित देवल का वचन उद्धृत कर यायावर नाम को गृहस्थ का सूचक बतलाता है, परन्तु उससे कवि की जाति या वर्ण का निर्णय नहीं हो सकता।

आश्रमोपनिषद् में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक ये चार आश्रम मानकर प्रत्येक आश्रम के चार-चार भेद किए हैं[9]। गृहस्थ

---

6 काव्यमीमांसा की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १४।

7 सूत्रधार—(आकर्ण्य) अये यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभंजिकानाम्न्या नाटिकाया वस्तुपक्षेपो गीयते।

विद्धशालभंजिका (कलकत्ता संस्करण) पृ० ७।

(विमृश्य च) अहो मसृणोद्धता सरस्वती यायावरस्य।

बालभारत, पृ० १।

8 स मूर्तो यत्र सीद्गुणगण इवाकालजलद·
सुरानन्द सोऽपि श्रवणपटुपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥

बालरामायण, १।१३।

9 अथातश्चत्वार आश्रमा षोडश भेदा भवन्ति। तत्र ब्रह्मचारिणश्चतुर्विधा भवन्ति ॰।१। गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति ।२। वानप्रस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति॰॰ ।३। परिव्राजका अपि चतुर्विधा भवन्ति॰॰ ।४।

माइनर उपनिषद्ज ऑटो श्रेडर, पी० एच० डी० (Otto Schrader, Ph D) सम्पादित जिल्द प्रथम, सन्यास उपनिषद्ज, ई० स० १९१२ के संस्करण (व्यडिआर लाइब्रेरी के द्वारा प्रकाशित) में आश्रमोपनिषद्, पृ० ७७।

के चार भेद--वार्तिक वृत्तिवाले, शालीन वृत्तिवाले, यायावर और घोर सन्यासिक बतलाए हैं[10]। साथ में प्रत्येक भेद की व्याख्या भी है, जिसका आशय नीचे लिखा जाता है--

(अ) वार्तिक वृत्तिवाले वे गृहस्थ हैं जो अगर्हित कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य करते हैं[11] (अर्थात् वैश्य हैं)।

(आ) शालीन वृत्तिवाले यज्ञ करते हैं, परन्तु कराते नही, अध्ययन करते हैं, कराते नहीं[12] (अर्थात् क्षत्रिय हैं)।

(इ) यायावर लोग यज्ञ करते हैं और कराते हैं, अध्ययन करते और कराते है तथा दान देते और लेते हैं[13] (अर्थात् ब्राह्मण हैं)।

(ई) घोर सन्यासिक वे लोग हैं जो (अपने हाथ से) लाए हुए शुद्ध जल से कार्य करते है और प्रति दिन उंछ वृत्ति[14] से निर्वाह करते हैं[15] (यह भी ब्राह्मणो का एक भेद होना चाहिए)।

आश्रमोपनिषद् से ऊपर उद्धृत किए हुए गृहस्थ के चार भेदो में से तीसरे भेदवालो अर्थात् यायावरो के वे ही छः कर्म बतलाए गए है, जो मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि धर्मशास्त्रो में केवल ब्राह्मण के लिये ही नियत किये गये है[16]। अतएव यायावरो का ब्राह्मण होना निर्वि-

---

10 गृहस्था अपि चतुर्विधा भवन्ति वार्तिकवृत्तय शालीनवृत्त यायावरा घोरसन्यासिकाश्चेति। आश्रमोपनिषद्।

11 वार्तिकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगर्हितमुपयुजाना शतसवत्सराभि क्रियाभिर्यजन्त आत्मान प्रार्थयन्ते। आश्रमोपनिषद्

12 शालीनवृत्तयो यजन्तो न याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृह्णन्त शत० (वही)।

13 यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददत प्रतिगृह्णन्त शत० (वही)

14 अन्न की फसल काट लेने के बाद खेतो में पडी हुई अन्न की बालियो आदि को अथवा भूमि पर बिखरे हुए अन्न के दानो को चुनकर उसी पर अपना निर्वाह करने के व्रत को उछ वृत्ति कहते है। महाभारत के नकुलोपाख्यान में एक उंछ वृत्तिवाले कुटुम्ब का अच्छा वर्णन है।

15 घोरसन्यासिका उद्धृतपरिपूताभिरद्भि कार्यं कुर्वन्त प्रतिदिवसमाहृतोच्छवृत्तिमुपयुंजाना शत० आश्रमोपनिषद्।

16 अध्यापनमध्ययन यजन याजन तथा।
दानं प्रतिगृह चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ मनुस्मृति, १।८८।
इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च।
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा॥ याज्ञवल्क्यस्मृति, ५।१२८

वाद है।

श्रीमद्भागवत में ब्राह्मणो की चार वृत्तियो में से एक यायावर वृत्ति भी मानी गई है[17]। इससे भी आश्रमोपनिषद् के कथन की पुष्टि होती है।

अब यह जानना भी आवश्यक है कि यायावर उपनामवाले ब्राह्मणो की मूल वृत्ति या जीविका किस प्रकार की थी और वे यायावर क्यो कहलाए। या-या-वर शब्द का अर्थ 'जा जा कर याचना करना या (अन्नादि की) भिक्षा मांगना' है। प्राचीन लेखको ने भी उक्त नाम का यही आशय माना है।

श्रीमद्भागवत् की टीका में श्रीधर ने लिखा है—'यायावर शब्द प्रति दिन अन्न की याचना करने का सूचक है'[18]।

विजयध्वजतीर्थ का कथन है—'यायावर एक प्रकार का भिक्षाचरण है, अर्थात् सचय न करना और एक दिन में व्रीहि आदि जो अन्न मिले, उसको उसी दिन काम में लाना सूचित करता है[19]'।

वीर राघवाचार्य का मत है—'यायावर शब्द प्रवासी का सूचक है और उसके कर्म को 'यायावर्यम्' कहते है, जो प्रवास आदि से याचना-पूर्वक सग्रह करना बतलाता है'[20]।

इन कथनो का निष्कर्ष यही है कि प्रारम्भ में जो ब्राह्मण फिर-फिर कर भिक्षावृत्ति मात्र से ही निर्वाह करते, एक दिन के निर्वाह जितना अन्न मिलने पर सन्तुष्ट रहते और सग्रह नहीं करते थे, वे यायावर कहलाते

---

17 वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम्।
विप्रवृत्तिश्चतुर्धेय श्रेयसी चोत्तरोत्तरा॥
श्रीमद्भागवत, ७।११।१६।

18 यायवरा। यायावर प्रत्यह धान्ययाचा।
श्रीमद्भागवत पर श्रीधर की टीका।

19 यायवर भैक्षचर्याविशेष। असचय एकाहित्व तत्तद्दिनार्जित व्रीह्यादेस्तद्दिन एव व्यय वार्ता यायावर ज्ञेयमेकाहित्वमसचय इति।
श्रीमद्भागवत की टीका मे उद्धृत विजयध्वज का कथन।

20 यायावर्यम्। यायावर प्रवासी। तस्य कर्म यायावर्यम्। प्रवासादिना याचापूर्वकमर्जनम्।
श्रीमद्भागवत की टीका मे उद्धृत वीरराघवाचार्य का कथन (७।११।१६)।

थे। पीछे से उस वृत्ति को छोड़ कर अन्य वृत्ति धारण करने पर भी याज्ञिक (जानी), उपाध्याय (उवजझाय, उअजझा, ओझा, झा), अध्वर्यु (अध्याय), द्विवेदी (दो वेद पढ़नेवाले, दूबे, दवे) त्रिवेदी (तिवाडी, तरवाडी), चातुर्वेदी (चौबे) आदि ब्राह्मण कुटुम्बों की प्राचीन वृत्ति की स्मृति का सूचक मात्र रह गया। ब्राह्मणों की यायावर वृत्ति बहुत प्राचीन थी, क्योंकि महाभारत में जरत्कारु ऋषि को यायावरो में प्रवर (श्रेष्ठ) कहा है।[21]

राजशेखर का चरित्र अंकित करनेवाले उपर्युक्त विद्वानों ने राजशेखर की स्त्री अवन्ती सुन्दरी के चौहान वंश की होने के कारण ही उस (राजशेखर) का क्षत्रिय होना भी सम्भव माना है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि उन्होंने हिन्दुओ की वर्तमान वर्णाश्रम व्यवस्था की ओर दृष्टि रखकर ऐसा अनुमान किया है, परन्तु हिंदुओ की वर्तमान वर्णाश्रम व्यवस्था बहुत प्राचीन नहीं है। वर्तमान समय में राजपूतो (क्षत्रियो) को छोड कर अन्य तीनो वर्णों में सैकडो जातियाँ बन गई है, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध तो दूर रहा, खाने-पीने में भी बहुत कुछ प्रतिबन्ध हो रहा है। प्राचीन काल में अति शूद्रो को छोड कर चारों वर्णों में परस्पर खान-पान में भेद न था। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक वर्ण का पुरुष अपने तथा अपने से नीचे के वर्णों में विवाह कर सकता था। सवर्ण विवाह श्रेष्ठ माना जाने पर भी अन्य वर्ण में विवाह करना धर्मशास्त्र से निषिद्ध न था। मनु के समय काम वश ब्राह्मण चारो वर्णों में विवाह कर सकता था। पीछे से याज्ञवल्क्य ने द्विजों के लिये शूद्र वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने का निषेध किया।[22] विक्रमी १० वीं शताब्दी तक के शिलालेखों में भी ब्राह्मणो के क्षत्रिय कन्याओं के साथ विवाह होने के उदाहरण कभी-कभी मिल जाते है। जैसे—

(अ) वि० स० ८८४ के मडोर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए

---

21 जरत्कारुरिति ख्यात ऊर्द्ध्वरेता महातपा ।
यायावराणा प्रवरो धर्मज्ञ शसितव्रत. ।। महाभारत १।१३।११।

22 यदुच्यते द्विजातीना शूद्राद्दारोपसग्रह ।
नैतन्मम मत यस्मात्तत्राय जायते स्वय ।।५६।।

याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय ।

शिलालेख में, जो राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है, मंडोर के प्रतिहारों के मूल पुरुष हरिश्चन्द्र के विषय में लिखा है—'उसकी दो स्त्रियो में से एक ब्राह्मण कुल की और दूसरी क्षत्रिय वर्ण की थी।'[23]

(आ) घटियाला (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए वि० स० ९१८ के प्राकृत भाषा के शिलालेख में, जो प्रतिहार राजा कक्कुक के राजत्वकाल का है, उस (कक्कुक) के पूर्व पुरुष ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की स्त्री भद्दा (भद्रा) का क्षत्रिय वर्ण की होना लिखा है।[24]

(इ) घटियाले से ही मिले हुए वि० स० ९१८ के एक सस्कृत शिला-लेख में भी वैसा ही उल्लेख है[25]।

ये उदाहरण उत्तरी भारत (उत्तरापथ) से सम्बन्ध रखते हैं; पर (दक्षिणापथ) के शिलालेखो में भी ऐसे उदाहरण मिल जाते है। प्रसिद्ध अजटा की गुफाओं से कुछ ही मीलो के अन्तर पर गुलवाडा गांव के पास की बौद्ध गुफा की पिछली दीवार में एक वडा लेख खुदा हुआ है, जिसके नीचे का बहुत कुछ अश नष्ट होने पर भी ऊपर का बहुत सा हिस्सा सुरक्षित है। उक्त लेख से पाया जाता है—"दक्षिण में उत्तम ब्राह्मणो का एक वश वल्लूर नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस वश में (भृगु, अत्रि, गर्ग और आंगिरस के समान यज्ञ) प्रकाश उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र देव हुआ जो कई राजाओ के राज्यों का स्वामी हुआ। उसका पुत्र सोम हुआ, जिसने कई ब्राह्मण और दो क्षत्रिय कन्याओ से विवाह किया। क्षत्रिय कन्या से उसके रवि

---

23 विप्र श्रीहरिचन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षतृ(त्रि)या।
''। तेन श्रीहरिचन्द्रेण परिणीता द्विजात्मजा।
द्वितीया क्षतृ(त्रि)या भद्रा महाकुलगुणान्विता॥
प्रतीहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्या येऽभवन्सुता।
राज्ञी भद्रा च यान्सूते ते भूता मधुपायिन॥
राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर) मे रक्खे हुए मूल लेख से।

24 विप्पो सिरिहरिअदो भज्ज आसित्ति खत्तिआ भद्दा।
घटियाले के शिलालेख की छाप से।

25 आसीत्प्रतीहारवन्श (वश) गुरु सद्धि(द्वि)ज श्रीहरिचन्द्र। अनेन राज्ञी क्षत्रियभद्रायां जात श्रीमान्मुत श्री रज्जिल। एपिग्राफिया इंडिका, जि० ९, पृ० २७९।

नामक पुत्र हुआ जो सारे मलय प्रदेश का स्वामी बना। ब्राह्मण कन्याओं से जो उत्पन्न हुए, वे वेदों में पारगत थे। उन ब्राह्मणो का निवासस्थान अब तक वल्लूर नाम से प्रसिद्ध है। रवि का पुत्र प्रवर, उसका राम, राम का कीर्ति और उसका हस्तिभोज हुआ जो वाकाटक वंशी राजा देवसेन के समय विद्यमान था[26]।" आगे लेख अधिक बिगडा हुआ है, जहा हस्तिभोज के वंशजो के कुछ और नाम भी थे, जिनमें से निश्चय के साथ देवराज का नाम पढा जाता है। यह शिलालेख वि० सं० की ६ वीं शताब्दी के लगभग का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार वि० स० की ६ वीं तथा १० वीं शताब्दी के शिलालेखो से पाया जाता है कि उस समय से कुछ पूर्व तक भी ब्राह्मणो के विवाह क्षत्रिय कन्याओ के साथ होते थे और प्राचीन प्रणाली का समूल उच्छेद नहीं हुआ था। ऐसी दशा में ब्राह्मण राजशेखर का क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह होने के कारण ही उसको क्षत्रिय अनुमान करना निर्मूल है। वास्तव में राजशेखर यायावर कुल का ब्राह्मण ही था।

भारत के प्राचीन विद्वानो तथा राजाओ का लिखित इतिहास न रहने के कारण सस्कृत के पंडितो ने कहीं-कहीं नामो की समानता देखकर उनके सम्बन्ध में भ्रमपूर्ण कल्पनाए करके उनके इतिहास में और भी उलझन डाल दी है। ऐसा ही भ्रम राजशेखर के विषय में भी हुआ है। माधवाचार्य ने अपने शकर विजय में लिखा है—'केरल के राजा राजशेखर ने

26 अस्ति प्रकाशो दिशिदक्षिणस्या वल्लूरनाम्ना द्विजसत्तमाना[।]' '[।।]
तस्मिन्नभूदाहतलक्षणाना द्विजन्मना प्राथमकल्पकानाम् [।]
भृग्वत्रिगर्गाङ्गिरसा समानो द्विजर्षभो यज्ञ 'प्रकाश [।।]
तदात्मवो देव इवास देव कृती गृहस्थो नयवान्क्रियावान्[।]
सराजक राष्ट्रमुपेत्य यस्मिन्धर्म्यां क्रिया: पार्थ इव प्रचक्रे [।।]
सोमःस्तत सोम इवापरोऽभूत्स ब्राह्मण क्षत्रियवशजासु [।]
[श्रुतिस्मृतिभ्या] विहितार्थकारी द्वयीसु भार्यासु मवो दधार [।।]
स क्षत्रियाया कुलशीलवत्या मुत्पादयामास नरेंद्रचिन्ह [।]
सुत सुरूप रविनामधेय कृताविपत्यं मलये समग्रे [।।]
द्विजासु चान्यासु सुतानुदारान् स (सोम?) वेदेषु समाप्तकामान् [।]
वल्लूरनाम्ना दिशि दक्षिणस्यामद्यापि येषाम्वसतिर्द्विजाना [।।]
रवे सुतोऽभूत्प्रवराभिधान: श्री (रा) मनामाथ बभूव तस्मात [।]
तदात्मज. कीर्तिरभूत्सकीर्तिर्ब्बभूव तस्मादथ हस्तिभोज [।।]
वाकाटके राजति देवसेने गु (णैषिकोशो) भुवि हस्तिभोज: [।।]

डॉ० जेम्स बर्जेस और पडित भगवानलाल इद्रजी सपादित इन्स्क्रिप्शन्स फ्रॉम दी केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इडिया, पृ० ८८–८९।

अपने रचे हुए तीन नाटक शकराचार्य को भेंट किए[27]। उक्त पुस्तक में उन नाटको का नामोल्लेख नहीं है। ई० सन् की १६ वीं शताब्दी के लेखक सदाशिव ब्रह्मेंद्र ने कामकोटि पीठ (कुभकोणम् मठ) के शकराचार्यो के वृत्तान्त की पुस्तक 'जगद्गुरुरत्नमालास्तव' में केरल के उक्त राजा के विषय में लिखा है—'एक सट्टक और तीन नाटको के रचयिता अघे यायावर राजशेखर का अघत्व, वृत्तिगगाधर[28] ने अपनी मत्र शक्ति से मिटा दिया[29]। फिर उसी (सदाशिव) के गुरु-भाई आत्मबोधेंद्र सरस्वती ने उक्त पुस्तक की टीका में केरल के उक्त राजा को कर्पूरमजरी सट्टक और बालरामायण, प्रचडपाडव (बालभारत) और विद्धशालभजिका इन तीन नाटको का कर्ता मानकर[30] केरल के राजा राजशेखर तथा हमारे इस लेख के नायक कवि राजशेखर को एक मान लिया, जो भ्रम ही है। वास्तव में ये दोनो भिन्न व्यक्ति थे।

जैसे आजकल के अनेक बंगाली लेखको में यह धुन समाई हुई है कि प्राचीन काल के प्रसिद्ध२ विद्वानो को जैसे बने वैसे बगाल निवासी सिद्ध करना और महाकवि कालिदास को भी वे अपनी हठधर्मी से बगाली बताने लग गए हैं। ऐसी ही हठधर्मी त्रावणकोर राज्य के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्रीयुत् टी० ए० गोपीनाथराव (स्वर्गवासी) ने कवि राजशेखर को केरल का राजा बतलाने में की है, और वह भी बहुत ही भद्दी तरह से। उनका कथन कवि राजशेखर की जाति से सम्बन्ध रखता है जिससे उसका सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

त्रावनकोर राज्य के पुरातत्व विभाग के पडित वी० श्रीनिवास शास्त्री (स्मृतिविशारद) को चगनाशेरि के निकट के तलमन् इल्ल गाव से एक ताम्र-

---

27 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ९–१०।

28 अभिनवशकर, वृत्ति गगाधर को उक्त मठ का तीसरा शकराचार्य बतलाता है। वही, पृ० १०।

29 कृतसट्टकस्त्रिनाटचबन्धव्रतयायावरराजशेखरान्धम्।
हृतवन्त पनन्तमन्त्रशक्ति व्रतिगङ्गाधरमाश्रयेऽर्थसूक्तिम्॥
जगद्गुरुरत्नमालास्तव (वही, पृ० १०)।

30 कृतेति कृत सट्टक कर्पूरमञ्जरीनामरूपक येन कृतसट्टक त्रिनाटचबन्धे बालरामायणप्रचण्डपाण्डवविद्धसालभञ्जिकाख्य रूपकत्रयविरचनेन यो व्रत नियमस्तेन सहितास्त्रिनाटचबन्धव्रत स च य यायावरराजशेखर नदाख्य कविस्तस्यान्ध्यमपाटवमक्ष्णोरागन्तुकत्वादिति ज्ञेयम् (वही, पृ० १०)।

पत्र वहाँ के राजा राजशेखर का मिला, जिसमें उक्त राजा के नाम के साथ 'श्रीराज,' 'राजाधिराज,' 'परमेश्वर' और 'भट्टारक' विरुद हैं। उसका सपादन करते समय श्रीयुत गोपीनाथ राव ने लिखा—"उक्त ताम्रपत्र का मिलना केरल के तथा सस्कृत साहित्य के इतिहास के लिये बहुत बड़े महत्व का विषय है"[31] वह ताम्रपत्र उक्त राजा के १२ वें राज्य वर्ष का है। उसमें कोई स० नहीं दिया, परन्तु उसकी लिपि के आधार पर उन्होने उसका समय ईसवी सन् ७५० और ८५० के बीच का स्थिर कर लिखा है—'इस राजा को तथा सस्कृत के प्रसिद्ध कवि राजशेखर को एक ही व्यक्ति मानने के प्रश्न का—जैसा कि सस्कृत के विद्वानो का मानना है—हम विचार किए विना नहीं रह सकते[32]'। फिर राजशेखर के ग्रंथों में मिलनेवाली उसके सम्बन्ध की कुछ बातें अशुद्धता के साथ उद्धृत कर उन पर अपनी ओर से टीका टिप्पणी की है। उनमें से जिन २ बातो का सम्बन्ध हमारे इस लेख से है, उनको उक्त विद्वान् की टीका के साथ नीचे उद्धृत कर साथ ही उनके कथन की जाच की जाती है।

(१–२) वह (राजशेखर) निर्भय (निर्भयनरेंद्र) उपनाम वाले महेंद्रपाल का गुरु था। उसको 'गुरू' 'उपाध्याय' आदि कहा है, और ये (गुरु आदि) विरुद बहुधा ब्राह्मणो के होते हैं, जिससे उसका ब्राह्मण होना माना जाता है; परन्तु उसको चाहमान कुल का भी कहा है, अतएव उसको क्षत्रिय ही मानना चाहिए[33]।

इस पर टीका टिप्पणी करते हुए उन्होनें लिखा है—"चाहमान नाम चेरमान के लिये अवश्य भ्रम से लिखा गया होगा। द्रविड के प्राचीन और मुख्य राजवश चेरमान का पिछले समय मे विस्मरण हो गया और अधिक नवीन एव समुन्नत राजपूतों के चौहान वंश का नाम प्रसिद्धि में रह गया, जिससे उक्त भ्रम का होना अनुमान किया जाता है। उस (राजशेखर) को गुरु, उपाध्याय और यायावर कहा है; परन्तु ये कथन उसको क्षत्रिय तथा केरल का राजा मानने में बाधक नहीं है, क्योकि बहुत प्राचीन काल से ही केरल के राजा ब्राह्मणो का सा जीवन व्यतीत करते, शास्त्रो का अध्ययन करते, जो शिष्य उनके पास अध्ययन करने को आते, उनको वे शास्त्र पढ़ाते और नियत (वृद्ध) अवस्था में अपने पुत्रादि को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ या यायावर हो जाया करते थे[34]"।

---

31 वही, पृ० ६।
32 वही, पृ० ६।
33 वही, पृ० १०।
34 वही, पृ० १०–११।

गोपीनाथ राव का यह सारा कथन बहुधा कल्पित है और राजशेखर के ग्रथो का अध्ययन सावधानी मे न करने का ही फल है, क्योंकि राजशेखर ने तो अपनी स्त्री अवतीसुदरी को चौहान वंश की बतलाया है, अपने को सर्वत्र यायाधर या यायावर कुल का कहा है, कहीं भी चौहान नहीं कहा। जब कि राजशेखर चौहान वश का नहीं था, तो फिर चौहान नाम का भ्रम से चेरमान के स्थान में लिखा जाना[35] और उसको केरल के चेरमान राजवश का मानना कैसे युक्तियुक्त कहा जा सकता है ?

(३) राजशेखर महोदय को अपनी राजधानी बतलाता और कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधिपुर नामो का उल्लेख करता है, जो महोदय के पर्याय है[36]।

इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होने लिखा है--"राजशेखर की राजधानी महोदय के लिये हमें उसके राज्य को टटोलने को अन्यत्र (अर्थात्) उत्तरी भारत में जाने की आवश्यकता नहीं है महोदय तिरुवजंक्कळम् अर्थात् कोड्डुगोळूर (वर्तमान क्रांगनोर) का प्राचीन नाम है, जैसा कि मध्ययुगीन तामिळ साहित्य और बहुत से शिलालेखादि में मिलता है। राजशेखर कन्याकुब्ज और गाधिपुर को उत्तरी भारत के महोदय नगर के पर्याय बतलाया है जो ठीक है, क्योकि जो स्थान उत्तर (उत्तरी भारत) के महोदय नगर से अधिक महत्व के है[37] उनमें अपने नायक राम का दक्षिण की यात्रा को जाते हुए पहुंचना स्वाभाविक है[38]"।

उक्त महाशय का यह कथन तो बिलकुल ही निर्मूल है और कवि राजशेखर को केरल का राजा राजशेखर ठहराने की हठधर्मी से ही लिखा गया है, जिसमें इतिहास का गला घोटने में भी कुछ कमी नहीं की गई। कवि राजशेखर अपने ग्रथो में कहीं भी अपने को महोदय (कन्नौज) का राजा नहीं

---

35 प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्टीन कॉनो ने तेरह हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर कर्पूरमन्जरी का सस्करण प्रकाशित किया, जिसमें तीन हस्तलिखित प्रतियाँ तजौर से प्राप्त की गई थी। परन्तु उनमे से एक में भी 'चाहुआण' (चौहान) के स्थान पर चेरमान पाठ नही था। यह गोपीनाथराव की हठधर्मी ही है।

36 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० १०।

37 राजशेखर के कन्याकुब्ज (? कान्यकुब्ज) और गाधीपुर दोनो महोदय (कन्नौज) के ही पर्य्याय है न कि महोदय म भिन्न तथा अधिक महत्व के नगर थे जैसा कि गोपीनाथराव ने माना है।

38 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

कहता और न महोदय को अपनी राजधानी बतलाता है। वह तो अपने तईं महोदय (कन्नौज) के राजा महेंद्रपाल का, जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय कहता है[39]। महेंद्रपाल कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार (पडिहार) सम्राट् भोजदेव (आदिवराह) का पुत्र था[40]। महेंद्रपाल के पीछे कन्नौज के राज-सिंहासन पर उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) बैठा[41], जिसके समय में भी कवि राजशेखर महोदय में रहा था, और उसके रचे हुए बाल-भारत नाटक का अभिनय महीपाल के दरबार में हुआ था। इतना ही नहीं, किंतु वह उक्त नाटक में महीपाल को रघुवंशी, आर्यावर्त का महाराजाधिराज तथा मुरल के राजा का सिर नीचा करानेवाला, मेकल के राजा के लिये हस्ति ज्वर, युद्ध में कलिंग के राजा को रोकनेवाला, केरल के राजा के आनंद का नाश करनेवाला, कुलूतवालों को जीतनेवाला, कुंतलवालों के लिये कुठार रूप और हठात् रमठ के राजा की राजलक्ष्मी को छीननेंवाला बतलाता है[42]। वास्तव में महीपाल आर्यावर्त का महाराजाधिराज और प्रबल राजा था,

---

39 पारिपार्श्विक॰। अध इ। सद्दम णच्चिदव्व
स्थापक। को उणतस्स कई।
परिपार्श्विक।
भाव कहिज्जउ एअं को भणइ रअणिवल्लहसिहण्डो।
रहुउतचूडामणिणो महिन्दवालस्स को अ गुरु ॥५॥
स्थापक। (विचिन्त्य) अए पण्होत्तर खु एद (प्रकाशम्) राअसेहरो।'
बालकई कइराओ णिब्भरराअरस्सतह उवज्झाओ'''सो अस्स कई
सिरिराअसेहरी''।''कर्पूरमजरी, प्रस्तावना।

40 मेरे राजपूताने के इतिहास का पहला खंड, पृ० १६२–६३।

41 वही, पृ० १६३।

42 कथमेते महोदयमहानगरलीलावतंसा विद्वास सामाजिका। तदेवं विज्ञापयामि। (अञ्जलिबध्वा)
नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलाना
रणकलितकलिङ्गः केलितट् केरलेन्दो।
अजनि जितकुलूत. कुन्तलाना कुठारो
हठहृतरमठश्री श्रीमहीपालदेव ॥७॥
तेन च रघुवशमुक्तामणिना आर्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्र-नन्दनेनाधिकृता. सभासद.' ' '

बालभारत की प्रस्तावना।

जिसके अधीन राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, मध्यभारत एव सतलज से लेकर बिहार तक का प्रदेश था। यदि गोपीनाथराव के कथनानुसार कवि राजशेखर केरल का राजा था, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कन्नौज के राजा महेंद्रपाल और महीपाल के यहां क्या वह नौकरी करने गया था? यदि राजशेखर केरल का राजा होता, तो कन्नौज के राजा महीपाल को वह "केरल के राजा के आनन्द का नाश करनेवाला कहे" यह कैसे सभव हो सकता है? वास्तव में हमारे कवि राजशेखर का उक्त नाम के केरल के राजा से कुछ भी सम्बन्ध न था।

गोपीनाथ राव नें कन्नौज के राजा महेंद्रपाल का, जिसका राजशेखर गुरु या उपाध्याय था, कुछ भी परिचय नहीं दिया। ऐसे ही उस (महेंद्रपाल) के पुत्र महीपाल के विषय में भी मौन धारण किया, जिसका कारण यही है कि यदि वे इन दोनो राजाओ को महोदय के राजा या आर्यावर्त के महाराजाधिराज कह देते, जैसा कि कवि राजशेखर ने अपने नाटको में लिखा है, तो फिर राजशेखर को महोदय का राजा कहने की कोई गुंजाइश ही उनके लिये न रहती।

इसी तरह उक्त महाशय का महोदय को कन्नौज न मानकर केरल का क्रांगनोर नगर मानना भी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता, क्योकि राजशेखर बालरामायण में उक्त नगर का गगा के तट पर होना बतलाता है, इतना ही नहीं किन्तु सीता को महोदय नगर बतलाने के प्रसग में उसी नगर को गाधिपुर और कान्यकुब्ज भी कहा है और कान्यकुब्ज के साथ फिर गगा नदी का उल्लेख किया है[43]। यदि गोपीनाथ राव राजशेखर के नाटको को ठीक-ठीक पढते, तो उनको अपना दुराग्रह स्वय प्रतीत हो जाता।

(४) राजशेखर अपने प्रपितामह अकालजलद को महाराष्ट्रचूडामणि और अपने एक पूर्वपुरुष सुरानद को चेदिमडल का बतलाता है[44]।

---

43 इद पुनस्ततोऽपि मन्दाकिनीपरिक्षिप्त महोदय नाम नगर दृश्यते।

शश्वत् सुधामवसुधामहित द्विपद्भि-
नो गाहित भवति गाधिपुर पुरस्तात्।
वैदेहि देहि शफरीसदृश दृश त-
दस्मिन्नितम्बिनि नितम्बवहद्युसिन्धौ॥
इद द्वय सर्वमहापवित्र परस्परालकरणैकहेतु।
पुर च हे जानकि कान्यकुब्ज सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला॥
बालरामायण, १०।८८–८६।

44 ट्रावनकोर आर्कियालॉजिकल् सीरीज, जि० २, पृ० ११।

इस पर अधिक विवेचन करते हुए उन्होने लिखा है—"भिन्न वंशो के इन दो राजाओ को राजशेखर ने अपना पूर्वज वतलाया है, जो असंगत प्रतीत होता है; और इसका समाधान तभी हो सकता है जब कि हम उनको उसके ननिहाल पक्ष के पूर्वपुरुष मानें[45] ।" राजशेखर को तो उन्होने केरल का राजा मान ही लिया था, इसलिये उसके पूर्वपुरुषो को भी राजा वतलाने की उनको आवश्यकता हुई । परन्तु केरल के राजा में अकालजलद, सुरानन्द आदि के नाम न मिलने से राजशेखर के वतलाए हुए उसके पूर्वपुरुषो के नामो को असगत कहना पड़ा और उनको भी कही न कहीं के राजा वतलाने की आवश्यकता हुई । महाराष्ट्र के राष्ट्रकूट (राठौड) वशी राजा कृष्णराज (प्रथम) का विरुद अकालवर्ष मिल जाने से अकालजलद को तो महाराष्ट्र का राठोड राजा अकालवर्ष (कृष्णराज) और सुरानद को चेदि देश का कलचुरि (हैहय) वशी रणविग्रह (शकर गण) अनुमान कर अपने चित्त को शात करना पड़ा । परंतु उनका यह कथन भी सर्वथा कल्पित एव अरण्यरुदन के समान है; क्योकि राजशेखर ने बालरामायण में अपने कुल का परिचय देते हुए अकालजलद, सुरानन्द, तरल और कविराज को अपना पूर्व पुरुष बतलाया है[46] और उनको कवि तथा यायावर कहा है, न कि कहीं का राजा । अकालजलद को महाराष्ट्र चूडामणि कहा है जिसका अर्थ महाराष्ट्र देश का राजा नही, किंतु वहा के विद्वानों या कवियों का शिरोमणि है । इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि शायद वह महाराष्ट्र का निवासी हो । जल्हण पडित ने अपनी सूक्तिमुक्तावलि में अकालजलद के सम्बन्ध का एक श्लोक राजशेखर का कहकर उद्धृत किया है, जिसका आशय यह है—"कविचकोर अकालजलद की वचन-चन्द्रिका का नित्य पान करते है, तो भी उसमें न्यूनता नहीं आती[47] " । यह तो उसकी उत्तम कविता की प्रशंसा ही है । वह उत्तम कवि था न कि राठौड राजा ।

अकालजलद और अकालवर्ष नामों में कुछ सादृश्य तो अवश्य है, परन्तु सुरानन्द और रणविग्रह नामो में सादृश्य का सर्वथा अभाव होने पर भी गोपीनाथ राव ने सुरानद को चेदि का कलचुरिवशी राजा रणविग्रह

45 वही, पृ० ११ ।

46 देखो ऊपर १६४ टिप्पणी † ।

47 अकालजलदेन्दो सा हृद्या वचनचन्द्रिका ।
नित्य कविचकोरैर्या पीयते न च हीयते ।।

सूक्तिमुक्तावलि ।

कैसे ठहरा लिया, यह बतलाना भी आवश्यक है। जल्हण पंडित ने सूक्ति-मुक्तावलि में सुरानंद की प्रशंसा में राजशेखर का एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसका अभिप्राय यह है—"नदियों में नर्मदा, राजाओं में रण-विग्रह और कवियों में सुरानन्द ये तीनों चेदि मंडल (देश) के भूषण हैं[48]। उक्त श्लोक से ही सुरानन्द का चेदि देश से सम्बन्ध पाया जाता है, परन्तु उसमें तो उस (सुरानन्द) को उत्तम कवि एवं वहां के राजा रणविग्रह से भिन्न पुरुष कहा है। परन्तु गोपीनाथ राव ने रणविग्रह और सुरानन्द के नाम पास-पास आए देखकर सुरानन्द को चेदी का राजा रण-विग्रह मान लिया, क्योंकि उनको तो सुरानन्द को भी कहीं न कहीं का राजा ठहराना ही था। खेद की बात तो यह है कि इस प्रकार व्यर्थ ही बहुत कुछ हाथ पैर मारने पर भी वे तरल और कविराज को कहीं के राजा न बना सके और इसी से उनके नामों का उन्होंने उल्लेख तक नहीं किया।

गोपीनाथ राव का कवि राजशेखर की जाति के सम्बन्ध का ऊपर लिखा हुआ सारा कथन प्रमाणशून्य, निस्सार और दुराग्रहपूर्ण होने से किसी प्रकार आदरणीय नहीं है, क्योंकि न तो कवि राजशेखर चाहमान (चौहान) वंश का था, न चाहमान पाठ चेरमान के स्थान में भ्रम से लिखा जाना मानने के लिये कोई कारण है, न राजशेखर, महोदय या केरल का राजा था, न उसने महोदय नाम का प्रयोग केरल के क्रागनोर नगर के लिये किया है, न उसका प्रपितामह राठौड़ वंश का राजा अकालवर्ष था और न सुरानन्द, चेदि का कलचुरिवंशी राजा रणविग्रह था। कवि राजशेखर कहीं का राजा नहीं, किंतु महोदय (कन्नौज) के प्रतिहार सम्राट् महेंद्रपाल का गुरु (उपाध्याय) और यायावर कुल का ब्राह्मण ही था*।

ना० प्र० स० (त्रै० न०) काशी भाग ६, स० २
वि० स० १९८२ ई० स० १९२५

---

48 नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम् ।।
सूक्तिमुक्तावलि ।

सम्पादकीय टिप्पण

* स्वर्गीय डाक्टर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कवि राजशेखर की जाति पर विचार करते हुए भिन्न २ तर्क और कल्पनाओं के आधार पर उसका

यायावर जाति का ब्राह्मण माना है। जयसलमेर के बडे भडार के सग्रह (बस्ता स० २३८) में राजशेखर कृत 'छन्दशेखर' नामक छन्द शास्त्र पर संस्कृत में लिखा हुआ ग्रथ विद्यमान है, जिसके पाँचवे अध्याय के अन्त में वि० स० ११७६ (ई० स० ११२७) उक्त ग्रथ चित्रकूट महादुर्ग (चित्तौडगढ) मे लिखे जाने का निर्देश है। वहीं उसका कुछ परिचय भी दिया है, जो निम्नलिखित है—

यस्यासीत्प्रपितामहोयसइति श्रीलाहटस्त्वयिक—
स्तात्ष्ठक्कुरदुद्दकः सजननी श्रीनागदेवी स्वयम् ।।
सश्रीमानिह राजशेखरकवि श्रीभोजदेवीप्रिय
छन्दःशेखर महितोऽप्यरचयत्प्रीत्यै सभूयात्सताम ।।२३८।।

इति राजशेखरकृतेछन्द शेखरे शीर्षकोत्साहादि षट्चतुर्द्विपदीध्रुवकाणि पञ्चमोध्यायः ।।

इत्याहतश्रीराजशेखरकृतछन्द शेखर नामछन्द. शास्त्रंपरिसमाप्त मिति ।। सवत् ११७६ ज्येष्ठ सुदि ५ शुक्रेह अद्येह श्री चित्रकूटमहादुर्गे प्राकृतच्छन्द लिखित मिति ।।

श्री एच० डी० वेलकर ने जर्नल ऑफ दि बॉम्बे ब्राच ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जिल्द २२ (१६४६ ई०) पृ० १ में छन्द शेखर ऑफ राजशेखर कवि शीर्षक लेख में इस विषय पर विचार करते हुए राजशेखर को जैन बतलाकर उसके परदादा का नाम यश, दादा का नाम लाहट, और पिता का नाम दूदक तथा माता का नाम नागदेवी माना है, जैसा कि उपरोक्त श्लोक सख्या २३८ में उल्लिखित है। इसके साथ ही उसको ठक्कुरवंशी (क्षत्रिय ?) और मालवे के परमार राजा भोज का समकालीन माना है।

स्पष्ट है कि डॉ० ओझा वर्णित कवि राजशेखर और छन्द शेखर का रचयिता राजशेखर भिन्न २ व्यक्ति है, जो प्रतिहारवशी राजा भोजदेव के आश्रित कवि राजशेखर के लगभग २५० वर्ष पीछे हुआ।

———

४—कविराजशेखर का समय

प्रसिद्ध संस्कृत कवि राजशेखर की जाति के सम्बन्ध का एक लेख मैंने इसी वर्ष की नागरीप्रचारिणी पत्रिका (अक २, पृ० १६२–२०६) में प्रकाशित किया है। इस लेख के द्वारा यहा के पाठको के सन्मुख उक्त कवि के समय-निर्णय की चर्चा की जाती है। प्राचीन काल के भारतीय विद्वानो का लक्ष्य निवृति मार्ग की ओर होने से उनमें से बहुत ही कम ने अपने ग्रन्थो में अपना तथा वश आदि का परिचय दिया है, और अपने ग्रन्थो की रचना का समय तो और भी कम विद्वानो ने अकित किया है, जिसमे अनेक विद्वानो का ठीक ठीक समय निर्णय करना एक कठिन समस्या हो गई है। ऐसी दशा में उनके समय निर्णय के लिये उनके ग्रथो में दी हुई कुछ बातें ही कभी कभी सहायक होती है, जिससे उनका समय निर्णय करने का यत्न करने वाले विद्वानो में बहुधा मतभेद हुआ करता है। राजशेखर के समय के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ है। अब तक हिन्दी साहित्य में प्राचीन भारतीय कवियो एव विद्वानो के समय निर्णय के सम्बन्ध में बहुत ही कम लिखा गया है। अतएव यदि कभी कभी इस विषय की चर्चा होती रहे, तो हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक अश की अणुमात्र वृद्धि होने के अतिरिक्त हिन्दी के अनुरागियो को अपने यहां के प्राचीन काल के प्रसिद्ध विद्वानो की जीवन-लीला का ठीक समय जानने का कुछ कुछ साधन भी उपलब्ध हो जाय।

भिन्न भिन्न विद्वानो ने काव्यमीमासा, कर्पूरमजरी, बालरामायण, बालभारत, विद्धशालभजिका आदि ग्रथो के प्रसिद्ध कवि राजशेखर का समय भिन्न-माना है, जिसका परिचय नीचे दिया जाता है।

(अ) प्रोफेसर मैक्समूलर ने ईसवी १४वीं शताब्दी में राजशेखर का होना माना है[1]।

संस्कृत लेखको में राजशेखर नाम के एक से अधिक विद्वान् हुए हैं, जिनमें से चतुर्विशतिप्रबन्ध कर्ता जैन राजशेखर[2] ने अपना ग्रथ वि० स० १४०५ (ई० स० १३४८) में समाप्त किया, यह उक्त ग्रथ के अत में दिए हुए सवत्

---

1 मैक्समूलर, 'इण्डिआ, व्हाट कैन इट टीच अस्' ? पृ० ३२८।

2 जैन राजशेखर प्रश्न वाहन कुल के कोटिकगण के मध्यम शाखान्तर्गत हर्षपुरीयगच्छ के अभय देवसूरि (मलधारी) की शिष्यपरपरागत तिलकसूरि का शिष्य था। उसने दिल्ली में रह कर जगतसिंह के पुत्र साह महणसिंह की प्रेरणा से वि० स० १४०५ में चतुर्विशति प्रबन्ध (प्रबधकोष) की रचना की थी।

से ज्ञात होता है[3]। इसी से प्रोफेसर मैक्समूलर ने जैन राजशेखर को तथा कर्पूरमंजरी आदि के इस नाम वाले कर्ता को एक मान कर हमारे लेख के नायक का समय भी ईसवी १४वी शताब्दी स्थिर किया, जो किसी प्रकार माननीय नहीं हो सकता, क्योंकि उन दोनो के बीच में कई शताब्दियो का अन्तर है। इतना ही नहीं, किन्तु दोनो की भाषा में भी कोई समानता नहीं है। जैन राजशेखर की भाषा वैसी परिमार्जित और सरस नहीं है, जैसी कर्पूरमजरी आदि के कर्ता की है।

(आ) हेमन हॉरेसे विल्सन ने उक्त कवि का जीवन काल ईसवी ११वीं शताब्दी के अत या १२ वीं के प्रारम्भ में स्थिर किया है[4]।

(इ) डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भाडारकर ने ईसवी १०वीं शताब्दी में[5] प्रॉफेसर स्टीन कॉनो ने ई० स० ९०० (वि० स० ९५७) के आसपास[6] सी० डी० दलाल ने ई० स० ८८० (वि०स० ९३७) और ९२० (वि०स० ९७७) के बीच[7], और डॉ० कीलहॉर्न ने सीयडोनी[8], से मिले हुए शिलालेख का सपादन करते समय प्रसगवशात् कवि राजशेखर का ईसवी दसवीं शताब्दी के प्रारंभ में होना बतलाया है[9]।

(ई) राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार कहा है, जिसके आधार पर वामन शिवराम आपटे ने इन दोनों के बीच अनुमान सौ वर्ष का अतर होना मानकर राजशेखर का ईसवी ८वीं शताब्दी के अत में होना स्वीकार किया है[10]।

---

3 शरगगनमुनिमिताब्दे (१४०५) ज्येष्ठामूलीय धवलसप्तम्यां निष्पन्नमिदं शास्त्र श्रोत्रध्येत्रो सुख तन्यात् ॥

(चतुर्विशति प्रवन्ध के अंत में)

4 विलसन्, 'हिन्दू थियेटर', जि० २, पृ० ३६२।

5 डॉ० रामकृष्ण गोपाल भाडारकर 'हस्तलिखित सस्कृत पुस्तको की खोज की ई० स १८८२–८३ की अग्रेजी रिपोर्ट' पृ० ४४।

6 स्टीन कानो, हार्वर्ड ओरिएटल सीरीज में सपादित कर्पूरमजरी, पृ० १७९

7 सी० डी० दलाल, 'गायकवाड ओरिएटल सीरीज में मुद्रित काव्य मीमासा की अग्रेजी भूमिका,' पृ० १५।

8 सीयडोनी (सीरोण खुर्द) गाव संयुक्त प्रदेश के ललितपुर जिले में ललितपुर नगर से दस मील उत्तर पश्चिम की ओर है।

9 'एपिग्राफिया इडिका,' जि० १ पृ० १७१।

10 वामन शिवराम आपटे, 'राजशेखर, हिज़ लाईफ एंड राईटिंग्ज,' पृ० ४

(उ) राजशेखर के शिष्य महोदय (कन्नौज) के राजा महेन्द्रपाल के दिघ्वादुवौली [11], गाव से मिले हुए वि० स० ९००, ५०, ५ (९५५) के दानपत्र का सपादन करते समय डॉ० फ्लीट ने उसके सवत् को, जो प्राचीन शैली के अनुसार अक्षर सकेत से दिया हुआ था, १००, ५०, ५ (१५५) पढा, उक्त सवत् को हर्ष सवत् मानकर राजा महेंद्रपाल का ई० स० ७६१ (वि० स० ८१८) में होना स्थिर किया[12] डॉ० फ्लीट के इस अशुद्ध पढे हुए सवत् के आधार पर प्रोफेसर पीटर्सन और महामहोपाध्याय पडित दुर्गाप्रसादजी (काव्यमाला के सपादक) ने वल्लभदेव की सुभाषितावली की अग्रेजी भूमिका में राजशेखर का ई० स० ७६१ (वि० स० ८१८) के लगभग विद्यमान होना अनुमान किया है[13] ।

(ऊ) ए० वोरुहा ने ईसवी ७वीं शताब्दी में उक्त[14] कवि का अस्तित्व माना है ।

इस प्रकार भिन्न भिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी गवेषणा के अनुसार ईसवी ७ वीं शताब्दी से लेकर १४ वीं तक के भिन्न भिन्न समय उक्त कवि के लिए स्थिर किये है । अतएव हमें यह निर्णय करना आवश्यक है कि वास्तव में राजशेखर कब हुआ ?

उक्त कवि ने अपने ग्रथो में से किसी में भी उसकी रचना का सवत् नहीं दिया । तो भी उनमें मिलने वाले आभ्यतरिक प्रमाण उसका समय निर्णय करने में अवश्य सहायक होते है ।

कर्पूरमजरी की प्रस्तावना में वह अपने को महोदय (कन्नौज) के राजा रघुकुल चूडामणि महेन्द्रपाल का जिसका उपनाम निर्भयनरेंद्र था, गुरु या उपाध्याय बतलाता है[15], और बालभारत की प्रस्तावना मे आर्यावर्त के महाधिराज, रघुवश मुक्तामणि एव निर्भयनरेंद्र के पुत्र महीपाल के समय उसकी राजधानी महोदय (कन्नोज) नगर में अपनी विद्धशालभजिका नाटिका का अभिनय होना सूचित करता है[16] ।

---

11 दिघ्वादुवौली गाव बिहार प्रात के सारन जिले के गोपालगज विभाग के गोपालगज नगर से पचीस मील अग्निकोण में है ।

12 इडियन् 'एँटिक्वेरी', जि० १५, और पृ० ११० और ११२–१३ ।

13 सुभाषितावलि की अग्रेजी भूमिका, पृ० १०१ ।

14 भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन सस्कृत लिट्रेचर, पृ० १७ ।

15 नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ६, पृष्ठ २०५ की टिप्पणी* ।

16 वही भाग ६, पृ० २०६ की टिप्पणी* ।

महेंद्रपाल (निर्भयनरेंद्र) और उसका पुत्र महीपाल दोनों कन्नौज के प्रतिहार (पडिहार) वंशी सार्वभौम राजा थे, जिनके दरबार में राजशेखर विद्यमान था[17]। अतएव यदि इन दोनों राजाओ के समय का ठीक ठीक निर्णय हो जाय, तो राजशेखर का ठीक समय भी निश्चित हो जायगा।

अनेक पुरातत्व वेत्ताओं के श्रम से असख्य प्राचीन शिलालेख, दानपत्र आदि प्रसिद्धि में आए हैं, जो भारतवर्ष के भिन्न भिन्न विभागों पर राज्य करने वाले अनेक राजवंशो के अधकार में पडे हुए प्राचीन इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालते है। इतना ही नहीं, किन्तु कई राजाओ, कवियों आदि के निश्चित समय भी उनसे ज्ञात हो जाते है।

कन्नोज का प्रतिहार वशी राजा महेंद्रपाल, राजा भोजदेव (आदि वराह मिहिर) का पुत्र (उत्तराधिकारी) था। उक्त भोजदेव के पांच लेख अब तक उपलब्ध हुए हैं, जिनमें सबसे प्रथम दौलतपुरा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ वि० स० ९०० फाल्गुन सुदी १३ का दानपत्र है, जो राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसका सबसे पिछला शिलालेख पेहोआ से मिला है, जो हर्ष सवत् २७६ (वि० स० ९३८) वैशाख सुदी ७ का है। इन दोनो से निश्चित है कि वि० स० ९०० से ९३८ तक तो कन्नौज का स्वामी भोजदेव था, और सभव है कि वि० स० ९३८ के पीछे भी कुछ वर्षों तक जीवित रहा हो।

भोजदेव के पीछे उसका पुत्र महेंद्रपाल कन्नोज के राज-सिहासन पर बैठा, जिसका गुरु (उपाध्याय) राजशेखर था। उसके समय के दो शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले है। जो वि० स० ९५०–९६४ तक के है। उनमें सब से पहला वल्लभी सवत् ५७४ (वि० स० ९५०) का ऊना (काठियावाड़ के जूनागढ़ राज्य में) गाँव से मिला हुआ दान-पत्र और सबसे पिछला वि०

---

17 राजपूताने का इतिहास, पहला खड पृष्ठ ६२–६३ और १६७।

स० ६६४ का सीयडोनी का शिलालेख है[18]। महेन्द्रपाल के पीछे उसका पुत्र महीपाल (क्षितिपाल) कन्नौज के राज-सिंहासन पर बैठा। उसके समय में भी राजशेखर कन्नौज में ही रहता था। महिपाल के समय का एक दानपत्र शक स० ८३६ (वि० स० ९७१)[19] का हड्डाला गांव (काठियावाड) और एक शिलालेख वि० स० ९७४[20] का अस्नी गांव से मिला है।

कन्नौज के इन तीन राजाओ के शिलालेखो और दानपत्रो के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि राजशेखर वि० स० ९५० के लगभग से लेकर ९७० के लगभग तक कन्नौज में रहा था, और यही उसका कविता काल भी स्थिर किया जा सकता है।

हमारे इस कथन की पुष्टि राजशेखर की विद्धशालभजिका' नाटिका से भी होती है। उसकी प्रस्तावना से पाया जाता है कि उसका अभिनय श्री युवराजदेव की राजसभा में हुआ था[21]। प्रो० विलसन ने श्री युवराजदेव शब्द का अर्थ राजा का ज्येष्ठ पुत्र माना है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि प्रारभ का 'श्री' और अन्त का 'देव' अश उसका राजा होना बतलाता है, न कि राजकुमार। वास्तव में युवराजदेव त्रिपुरी (चेदी देश की राजधानी) के हैहय (कलचुरी, करचुली) वशी राजा का नाम है[22]। उक्त वश में युवराजदेव नाम के दो राजा हुए, जिनमें से विद्धशालभजिका का युवराजदेव इस नाम का पहला राजा था, जिसका उपनाम केयूरवर्ष (कर्पूरवर्ष)[23] भी मिलता है। विद्धशाल-

18 वही, पृष्ठ १६२, टिप्पणी ३।

19 वही, पृष्ठ १६३ टिप्पणी २।

20 वही, पृष्ठ १६३, टिप्पणी ३।

21 सूत्रधार-(आकर्ण्य) अय! यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचितायां विद्धशालभञ्जिका नाम नाटिकायां वस्तूपक्षेपो गीयते (विभाव्य) तन्मन्ये तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिपदाज्ञा। तदहमपि मन्त्रिणो भागुरायणस्य प्रतीकवृत्या शिष्यैर्विहितचारुनाम्नोऽन्ते वासिनो हरदासस्य भूमिका सम्पादयामि।

22 युवराजदेव के लिए देखो—खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, का छपा हुआ, हिन्दी टॉड राजस्थान, प्रथम खड, पृष्ठ ४९४–९७, जहां मैंने उसके वश की पूरी वशावली दी है।

23 शिलालेखो में युवराजदेव का उपनाम (खिताब) केयूरवर्ष मिलता है, परन्तु कलकत्ते की छपी हुई विद्धशालभजिका में कर्पूरवर्ष पाठ है, जो शायद केयूरवर्ष का ही बिगडा हुआ रूप हो। शुद्ध पाठ केयूरवर्ष ही होना चाहिए।

भजिका की प्रस्तावना से पाया जाता है कि युवराजदेव का मंत्री भागुरायण था। उसी नाटिका के चौथे अक में कुरङ्गक नाम का एक पुरुष राजा के सेनापति श्रीवत्स का पत्र लाकर राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) के सामने रखता है और मन्त्री भागुरायण उसे लेकर पढ़ता है। पत्र लम्बा चौड़ा है, जिसमें सेनापति की विजय आदि का वृत्तान्त है। उसके प्रारभ में ही सेनापति ने नर्मदा (तुहिनकरसुता) के तट-स्थित त्रिपुरी के राजा कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) को प्रणाम लिखा है और आगे इसको करचुली (कलचुरि) तिलक कहा है[24]। नर्मदा तट पर की नगरी त्रिपुरी हैहय (कलचुरी, करचुली) वशी राजाओ की राजधानी थी। विद्धशालभजिका से निश्चित है कि युवराजदेव (प्रथम) और कर्पूरवर्ष (केयूरवर्ष) एक ही राजा के नाम और उपनाम है। अतएव राजशेखर का त्रिपुरी के राजा युवराज देव (प्रथम) का समकालीन होना भी निश्चित है।

युवराजदेव (प्रथम) के समय का कोई शिलालेख या दानपत्र अब तक नहीं मिला, जिससे उसका ठीक ठीक समय निर्णय किया जा सके। परन्तु बिल्हारी से मिली हुई युवराजदेव (दूसरे) के समय की बडी प्रशस्ति से पाया जाता है कि युवराजदेव (प्रथम) के प्रपितामह कोकल्लदेव ने उत्तर (कन्नोज) में भोजदेव और दक्षिण में कृष्णराज (राठोड) रूपी दो कीर्तिस्तभ

---

24 तत प्रविशति कुरङ्गक । (प्रणम्य) जेदु जेदु भट्टा (लेख प्रक्षिपति) भागुरायण। गृहीत्वा वाचयति

स्वस्ति श्रीमत्त्रिपुर्य्यां तुहिनकरसुतावीचिवाचालितायां
देव कर्पूरवर्ष विनयनतशिरा सर्व सेनाधिनाथ ।
श्रीवत्सोवत्सलत्वान्मुरलजनवधूलोचनैरर्ध्यवान
पादद्वन्द्वारविन्दे क्षणमभिरचयत्यजलिं मूर्ध्नि भक्त्या ॥ १८ ॥

श्रेयोन्यत् कार्य्यं च लिख्यते । करचुलितिलकस्य पार्थिवस्य तव प्रतापेन महामन्त्रि भागुरायणस्य मतिवैशद्येन मादृशाना च पदातिलवानामादेशनिर्वहणेन प्राचीप्रतीच्युदीची दिग्विभागे सर्व एव राजानश्चण्डवृत्तयो दण्डोपनता स्थिता केवलमवाचीक्षितिपतयो दृश्यन्ते स्म ।

विद्धशालभजिका (कलकत्ता सस्करण) पृष्ठ १४५–४६ ।

कलकत्ते के उक्त सस्करण में त्रिपुर्यां के स्थान में नृपुर्यां छपा है, जो अशुद्ध पाठ है, क्योकि नर्बदा तट पर की कलचुरियों की राजधानी का नाम शिलालेखो में त्रिपुरी मिलता है, न कि नृपुरी ।

स्थापित किये थे[25]। अर्थात् कोकल्लदेव, कन्नौज के प्रतिहार भोजदेव और दक्षिण के राठौड कृष्णराज का समकालीन था। भोजदेव कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजा महीपाल (क्षितिपाल) का दादा महेन्द्रपाल का पिता था, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। अतएव कन्नौज का महीपाल और त्रिपुरी का युवराजदेव (प्रथम) ये दोनो भी समकालीन होने चाहिए। इन दोनों के यहाँ राजशेखर रहा था, ऐसी दशा में हमारा ऊपर निर्णय किया हुआ राजशेखर का समय अयुक्त नहीं है।

उपर्युक्त दोनो प्रकार के प्रमाणो के अतिरिक्त बाह्य प्रमाण भी हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। राजशेखर काव्यमीमासा में वाक्पतिराज[26] उद्भट[27] और आनन्द (आनन्दवर्धन)[28] के मत उद्धृत करता है। गउडवहो का कर्ता वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के (जिसको काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया था) समय अर्थात् विक्रमी ८वीं शताब्दी में हुआ। उद्भट काश्मीर के राजा जयापीड (वि० स० ८०८–३९ के लगभग) का सभापति था और आनन्द (आनन्दवर्धन) काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (वि० स० ९१२–४० के लगभग) के समय विद्यमान था। अतएव राजशेखर का इन तीनो के पीछे होना निश्चित है।

अब यह भी देखना चाहिए कि राजशेखर का उल्लेख उसके पिछले निकटवर्ती ग्रन्थकारो में से किस किसने किया है। सोमदेव के शक संवत् ८८१

---

25 जित्वाकृत्स्ना येन पृथ्वीमपूर्व–
क्कीर्त्तिस्तम्भद्वन्द्व मारोप्यते स्म।
कौम्भोद्भ्व्यान्दिश्योसौ कृष्णराज
कोवेर्याञ्च श्रीनिधिर्भोजदेव ॥ १७ ॥
एपिग्राफिया इडिका, जिल्द १, पृष्ठ २५६।

26 "पुराणकविक्षुण्णे वर्त्मनि दुरापमस्पृष्टं वस्तु ततश्च तदेव मस्कर्तुं प्रयतेत" इति आचार्या।
"न" इति वाक्पतिराज. काव्यमीमासा, पृष्ठ ६२।

27 पदानामभिविल्सितार्थग्रन्थनाकार सन्दर्भोवाक्यम्। तस्य च त्रिधाऽभिधा व्यापार" इत्यौद्भटा। काव्यमीमासा, पृष्ठ २२।

28 "प्रतिभाव्युत्पत्त्यो प्रतिभा श्रेयसी" इत्यानन्द।
काव्यमीमामा, पृष्ठ १६।

(वि० सं० १०१७) के बने हुए यशस्तिलकचम्पू[29] में, तथा वि० सं० १०४७ के लगभग की बनी हुई सोड्ढल कवि की उदयसुन्दरी कथा[30] में राजशेखर का उल्लेख मिलता है। अतएव राजशेखर का वि० सं० १०१७ के पूर्व होना भी निश्चित है। इनसे पीछे के तो अनेक विद्वानो ने राजशेखर की काव्यमीमासा से अपने ग्रंथो में कुछ कुछ अश उद्धृत किए हैं, जिनके उल्लेख की हमें आवश्यकता नहीं। इन सब प्रमाणो को देखते हुए राजशेखर का कविता-काल वि० स० ९५० और ९७० के लगभग माना जा सकता है।

ना० प्र० प० (त्रै० न०) काशी भाग ६, सख्या ४
वि० स० १९८२ ई० स० १९२५

---

29 प्रोफेसर पीटर्सन की सस्कृत पुस्तको की खोज की दूसरी रिपोर्ट, पृ०४५

30 यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञै–
राशसितः सूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदार भणिते गुणस्था
नटीव यस्योढरसा पदश्री ।।

उदयसुन्दरी कथा, पृष्ठ १५४ (गायकवाड ओरिएटल सीरीज, ग्रन्थ सख्या ११)

सोड्ढल ने अनेक नाटको के प्रसिद्ध लेखक राजशेखर की प्रशसा करते हुए राजशेखर का नाम न देकर उसको यायावर ही कहा है, जिसका कारण यह है कि राजशेखर यायावर नाम से ही अधिक प्रसिद्ध था। वह अपनी काव्य-मीमासा के प्रारभ ही अनेक नामो के साथ यायावरीय शब्द जोडकर अपना परिचय देता है—

यायावरीयः सडिक्षप्य मुनीना मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमासा कविभ्यो राजशेखरः ।।

काव्यमीमासा पृष्ट २

और आगे अनेक स्थलो मे जहाँ-जहाँ अपना मत उद्धृत करता है, वहाँ वहाँ 'इति यायावरीय' (यह मेरा मत है) ही कहता है। अपना नाम कही नही देता।

५–गुजरात से मिले हुए प्रतिहारों तथा राजपूताना से मिले हुए सोलंकियों के दानपत्र और शिलालेख

प्राचीन काल में "गुर्जर" नामक एक राजवश था, जिसके मूल पुरुष के नाम से उसके वशधर "गुर्जर" कहलाये और उनके अधीन का देश गुर्जर देश अथवा गुर्जरत्रा (गुर्जरो से रक्षित देश) नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन काल में यह देश वडा विस्तृत था और वर्तमान जोधपुर राज्य के सारे उत्तर-पूर्वी भाग से लगाकर भडोच राज्य (गुजरात में) तक उसका विस्तार था। इस समस्त गुर्जर देश की प्राचीन राजधानी भीनमाल (श्रीमाल) थी, जो जोधपुर राज्य के दक्षिणी विभाग में है। गुर्जरो से भीनमाल का राज्य चावडा वशियो ने लिया और उनसे रघुवशी प्रतिहारो ने।

उनकी वशावली नागभट से आरभ होती है। उसकी तीन पीढी वाद नागभट (दूसरा) हुआ, जिसने चक्रायुध को परास्त कर कन्नौज का राज्य छीना और उसी के समय से गुर्जर देश के इन प्रतिहारो की राजधानी कन्नौज हुई, जिससे उन्हें कन्नौज के प्रतिहार भी कहते हैं। उसके पुत्र भोजदेव की ग्वालियर की बृहत् प्रशस्ति से पाया जाता है कि उस (नागभट, दूसरा) ने आन्ध्र, सैंधव, विदर्भ (वरार) आदि के समान आनर्त (दक्षिणी काठियावाड) को भी विजय किया था[1]। कन्नौज के इन प्रतिहारो के अव तक गुजरात से निम्नलिखित चार दानपत्र और एक शिलालेख मिला है।

१–हासोट (भडोच जिला, ववई अहाता) से मिला हुआ वि० स० ८१३ ई०स० ७५६ का चौहान राजा (भर्तृवड्ड भर्तृवृद्ध) दूसरे का दानपत्र। ३६ पक्तियो का यह दानपत्र दो पत्रो पर खुदा हुआ है। इससे पाया जाता है कि चौहान वश में महेश्वरदास हुआ, जिसका पुत्र भीमदास था। भीमदास का पुत्र भर्तृवड्ड प्रथम और पौत्र हरदास हुआ। हरदास का पुत्र घ्रुभटदेव और उस (घ्रुभटदेव) का पुत्र भर्तृवड्ड (दूसरा) था, जिसने भृगुकच्छ (भडोच) में रहते समय सूर्यग्रहण के अवसर पर अक्रूरेश्वर जिले के अन्तर्गत अर्जुनदेवी गाव का एक चतुर्थांश सौजपद्र (?) के निवासी कौण्डिन्य गोत्र के ब्राह्मण ताधी के पुत्र भट्टवूट को, एक चतुर्थांश वरमे की (?) गाव के त्रिवेदी ब्राह्मण

1 आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इडिया, ई० स० १९०३–४ की रिपोर्ट पृ० १८१।

चर्मशर्मा (?) के पुत्र जब (?) को तथा (शेषांश) सौज्ञपत्र के निवासी ब्राह्मण भट्ठुल को दान में दे दिया । इस दानपत्र के अंतिम भाग मे लिखा है कि जिस समय यह लिखा गया उस समय वहा (प्रतिहार) नागावलोक (नागभट प्रथम) का राज्य था[1] । इससे निश्चित है कि भडोच के चौहान कन्नौज के प्रतिहारो के सामन्त थे ।

२—बिना संवत् का काठियावाड से मिला हुआ प्रतिहार राजा भोजदेव का शिलालेख। इससे निश्चित है कि उक्त राजा का अधिकार काठियावाड पर होगया था ।[2]

३—वलभी सवत् ५७४ (वि० स० ६५०—ई० स० ८९४) का महासामंत चौलुक्य (सोलकी) बलवर्मा का ऊना (जूनागढ़ राज्य दक्षिणी काठियावाड) का दानपत्र । यह दानपत्र तावे के दो पत्रो पर खुदा हुआ है और इसमें ३६ पक्तिया हैं । इससे पाया जाता है कि परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेन्द्रायुधदेव के महासामत अवनिवर्मा (प्रथम) के पुत्र चौलुका बलवर्मा ने नविशसपुर में रहते समय माघसुदि ६ (ता० १७ जनवरी ८९४ई०) को वहाँ की चौरासी का जयपुर गाव कणवीरिका नदी के तट पर स्थित तरुणादित्यदेव के सूर्य-मदिर को दान दिया[3] ।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रायुधदेव कन्नौज का प्रतिहार राजा महेंद्र-पाल (प्रथम) था ।

४—वि० सं० ८५६ (ई० स० ८९९) का उपर्युक्त ऊना गाव का अवनि-वर्मा (द्वितीय) का दानपत्र । यह दालपत्र तीन पत्रो पर खुदा हुआ है, जिनमें से दूसरा पत्रा दोनों तरफ खुदा है, शेष दोनो केवल एक ही तरफ। सब मिलाकर इसमें ६८ पक्तियां हैं । इससे पाया जाता है कि चौलुक्य (सोलकी) वंश में कल्ल और महल्ल नामक दो बडे राजा हुए । कल्ल के पौत्र (नाम अस्पष्ट है, संभवतः बाहुकधवल) ने धर्म नाम के किसी राजा को परास्त किया, अनेक बड़े राजाओ को जीता और कर्णाट (दक्षिण क राठोडों) की सेना को हराया । उसका पुत्र अवनिवर्मा (प्रथम) हुआ, जिसके पुत्र बलवर्मा ने वीषढ को हरा कर उसके दो नगारे छीन लिये और जज्जप को मार कर

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका; जिल्द १२, पृ० २०२—४ ।

2 नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ९, पृ० ३२५ ।

3 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ९, पृ० ४ ।

पृथ्वी को हूणों से मुक्त किया । उसका पुत्र अवनिवर्मा (द्वितीय) हुआ, जिसने यक्षदाम की सेना को हराया, अपने राज्य पर आक्रमण करने वाले राजाओ को परास्त किया, तथा धरणीवराह को भगाया । इसी अवनिवर्मा (द्वितीय) ने, जो परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव के, उत्तराधिकारी परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर महेंद्रपाल देव का सामत था, धीइक की अनुमति से सौराष्ट्र मडल (सोरठ, काठियावाड) के अन्तर्गत नक्शिसपुर की चौरासी का अवुलक (अवुलक) गाव जयपुर गाव के निकट कडवीरिका के तट पर स्थित तरुणादित्य के मन्दिर को दान दिया[1] ।

इस दानपत्र में आया हुआ महेंद्रपालदेव ऊपर के दानपत्र में आया हुआ प्रतिहार महेंद्रायुध ही है । धीइक प्रतिहारो की तरफ से नियुक्त काठियावाड का शासक होना चाहिये ।

५–हड्डाला (पूर्वी काठियावाड) से मिला हुआ शक सवत् ८३६ (वि० स० ९७१ पौष सुदि ४) (ई० स० ९१४ ता० २३ दिसम्बर) का चाप (चावडा) वशी धरणी वराह का दानपत्र । ५२ पक्तियो का यह दानपत्र दो पत्रो पर खुदा हुआ है । इससे पाया जाता है कि चाप (चावडा) वश में विक्रमार्क नामका राजा हुआ, जिसका पुत्र अड्डक था । अड्डक का पुत्र पुलकेशी और पुलकेशी का ध्रुवभट हुआ । ध्रुवभट का छोटा भाई धरणी-वराह था, जो महीपालदेव का सामत था और वर्द्धमान में रह कर अण्डणक देश पर राज्य करता था । उसने उत्तरायण पर्व के अवसर पर अर्मद्दक के वश के देवाचार्य के पुत्र महेश्वराचार्य को कथिका की स्थली से मिला हुआ विकल गाव दान में दिया[2] ।

उक्त दान में आये हुए महीपालदेव को, जिसका सामत धरणीवराह था, पहले विद्वानो ने गिरनार-जूनागढ के चूडासमा का वशधर मान लिया था, पर अब निश्चित प्रमाणो से यह सिद्ध होगया है कि वह कन्नौज के प्रतिहार राजा नागभट के वशज महेंद्रपालदेव का पुत्र महीपाल-देव था ।

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका, जि० ९, पृ० ६–१० ।

2 इडियन एटिक्वेरी, जि० १२, पृ० १९०–९५ ।

कन्नौज के प्रतिहार साम्राज्य की अवनति के समय प्रतिहारों के सामंत चौहान, सोलंकी आदि स्वतंत्र बन बैठे और वे अपने-अपने राज्यों का विस्तार करने लगे। साभर के चौहानो की एक शाखा ने मारवाड की तरफ नाडोल तक अधिकार कर लिया। सोलंकियो ने चावडो का अनहिलवाडे का राज्य अधीन कर उत्तर की तरफ पैर बढ़ाये और मारवाड के दक्षिण तक जा पहुँचे। अनहिलवाडे में राज्य स्थापित करने वाले इस सोलंकी वंश की बंशावली मूलराज से प्रारम्भ होती है। मूलराज के पूर्वजो का राज्य पहले कहा था, इसका ठीक-ठीक पता नही चलता। वि० सं० १०४३ माघवदि ३० (ई० स० ६८७ ता० २ जनवरी) रविवार के दानपत्र में वह अपने को महाराजाधिराज श्री राजि का पुत्र लिखता है[1]। मेरुतुंगाचार्य ने वि० स० १३६१ (ई० स० १३०४) में प्रवन्ध चिंतामणि की रचना की। उसमें मूल-राज के प्रवन्ध में वह लिखता है कि भूयराज (भूयडदेव) के वंशज मुंजाल-देव के तीन पुत्र राज, बीज और दण्डक हुए। सोमेश्वर (सोमनाथ, दक्षिणी काठियावाड) की यात्रा को लौटते हुए ये तीनो कार्पटिक[2] वेष में अणहिल-पुर (अणहिलवाडा) पहुचे। वहां के राजा सामन्तसिंह ने राजा की योग्यता का परिचय पाकर अपनी बहिन लीलावती का विवाह उसके साथ कर दिया। कुछ समय बाद वह गर्भवती हुई और अकाल ही में उसकी मृत्यु होगई। तब मंत्रियो ने उसका पेट चीर कर गर्भस्थ बालक को निकाला। मूल नक्षत्र और अप्राकृतिक रीति से जन्म होने के कारण उसका नाम मूल-राज रक्खा गया। वह जन्म से ही बडा होनहार था। अपने पराक्रम से उसने अपने मामा के राज्य की बडी वृद्धि की। पीछे से अपने मामा को मार कर[3] वह स्वय उसके राज्य का स्वामी बन गया[4]। जिन मंडल गणि के वि० स० १४९२ (ई० स० १४३५) में रचे हुए "कुमारपाल प्रबन्ध" में भी बहुधा इसी कथा की पुनरावृत्ति की है[5]।

1 वही; जि० ६, पृ० १९१।

2 "बॉम्बे गैजेटियर" में कार्पटिक का अर्थ कापडी (भिखरी) किया है जि० १, खंड १, पृ० १५६, जो ठीक नही है। कार्पटिक से कावर लेकर चलने वाले यात्री का आशय है।

3 मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की बात नही है। राजपूताने में पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते है।

4 पृ० ३८–९ (ई० स० १८८८ का सस्करण)।

5 पत्र २–३ (वि० सं० १९७१)।

उपर्युक्त ग्रन्थो में आये हुए राज, वीज और दडक नाम तो ठीक है[1], परन्तु उनमें दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बातें कल्पना मात्र है। सामतसिंह का, जिसे अन्य स्थल पर भूमटदेव भी लिखा मिलता है, राज्य केवल सात वर्ष तक रहा था। ऐसी दशा[2] में अनहिलवाडा पहुचने पर राजि के साथ सामतसिंह की बहिन का विवाह होना, उस (बहिन) के मरने पर उसका पेट चीर कर मूलराज का निकाला जाना, मूलराज का अपने मामा का राज्य विस्तार करना और फिर अपने मामा को मार कर उसका सारा राज्य स्वय हडप लेना कैसे सम्भव हो सकता है* ।

---

1 दडक का नाम हेमचन्द्र-रचित "द्वयाश्रय महाकाव्य" मे भी मिलता है (सर्ग ३, श्लोक ६६), जो वि० स० १२०० से भी पूर्व का है। "प्रबन्ध-चितामणि" से पीछे के बने हुए ग्रन्थो मे राज, वीज और दडक के पूर्वजो की शृखला में भूयडराज, कर्णादित्य, चन्द्रादित्य तथा समादित्य नाम दिये है। इनमे भूयडराज के अतिरिक्त अन्य नाम कल्पित प्रतीत होते है ।

2 जिन मडन गणि-रचित "कुमारपाल प्रबन्ध" पत्र २, रत्नमाला पृ० २२। "प्रबन्ध चितामणि" की किसी-किसी प्रति मे उसका २७ वर्ष राज्य करना लिखा है (हिन्दी प्रबन्ध चितामणि [मुनि जिन विजयजी सपादित] पृ० १८), जो ठीक नही प्रतीत होता।

सम्पादकीय टिप्पण

* इस ही प्रसङ्ग मे ऊपर श्री ओझाजी ने प्रबन्ध चितामणि और कुमारपाल का वर्णन करते हुए वहा अपने दिये हुए टिप्पण मे उल्लेख किया है कि 'मामा को मार कर राज्य लेना कोई आश्चर्य की बात नही है। राजपूताना में पिता, भाई, जामाता आदि को मार कर राज्य हस्तगत करने के कई उदाहरण मिलते है, इसमे तो यही कहा जायगा कि मूलराज, सामतसिंह का भागिनेय पुत्र था और उसने अपने मामा अणहिलवाडा के अन्तिम चावडावशी राजा सामतसिंह (भूयगडदेव) को मार कर वहा का राज्य प्राप्त किया। यहा उन्होने 'प्रबन्ध-चितामणि' और 'कुमारपाल प्रबध' मे दी हुई मूलराज के सम्बन्ध की अन्य बाते कल्पना मात्र बतला कर उनमे दिये हुए राज, बीज और दडक नाम ठीक माने है। किंतु यह स्पष्ट है कि अनहिलवाडा से चावडो के राज्य का अन्त होने पर ही मूलराज वहा का स्वामी बना।

उपर्युक्त पुस्तकों में आया हुआ राज, तथा मूलराज के वि० सं० १०४३ के दानपत्र में दिया हुआ उसका पिता महाराजाधिराज श्री राजि एक ही व्यक्ति जान पडते हैं। ऐसी दशा में मूलराज, भूयराज (भूयगडदेव) का वशज ठहरता है। भूयड, भयग अथवा भूवड, भूभट के प्राकृत रूप है। भूभट, अवनिवर्मा का पर्याय है, जो कन्नौज के प्रतिहारो का सामंत था और काठियावाड में राज्य करता था। "प्रबन्ध चिंतामणि" से लगभग ७५ वर्ष पूर्व बने हुए अरिसिंह विरचित "सुकृत सकीर्तन" नामक ग्रन्थ में मूलराज के सम्बन्ध में लिखा है कि वह अपनी भक्ति के कारण प्रति सोमवार को सोमनाथ के दर्शनार्थ जाया करता था[1]। अवनिवर्मा (द्वितीय) के जिन दानपत्रो का उल्लेख ऊपर आया है वे ऊना ग्राम से मिले हैं, जो दक्षिणी काठियावाड के अन्तर्गत जूनागढ़ राज्य में सोमनाथ के निकट ही हैं। इससे तो यही प्रकट होता है कि मूलराज सोरठ की सोलकी शाखा के अवनिवर्मा अर्थात् भूभटदेव अथवा भूयगडदेव का वशज था। अवनिवर्मा (द्वितीय) का समय वि० सं० ९५६ और मूलराज का वि० स० ९९८ से १०४२ तक मिलता है। इस पर विचार करने से भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। मूलराज के ऊपर आये हुए दानपत्र में उसके पिता श्री राजि को महाराजाधिराज लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वह किसी बडे राजा का सामत और छोटे बडे प्रदेश का स्वामी रहा होगा, जो सोमनाथ के निकट ही होना चाहिये।

काठियावाड़ के इन सोलंकी राजाओ के समय के राजपूताना से अब तक निम्न लिखित शिलालेख और दानपत्र मिल चुके हैं---

१. वि० स० १०५१ माघसुदि १५ (ई० स० ९९५, ता० १९ जनवरी) का परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज का जोधपुर राज्य के साचोर जिले के बालेरा ग्राम से मिला हुआ दानपत्र। यह दानपत्र तावे

---

1 पदेऽथ तस्याजनि भागिनेय. चौलुक्यनशार्णव पूर्णचन्द्र श्री मूलराज.··· · ॥१॥··· ·· ॥२॥ सुव्यक्तभक्तिः प्रतिसोमवारम य सोमनाथ प्रणिपत्यवीर· ॥३॥

द्वितीय सर्ग ।

के दो पत्रों के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें २१ पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि उक्त तिथि को अणहिलपाटक (अनहिलवाडा, पाटण) में रहते समय परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर मूलराज ने सत्यपुर मंडल का वरणक ग्राम कान्यकुब्ज से आये हुए दुर्लभाचार्य के पुत्र दीर्घाचार्य को दान में दिया[1]।

इस दानपत्र में आया हुआ सत्यपुर मंडल जोधपुर राज्य का वर्तमान साचोर जिला है।

भीमदेव का कोई दानपत्र अथवा शिलालेख नहीं मिला है। उसके समय का एक लेख आबू के विमलशाह के मंदिर की एक मूर्ति पर खुदा है, जो वि० सं० १११९ (ई० स० १०६२) का है उससे पाया जाता है कि उक्त राजा भीमदेव के मंत्री शांति (सपत्कर, सातू) की स्त्री शिवदेवी ने अपने दो पुत्रों नीन्न (नीना) और गोगा के कल्याण के लिए यह मूर्ति[2] स्थापित की[3]।

भीमदेव (प्रथम) के मंत्री विमलशाह के बनवाये हुए विमल वसति (विमलवसही) नामक जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार की वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ सुदी ९ (ई० स० १३२२, ता० २५ मई) सोमवार की प्रशस्ति में भीमदेव (प्रथम) का कुछ हाल मिलता है। उससे पाया जाता है कि चन्द्रावती के राजा धन्धु (धन्धुक, धन्धुराज) ने उसकी सेवा स्वीकार न की और धारा के स्वामी राजा भोज के पास चला गया। इस पर राजा भीम (भीमदेव) ने विमल (विमलशाह) को आबू का दण्डपति नियत किया। इसने वि० सं० १०८८ (ई० स० १०३१) में आबू पहाड पर आदिनाथ (विमलवसही) का मन्दिर बनवाया[4]।

सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख[5] है। वि० सं० ११८९ (चैत्रादि

---

1 एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द १०, पृ० ९८-९।

2 यह मूर्ति विमलशाह के मन्दिर की तेरहवीं देवकुलिका में स्थापित है।

3 अर्बुद-प्राचीन-जैन-लेख सन्दोह, भाग २, पृ० ३७ लेख संख्या ६३। इसमें 'सोमभूपाल' छपा है, जो ठीक नहीं है। मूल पाठ 'भीमभूपाल' है।

4 मूल लेख की नकल से।

5 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खंड १, पृ० ५३।

सम्पादकीय टिप्पण

मूलराज (प्रथम) का वि० सं० १०५१ (ई० स० ९९५) तक विद्यमान होना पाया जाता है। अतएव उसका राज्य काल वि० सं० ९९८-१०५१ (ई० स० ९४१-९९५ तक निश्चित है।

११८७) आषाढ सुदि १५ (ई० स० ११३०, ता० २३ जून) का यह लेख भीनमाल के निकट गौतम तालाव के पास से मिला है।

वि० सं० १२०० (ई० स० ११४३) का वाली से मिला हुआ सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में महाराजाधिराज जयसिंह का सामत आश्वाक था, जिसकी राणी की जीविका में वालाही ग्राम था। उस समय पाल्हा के पुत्र वोपणवस्थमन ने वहु घृणदेवी के उत्सव के निमित्त चार द्रम्म दान दिये। आगे चलकर उसी व्यक्ति द्वारा कुछ अन्य लोगो, कुओ आदि को एक-एक द्रम्म दिये जाने का उल्लेख है[1]।

इस लेख में दिया हुआ बालही ग्राम जोधपुर राज्य का वर्तमान वाली है और बहुघृणदेवी, बहुगुणदेवी अथवा वोलमाता, जिसके मन्दिर में यह लेख खुदा है वाली में।

साभर के उमरशाह-नामक कुए में से मिला हुआ सोलकियो का एक शिलालेख। यह लेख दो काले पत्थरो पर खुदा हुआ है और वहुत बिगडी हुई दशा में है। इसमें सोलकी राजा मूलराज की राज्य-प्राप्ति का समय वि० स० ९९८[2] (ई० स० ९४२) दिया है और इससे पाया जाता है कि मूलराज का पुत्र चामुंडराज हुआ, चामूडराज का वल्लभराज, वल्लभराज का उत्तराधिकारी दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव, भीमदेव का पुत्र कर्णदेव तथा कर्णदेव का जयसिंह हुआ[3]। इसके आगे का भाग वहुत बिगड गया है, जिससे यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि यह लेख सिद्धराज जयसिंह के समय का है अथवा उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के समय का।

इस लेख में एक स्थल पर "शाकंभरी" शब्द आया है जो सांभर का सूचक है।

बासवाडा राज्य के तलवाडा नामक ग्राम के निकट ही गदाधर का जीर्ण मदिर है। इसके सभा मडप में एक गणपति की मूर्ति रक्खी हुई है, जिसके आसन पर बारीक अक्षरों में खुदा हुआ सात पंक्तियो का गुजरात के सोलकी

---

1 एपिग्राफिया इडिका; जिल्द ११ पृ० ३३।

2 वही सवत् "कुमारपाल प्रबन्ध" (पत्र ३) में भी मिलता है। पहले मैने दूसरे ग्रन्थो के आधार पर मूलराज की राजप्राप्ति का समय वि० सं० १०१७ माना था, पर अव उपर्युक्त शिलालेख के मिल जाने से इस विषय में कोई सन्देह नही रह जाता।

3 इडियन एंटिक्वेरी, जिल्द ५८, पृ० २३५।

राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख है, जिसका कितना एक अंश प्रतिदिन जल चढ़ने से बिगड़ गया है, फिर भी उसका आशय स्पष्ट है। उससे पाया जाता है कि सोलंकी वंशी राजा कर्ण के पुत्र जयसिंह ने, जो 'सिद्धराज' कहलाता था, नरवर्मा (मालवे का परमार राजा) को जीत कर वहा गणपति का मंदिर बनवाया[1] ' इसमें कोई संवत् नहीं दिया है और न यह पता चलता है कि गणपति का मंदिर कौनसा था, परन्तु यह निश्चित है कि यह मूर्ति उसी गणपति के मन्दिर से लाकर यहा रक्खी गई है।

चौलुक्य (सोलंकी) कुमारपाल का वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) का चित्तौडगढ का शिलालेख। यह लेख २८ पंक्तियों का है। इससे पाया जाता है कि चौलुक्यवंश में मूलराज हुआ, जिसका वंशज सिद्धराज जयसिंह था। उसका उत्तराधिकारी कुमारपाल देव हुआ। शाकंभरी (सांभर) के शासक को परास्त कर और सपादलक्ष को उजाडकर वह शालीपुर (शालेरा, उदयपुर राज्य के चितौड के निकट) नामक स्थान में पहुंचा। वहा अपना डेरा रखकर वह चित्रकूट पर्वत (वर्तमान चितौडगढ) देखने गया और वहा के समिद्धेश्वर के मन्दिर को उसने एक गांव भेंट किया[2]।

वि० सं० १२०६ माघ वदि १४ (ई० स० ११५२ ता० २७ दिसम्बर) शनिवार का सोलंकी राजा कुमारपाल के सामन्त आल्हणदेव का किराडू का शिलालेख। यह लेख २१ पंक्तियों का है। इससे पाया जाता है कि उक्त समय में जबकि कुमारपाल राज्य करता था तथा श्री करण[3] आदि समस्त मुद्राएं महादेव करता था, उसकी कृपा से किरात कूप, लाटहृद और शिवा का राज्य पाने वाले महाराज श्री आल्हणदेव ने शिवरात्रि के पर्व पर अपने अधीनस्थ उक्त नगरों के महाजनों, तंबोलियों आदि में यह आज्ञा प्रचारित की कि प्रत्येक मास की दोनों पक्षों की अष्टमी, एकादशी एवं चतुर्दशी तिथियों को कोई भी व्यक्ति जीव हत्या न करे और न दूसरों को

---

1 मेरा बांसवाडा राज्य का इतिहास पृ० १४–६।

2 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द २, पृ० ४२२–२४।

3 राज्य की अनेक मुद्राओं में एक में "श्री" खुदा रहता था, जिसे लगाने को "श्रीकरण" कहते थे। यह मुद्रा मुख्य मानी जाती थी। उदयपुर राज्य में प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य मुद्राओं के अतिरिक्त एक मुद्रा में "श्री" भी रहती है, जो रुपयों के सम्बन्ध के कागजों पर लगाई जाती है।

करने थे। इसके विपरीत यदि कोई जीव हत्या का पाप करेगा तो यदि वह साधारण व्यक्ति हुआ तो उस पर पांच द्रम्म और यदि राजा से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यक्ति हुआ तो उस पर एक द्रम्म दण्ड किया जायगा[1]।

वि० सं० १२०६ (चैत्रादि १२१०) द्वितीय जेष्ठवदि ४ (ई० स० ११५३, ता० १३ मई, का पाली से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का शिलालेख[2]। यह लेख बहुत बिगडी हुई दशा में है।

वि० स० १२१० (चैत्रादि १२११) ज्येष्ठसुदि ६ (ई० स० ११५४, ता० २० मई, गुरुवार) का सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का भाटूंद से मिला हुआ शिलालेख। यह लेख भी बहुत बिगडी हुई दशा में है। इसमें कुमारपाल के नाडोल के दंड नायक (हाकिम) श्री वैजाक का उल्लेख है। एक स्थल पर "भट्टुटपद्रनगर" दिया है, जो भाटूंद का सूचक है[3]।

कार्तिकादि वि० स० १२१२ (चैत्रादि वि० १२१३) श्रावणसुदि ५ (ई० स० ११५६, ता० २४ जुलाई) सोमवार का सोलंकी राजा कुमारपाल का नाताणा से मिला हुआ दानपत्र। यह तांबेके दो पत्रों पर खुदा हुआ है और इसमें ३२ पंक्तियां है। इसमें मूलराज से लगाकर कुमारपाल देव तक की इन सोलंकी राजाओ की वंशावली दी है और कुमारपालदेव के विषय में लिखा है कि उसने अणहिलपाटक (अनहिलवाड़ा, पाटण) में रहते समय नाडूलीय चौहान कुतपाल के वंश की पुत्री लाखणदेवी के बनवाये हुए लाखणेश्वर के मन्दिर को, जो त्रिपुरुषदेव के मन्दिर के अन्तर्गत है, नाडूल की मंडपिका से एक द्रम्म प्रतिदिन दान दिया[4]।

वि० स० १२१३ मार्गशिर्षवदि १० (ई० स० ११५६, ता० ९ नवम्बर) शुक्रवार का नाडोल से मिला हुआ सोलंकी कुमारपाल के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में, जबकि कुमारपालदेव का राज्य था और उसका मंत्री वहडदेव श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त महामाडलिक प्रतापसिंह ने, जो वोणाना जाति के योगराज का पौत्र और वत्सराज का पुत्र था, बदरी की मंडपिका की आय

1 एपिग्राफिया इंडिका; जिल्द ११, पृ० ४४-३।
2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृ० ५७।
3 वही (जोधपुर राज्य का इतिहास); खण्ड १, पृ० ६१-२।
4 मूल दानपत्र की छाप से।

से एक रुपया प्रतिदिन नदूल डागिका के महावीर तथा अरिष्ट नेमी और लवदडी के अजित स्वामीदेव के मन्दिरो को दान दिया[1]।

इस दानपत्र में दिया हुआ 'नदूलडागिका' नाडलाई और वदरी वोर्ली है, जो नाडलाई से आठ मील उत्तर में है।

वि० स० १२१६ श्रावण वदि १ (ई० स० ११५९, ता० ३ जुलाई) शुक्रवार का वाली से मिला हुआ सोलकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। यह वहा के माता के मन्दिर के एक स्तम्भ पर खुदा हुआ है और इसमें उसके दडनायक वैजल का उल्लेख है[2]।

वि० स० १२१८ आश्विनसुदि १ (ई० स० ११६१, ता० २१ सितम्बर) गुरुवार का किराडू से मिला हुआ सोलकी राजा कुमारपालदेव क समय का शिलालेख। यह लेख वहाँ के शिव मदिर से मिला है। यह बहुत बिगडी हुई दशा में है और इसका लगभग एक तिहाई हिस्सा नष्ट होगया है। इसके प्रारम्भिक अश में आबू के अग्निवशी परमारो की उत्पलराज से लगाकर कृष्णराज (द्वितीय) तक वशावली दी है, परन्तु बीच-बीच में कुछ नाम नष्ट होगये है। इसके आगे कृष्णराज (द्वितीय) के छोटे पुत्र सोच्छराज के वशजो का हाल है। इससे पाया जाता है कि सोच्छराज का पुत्र उदयराज हुआ, जिसने चोड गौड, करणाट और मालवा तक प्रभुत्व स्थापित किया[3]। उसका पुत्र सोमेश्वर हुआ जिसने सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की कृपा से अपना गया हुआ राज्य प्राप्त किया। वि० स० १२०५ (ई० स० ११४८) में सोलकी कुमारपालदेव के समय उसने मन्दिर की प्रतिष्ठा की और वह किराटकूप (किराडू) तथा शिवकूप की रक्षा करता रहा। वि० स० १२१८ (ई० स० ११६१) में उसने जज्जक[4] नाम के राजा से तणुकोह (तन्नोट)

---

1 इडियन एटीक्वेरी; जिल्द ४१, पत्र २०३।

2 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृ० ५८।

3 परमार सोलकियो के सामन्त थे और उन्ही के शामिल रह कर इन स्थानो की लडाइयो में लडे होगे।

4 यह जैसलमेर नगर के सस्थापक भाटी जैसल का दूसरा नाम होना चाहिये। प्राचीन ख्यातो आदि में वि० स० १२१२ में जैसलमेर नगर का जैसल-द्वारा वसाया जाना लिखा मिलता है। वि० सं० १२१८ में उसका विद्यमान रहना सम्भव है। तणुकोह (तन्नोट) जैसलमेर से अनुमान ७५ मील उत्तर-पश्चिम में है और वह जैसलमेर राज्य की पुरानी राजधानी थी। नवसर, वर्तमान नौसर है, जो जोधपुर राज्य के फलोदी परगने में है।

और नवसार (नौसर जोधपुर राज्य) के किले छीन लिये तथा दंड में उससे १७६० घोडो और मयूर आदि ८ हाथी लिये। फिर उसको सोलकी राजा (कुमारपालदेव) की अधीनता स्वीकार करा कर उसका राज्य उसे वापस दिला दिया।

वि० स० १२२१ (ई० स० ११६४) का जालोर का सोलकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। यह लेख वहां की पुरानी मस्जिद में लगा है। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् में गुर्जर देश के स्वामी कुमारपालदेव ने प्रभुदेव सूरी से ज्ञान प्राप्त कर जावालिपुर में कचनगिरि (सोनलगढ) के गढ पर पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया, जो 'कुवरविहार' कहलाता है[1]। इस लेख में दिया हुआ जावालिपुर जोधपुर राज्य का वर्तमान जालोर परगना है।

वि० स० १२२८ मार्गशीर्षसुदी १३ सोमवार का नारलाई का सोलकी राजा कुमारपालदेव के समय का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि उक्त सवत् में श्री कुमारपाल देव के राज्य काल में नाडूल्य में केल्हण तथा बोरिपद्यक में राणा लखमण का राज्य था और सोनाणा का ठाकुर अर्णसिंह था। इस कार्य में सूत्रधार महिदरा और इन्दराक ने उसकी सहायता की[2]।

इस लेख में दिया हुआ 'नाडूल्य-नाडोल, सोनाणा उसी नाम का गाव और बोरिपद्यक सम्भवत बोर्ली है, जो सभी जोधपुर राज्य में है।

बिना सवत् का सोलकी राजा कुमारपाल का चितौड़गढ़ का शिलालेख। यह बडा शिलालेख चितौड़ के किले पर एक खेत में पड़ा हुआ मुझे

इससे प्रकट है कि उस समय जैसलमेर राज्य का विस्तार बहुत बडा था और जोधपुर राज्य का फलोदी परगना भी जैसलमेर राज्य के अन्तर्गत था। इतना ही नही किन्तु जोधपुर राज्य के उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य का दक्षिण का बहुत-सा अश जैसलमेर के भाटियो के अधीन था। जब राव बीका ने कोडमदेसर में गढ बनवाया तो भाटियो ने उसे नष्ट कर दिया, जिससे उसको और उत्तर में जाकर बीकानेर नगर को अपनी राजधानी बनाना पडा। भाटियो का प्रभुत्व उस समय बहुत बढा हुआ था। जज्जक से १७०० घोडे और आठ हाथी दण्ड लेना भी उक्त राज्य का विशाल होना प्रकट करता है।

1 मूल लेख की छाप से।

2 एपिग्राफिया; इण्डिका, जिल्द ११, पृ० ४८।

मिला था। खेत वाला खरीफ की मौसिम में खेत की रक्षा के लिए उस पर सोया बैठा करता था, जिससे उसके कई अक्षर घिस गये है, तो भी अधिकांश भाग सुरक्षित है। मैंने इस लेख को उदयपुर के विक्टोरिया हॉल म्यूजियम में रखवाया, जहां अब तक वह सुरक्षित है।

सोलंकी वंश में मूलराज हुआ। उसका पुत्र चामुण्ड, चामुण्ड का वल्लभराज, वल्लभराज का दुर्लभराज, दुर्लभराज का भीमदेव और भीमदेव का पुत्र कर्णदेव हुआ। कर्णदेव ने सूदकूप नाम के घाट में मालवों के सुभटों को मारा। उसका पुत्र सिद्धराज जयसिंह देव हुआ, जिसने धारा नगरी में भोज के वंश का उच्छेद किया। पुत्र प्राप्ति के लिए वह पैदल सोमनाथ गया और देवता ने भी उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा कि भीमदेव का पुत्र क्षेमराज, क्षेमराज का देवप्रसाद, देवप्रसाद का त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपाल का कुमारपाल है (जो तेरे पीछे राजा होगा)। कुमारपाल ने जांगलदेश के वीरों को स्वर्ग पहुंचाया, तथा उसकी सेना ने बहुत से विरोधी राजाओं की पृथ्वी अपने अधीन की। उस (कुमारपाल) ने शाकंभरी देश को जीता। वह दिग्विजय करता हुआ चितौड में पहुंचा। वह दान, शौर्य, संयम, सत्यता तथा देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं की भक्ति के लिए प्रसिद्ध हुआ। वहां (चितौड में) रहते समय उसने अपने अमात्य (मन्त्री) पद-पर मधुसूदन के पुत्र सोमेश्वर को नियत किया। उसने वहां (चितौड में) वराह का मन्दिर बनवाया और उसके निर्वाह के लिए दान दिये[1]।

बिना संवत् का जोधपुर राज्य के रतनगढ ताल्लुके से मिला हुआ सोलंकी राजा कुमारपाल का शिलालेख। इससे पाया जाता है कि अमावस्या के पर्व पर पुनपाक्ष की स्त्री गिरिजादेवी ने समस्त प्राणियों को अभय-दान दिया[2]।

सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) के समय का वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदि १३ (ई० स० ११७८ ता० २६ अक्टोबर) का किराडू में मिला हुआ शिलालेख। इससे पाया जाता है कि महाराज पुत्र मदन ब्रह्मदेव उसका सामन्त था[3]।

---

1 मूल लेख की छाप से।

2 भावनगर इंस्क्रिपशन्स, पृ० २०६।

3 मूललेख की [illegible]प से।

वि० सं० १२४२ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० ११८५ ता० ६ नवम्बर) रविवार का वीरपुर (डूंगरपुर † राज्य में) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का दानपत्र। यह दानपत्र तांबे के दो पत्रों के एक ही तरफ खुदा हुआ है और इसमें कुल बयालीस पंक्तियां हैं। इससे पाया जाता है कि परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलंकी भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल में जबकि महामात्य (प्रधान मन्त्री) देवधर श्री-करण आदि समस्त मुद्रा करता था, उसके सामन्त गुहिलदत्त (गुहिलोत) वंशी भर्तृपट्टाभिधान (उपनाम) वाले महाराजधिराज विजयपाल के पुत्र महाराजाधिराज अमृतपालदेव का वागड (डूंगरपुर और वांसवाडा राज्यों का सम्मिलित नाम) वटपद्रक मण्डल वडोदा पर राज्य था। उस (अमृतपाल-देव) ने सूर्य ग्रहण के पर्व पर भारद्वाज गोत्र के रामकवाल जाति के ब्राह्मण यज्ञ कर्ता ठाकुर शोभा के पुत्र मदन को षड्पचाशत मंडल (छप्पन, उदयपुर राज्य) के गातोड ग्राम का लहसाडिया नाम का एक रहट, बाहर की दो हल-वाह भूमि तथा धान (चावल) का खेत दान दिया। दानपत्र क अन्त में महा-राजा अमृतपालदेव, महाराजकुमार सोमेश्वर तथा पुरोहित पालापक के हस्ताक्षर हैं[1]।

वि० स० १२५३ (ई० स० ११९६) का बडा दीवडा (डूंगरपुर राज्य) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का लेख। यह वहाँ के शिवमन्दिर की एक मूर्ति के आसन पर खुदा है। इसमे पाया जाता है कि महाराज भीमदेव के राज्य समय डब्वणक (दीवडा) गांव में श्री नित्यप्रमोदित देव के मन्दिर में महतम एल्हा के पुत्र वैजा ने मूर्ति स्थापित करवाई[2]।

वि० स० १२६३ श्रावणसुदि २ (ई० स० १२०६ ता० ६ जुलाई) रविवार का आहाड (उदयपुर राज्य, मेवाड की प्राचीन राजधानियों में से एक) से मिला हुआ सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का दानपत्र। यह

---

1 मूलदानपत्र की छाप से।

2 मूललेख की छाप से।

सम्पादकीय टिप्पण

† यह दानपत्र उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध जयसमुद्र (ढेबर) झील के निकटवर्ती वीरपुर गांव से मिला था और बम्बई से प्रकाशित होने वाली भारतीय विद्या (त्रैमासिक) पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।

दानपत्र तावे के दो पत्रो पर खुदा हुआ है और इसमें ३८ पक्तिया है। इसके प्रारम्भ में मूलराज से लगा कर भीमदेव (द्वितीय) तक सोलकी नरेशो की वशावली दी है। इससे पाया जाता है कि भीमदेव (द्वितीय) ने नवति (नाउटी, उदयपुर राज्य के) कृष्णात्रेय गोत्रीय रायकवाल जाति के ब्राह्मण वीहड के पुत्र रविदेव को अपने राज्य के मेदपाट (मेवाड) मडल के अतर्गत आहाड में (वभाउवा) नाम का रहट और कुए से सयुक्त कडवा का खेत दान में दिया और यह आज्ञा दी कि उस कुएँ के सयुक्त खेत से हर फसल में पैदा होने वाले अन्न का नवा भाग आहाड के श्री भायल स्वामिदेव के मन्दिर को दिया जाय। दानपत्र के अन्त में भीमदेव (द्वितीय) का हस्ताक्षर और और एक कटार का चिह्न है[1] *

कार्तिकादि वि० स० १२६५ (चैत्रादि १२६६) वैशाख सुदि १५ (ई० स० १२०६, ता० २१ अप्रेल) मगलवार का सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का कनखल (आवू) का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अश में लिखा है कि उज्जेन के शैवमठ के तपस्वी केदार राशि ने, जो तापस की शिष्य परम्परा में था, अचलगढ (आवू) के कनखल नामक तीर्थ में, कोटेश्वर आदि के मन्दिरो का जीर्णोद्धार करने के अतिरिक्त शूलपाणि (शिव) के दो नये मन्दिर और कनखल शभु के मन्दिर के सभामडप में स्तम्भो की एक पक्ति वनवाई। इसके अन्तिम अश से पाया जाता है कि उस समय परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर सोलकी भीमदेव (द्वितीय) का राज्य था और महतम ठामू श्री करण आदि समस्त मुद्रा करता था। चन्द्रावती का धारावर्ष उस (भीमदेव, द्वितीय) का सामत और कुमार प्रहलादन उस धारावर्ष का युवराज था[2]।

वि० स० १२८३ (ई० स० १२२६) का नाणा (जोधपुर राज्य) से मिला हुआ सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का शिलालेख। यह उक्त गाव के नीलकठ महादेव के भीतर लगा है और मारवाडी भाषा में है।

1 सातवी वडोदा ओरिएन्टल कॉन्फरेंस की रिपोर्ट, पृ० ६४५–८।
2 इडियन एटिक्वेरी, जिल्द ११, पृ० १२१।

सम्पादकीय टिप्पण

* यह दानपत्र श्री० ओझाजी को उदयपुर राज्य की राजधानी उदयपुर नगर से लगभग डेढ मील दूर आहाड गाँव, जिसका प्राचीन नाम 'आघाटपुर' लिखा मिलता है, मिला था जो सातवी ओरियन्टल कान्फरेंस बडौदा की रिपोर्ट में प्रकाशित होगया है।

इसमें उक्त मन्दिर क जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है[1]।

वि० स० १२८७ फाल्गुणवदि ३ (ई० स० १२३१, फरवरी) रविवार का, सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का आबू में तेजपाल द्वारा बनवाये हुए लूणवसही नामक नेमिनाथ के जैनमन्दिर का शिलालेख। इसके प्रारम्भिक अश में तेजपाल के पूर्वजो की चण्डप से पूरी वशावली दी है। इसके बाद अर्बुद (आबू) का वर्णन और चन्द्रावती के परमारो की धूमराज के वशज रामदेव से लगा कर कृष्णराज देव तक की वन्शावली दी है। इसमें कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख है, और इससे पाया जाता है कि तेजपाल ने उक्त मन्दिर अपनी पत्नी अनुपमादेवी और पुत्र लावण्यसिह (लूणसिंह) के कल्याणार्थ बनवाया था[2]।

उक्त सवत् का सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के समय का आबू का दूसरा शिलालेख। इसमें भी तेजपास द्वारा नेमिनाथ के मन्दिर के बनवाये जाने का वर्णन और उसके सम्बन्ध में मनाये जाने वाले उत्सवो की निश्चित तिथिया तथा कार्यक्रम दिया है[3]।

अन्तिम दोनो शिलालेखों में दिया हुआ तेजपाल सोलकी राजा भीमदेव (द्वितीय) के पोरवा जाति के मन्त्री वस्तुपाल का छोटा भाई था।

वि स० १३००(ई० स०१२६३) के आस-पास सोलकियो की बघेला शाखा के वीरधवल के पुत्र वीसलदेव ने गुजरात के अन्तिम सोलकी राजा त्रिभुवन पाल से गुजरात का राज्य छीन लिया। उसके वश वालो के दो शिलालेख अब तक राजपूताना से मिले हैं।

१–वि स. १३२० (ई० स० १२६३) का अजारी गाव (सिरोही राज्य) से मिला हुआ बघेला अर्जुनदेव का शिलालेख। यह वहां के गोपालजी के मन्दिर के फर्श में लगा हुआ है। इसके अनुसार उसके समय तक आबू के परमार किसी प्रकार गुजरात के सोलकियो के अधीन थे।[4]

२–वि० सं० १३५० माघसुदि १ (ई० स० १२९३, ता० २९ दिसम्बर) मगलवार आबू से मिला हुआ बघेला सारगदेव का शिलालेख। यह वहां के विमलशाह के मन्दिर में लगा हुआ है। इससे पाया जाता है कि उस समय

---

1 मेरा जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, पृ० ५९।

2 एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ८, पृ० २०८–१०।

3 वही, जिल्द ८, पृ० १२९–२२२।

4 मूललेख की छाप से।

अणहिलपाटक में परमेश्वर परमभट्टारक अभिनव सिद्धराज उपनाम वाले महाराजा सारगदेव का राज्य था और मुख्य अमात्य वाघूप श्रीकरण आदि समस्त मुद्रा व्यापार करता था । उस (सारगदेव) की कृपा पर निर्भर रहने वाले (सामन्त) महारावल वीसलदेव ने जो अष्टादशशतमण्डल, चन्द्रावती नगरी और अर्वुद भूमिपर राज्य करता था, विमलवसही और लूणवसही मदिरो की पूजा तथा निर्वाह के लिए कर लगाने की व्यवस्था की और यह आज्ञा जारी की कि यात्रियो से मुडक, चौकी, रखवाली आदि किसी प्रकार का कर न लिया जावे तथा चन्द्रावती का महारावल अथवा उसका कोई भी अधिकारी महन्त (मन्दिरो का) व कोतवाल यात्रियो से कुछ न ले और कल्याणक (पच कल्यण) आदि के उतसवो पर जो सघ आवे उनके चौकी-पहरे का प्रवन्ध करे एव आवू से लौटने तक किसी की कोई वस्तु चोरी जावे तो आवू का स्वामी (ठाकुर) उसकी क्षति-पूर्ति करे[1] ।

आचार्य आनन्दशकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी अहमदावाद द्वारा प्रकाशित, ई० स० १६४४

(समाप्त)

1 मूललेख की छाप से ।

एव मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक का अणहिलवाडे के सोलंकियों का तथा अर्णोराज से वीरधवल तक धोलका के वघेलो (सोलकियो) का सक्षिप्त चरित है, यह काव्य अब तक छपा नहीं है ।

(१२) प्रबधचिंतामणि--ई० स० १३०५ में जैन आचार्य मेरूतुंग ने इस पुस्तक को गद्य[1] में रचना की थी, जिसमें गुजरात पर राज्य करने वाले चावडो तथा सोलकियो के इतिहास के अतिरिक्त विक्रम, कालिदास, सिद्धसेन-दिवाकर, सालिवाहन, लाखाक (कच्छ [का] राजा लाखा फूलाडी [णो]), मुज, भोज, राजशेखर, माघ, धनपाल, सीतापडिता, मानतुगाचार्य, मन्त्री सांतू, देवसूरि, आभड, मांगू, झाला, जयचन्द्र, वाहड (वाग्भट), सोलाक, आंवड, हेमचन्द्र, आम्रभट, उदयचन्द्र, बृहस्पतिगड, वामराशि, रामचन्द्र, वस्तुपाल, तेजपाल, नन्द, शीलादित्य, रक, मल्लवादी, गोवर्द्धन, लक्ष्मणसेन, उमापतिधर, जगद्देव (परमर्दि), पृथ्वीराज, वराहमिहिर, नागार्जुन भर्तृ-हरी, वाग्भट वैद्य आदि के प्रबन्ध है । मेरूतुग ने विशेषकर सुनी हुई बातें लिखी है, अतएव कई स्थलो में उनका लिखना स्वीकार योग्य नहीं है । गुजरात के चावडा राजाओ का जो राजत्वकाल, उसने इस पुस्तक में दिया था, वह पीछे से उसको भी अशुद्ध प्रतीत हुआ, जिससे कुछ समय के पश्चात् जब उसने विचार श्रेणी नामक दूसरी छोटी-सी पुस्तक रची, उस समय उसको शुद्ध किया । शुद्ध इतिहास के अभाव की दशा में यह पुस्तक कुछ उपयोगी हो सकती है, परन्तु इसमें कितने ही स्थलो पर आधुनिक शोध के अनुसार नवीन टिप्पण करने की बडी आवश्यक्ता है, यह पुस्तक बबई में छपी है ।

(१३) चतुर्विशति प्रबन्ध (प्रबन्ध कोश)—ई० स० १२४० में राजशेखर सूरि ने इस गद्य ग्रन्थ को देहली में रचा था, जिसमें भद्रबाहु, आर्यनदिल, जीवदेवसूरि, खपुटाचार्य, पादलिप्ताचार्य, वृद्धवादी और सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्र, बप्पभट्टि, हेमसूरि (हेमचन्द्र), हर्षकवि, हरिहरि (र) कवि, अमर कवि, मदनकीर्ति, सातवाहन वकचूल, विक्रमा-दित्य, नागार्जुन, वत्सराज (उदयन), लक्ष्मणसेन, मदनवर्मा, रत्नश्रावक, आभड और वस्तुपाल-ये २४ प्रबन्ध है । राजशेखर ने भी मेरूतुग की नाईं विशेष कर सुनी हुई बातें ही लिखी है, जिनसे भी कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल आता है । यह पुस्तक अब तक छपी नहीं है ।

---

(1) प्रबन्ध चिंतामणि पुस्तक अधिकतर गद्य ही में है, परन्तु बीच में प्रसंगवशात् कही-कही पद्य भी आ गया है ।

(१४) कुमारपाल चरित—इस गद्य ग्रन्थ को ई० स० १४३५ में जिन मडनोपाध्याय ने रचा था, जिसमें ३६ राजवशो की नामावली (जैसी कि उसको मिल सकी), वनराज से सामन्तसिंह तक के गुजरात के चावडाओ की वशावली और मूलराज से कुमारपाल तक का गुजरात के सोलकियो का इतिहास है। इसमें कुमारपाल का वृत्तान्त वहुत विस्तार के साथ लिखा है; जो अतिशयोक्ति तथा धर्म सवधी विशेष आग्रह से खाली नहीं है। यह पुस्तक अव तक छपी नहीं है।

(१५) कुमारपाल चरित—जयसिंह सूरि ने ई० स० १३६५ में इस काव्य की रचना की थी, जिसमें मूलराज से कुमारपाल तक का वृतात है। यह काव्य छपा नहीं है।

(१६) कुमारपाल चरित—इस काव्य का रचयिता रत्नसेन सूरि का शिष्य चारित्रसुन्दर गणि है इसमें मूलराज से लगाकर कुमारपाल तक का सोलकियो का इतिहास है। इसकी रचना का समय ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु ई० स० की १४वीं शताब्दी के आस-पास इसका वनना अनुमान किया जा सकता है। अव तक यह पुस्तक छपी नहीं है।

(१७) वस्तुपाल चरित्र—इस काव्य को ई० स० १४४० में जिन-हर्ष गणि ने वनाया था, जिसमें मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक तथा अर्णो-राज से वीरधवल तक का सोलकियो का इतिहास, एव मत्री वस्तुपाल का विस्तृत वृतान्त है। यह काव्य अव तक छपा नहीं है।

(१८) हमीर महाकाव्य—इस काव्य में चाहमान से लगाकर प्रसिद्ध हंमीर (रणथभौर के, राजा) तक की चौहानो की वंशावली तथा कुछ ऐतिहासिक वृतान्त है। यह काव्य चौहानो के इतिहास के लिये पृथ्वीराज विजय जैसा तो उपयोगी नहीं है, तो भी इसमें बहुत से नाम शुद्ध है और कितना एक वृतान्त भी सही है। ग्वालियर के तवरवशी राजा वीरम के दरवार में रहनेवाले जैन कवि नयचन्द्र सूरि ने ई० स० की १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास इसको रचा था, यह वम्वई में छप चुका है।

(१९) वल्लाल चरित—इस काव्य में वगाल के सेनवशी राजाओं की उत्पत्ति, हेमन्तसेन से वल्लालसेन तक वशावली तथा वल्लालसेन का वृत्तान्त है। इस पुस्तक को वल्लालसेन के आश्रित अनतभट्ट के वशज आनन्दभट्ट ने नवद्वीप (नदिया) के राजा वुद्धिमतखाँ के समय में ई० स० १५११ में रचा था। उसने सुनी हुई बातो के आधार पर

नही, किन्तु सिहगिरि रचित व्यास पुराण,[1] शरणदत्त कृत वल्लाल-चरित तथा काजीदास नेदी की जय मगल गाथा के आधार पर इस काव्य की रचना की थी। यह पुस्तक एशियाटिक सोसाइटी वगाल की विवलिआथिक इडिका नामक सीरीज मे छप चुकी है।

(२०) मडलीक काव्य--इसमें गिरनार (काठियावाड) के चूडासमा (यादव) राजा मडलीक का चरित तथा उसके पूर्व पुरुषो में से खगार, जयसिह, मोकलसिह, मिलिग, महीपाल आदि का कुछ-कुछ वृत्तान्त है। ई० स० की १५वी शताब्दी के अन्त के आस-पास गगाधर कवि ने इसे बनाया था। अव तक यह छपा नहीं है।

(उ) प्रासगिक वृत्तान्त--भिन्न-भिन्न विषयो के कितने ही प्राचीन पुस्तको में कहीं प्रसगवशात् और कही उदाहरण के निमित्त के कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाते है, और कई काव्य, कथा आदि की पुस्तको में ऐतिहासिक पुरुषो के नाम तथा उनका कुछ हाल भी मि जाता है। ऐसे साधनो मे से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक घटनाओ का व्योरा इस छोटे से लेख में देना अशक्य है, तो भी उनसे कैसी-कैसी उपयोगी बातो का पता लगता है, यह बतलाने के लिए थोडे से उदाहरण नीचे दिए जाते है--

पतजलि के महाभाष्य से द्रव्य की लालसा के कारण मौर्यों द्वारा प्रतिमा बनाने और साकेत (अयोध्या) तथा मध्यमिका[2] पर यवनो (यूनानियो) के आक्रमण करने का पता लगता है। वात्स्यायन काम सूत्र में कुतलदेश के राजा शातकर्णि शातवाहन के हाथ से क्रीडा प्रसग में उसकी राणी मलयवती की मृत्यु होना लिखा मिलता है। मृच्छकटिक नाटक का कर्त्ता, शूद्रक राजा का १०० वर्ष की अवस्था में आग में बैठकर जल मरना बतलाता है। अद्भुतसागर में बगाल के सेनवशी राजा बल्लाल सेन का अपनी रानी सहित गगा-यमुना के सगम मे डूबकर (वृद्धावस्था में) शरीरान्त करना पाया जाता है। लेख-पचाशिका के कर्ता ने अपनी पुस्तक में उस सधिपत्र की पूरी नकल दी है, जो वि० स० १२८८ और

---

(१) ये तीनो पुस्तकें बल्लालसेन के समय बनी थी।

(२) मध्यमिका नगरी मेवाड में प्रसिद्ध चित्तौड के किले से करीव ६ मील उत्तर में है। वाक्ट्रियन यूनानी राजाओ में से मिनइडर का गुजरात राजपूताना आदि देशो को विजय करना, वहा से मिलने वाले उसके अनेक सिक्को से अनुमान किया जा सकता है, अतएव मध्यमिका पर आक्रमण करने वाला यूनानी राजा मिनइडर ही होना सभव है।

११३२ में दक्षिण के यादव राजासिंहण (सिंघण) और धोलका के वघेल (सोलंकी) राणा लावण्यप्रसाद (लवणप्रसाद) के बीच (युद्ध के बाद) लिखा गया था। पिंगल सूत्रवृत्ति में हलायुध पंडित ने मालवा के परमार राजा मुंज की प्रशंसा लिखी है। परमार राजा अर्जुनवर्मा ने अमरुशतक की टीका में जगद्देव (जगदेव परमार) को अपना पूर्व पुरुष कहकर उसकी प्रशंसा का पद्य उद्धृत किया है। जिनप्रभ सूरि रचित तीर्थ कल्प के सत्यपुर (साचोर, मारवाड में) कल्प से वि० सं० १३५६ (ई० स० १३००) में अलाउद्दीन (खिलजी) के छोटे भाई उलगखाँ की मेवाड पर चढाई होना तथा चित्तौड के स्वामी समरसिंह (रावल) का उक्त देश को बचाना पाया जाता है। प्राकृत पिंगल सूत्र की टीका में लक्ष्मीनाथ भट्ट ने हम्मीर (चौहान), कर्ण आदि राजाओं की प्रशंसा के श्लोक उदाहरणार्थ उद्धृत किये हैं। अशोक अवदान नाम की पुस्तक में शिशुनाग वंश के राजाओं की नामावली एवं हेमचन्द्र (हेमाचार्य रचित त्रिषष्टि पुरुष शलाका चरित) के परिशिष्ट पर्व में शिशुनाग तथा मौर्यवंश के राजाओं का कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है। मेरुतुंग रचित विचार श्रेणी गुजरात के चावडों तथा सोलंकियों की पूरी वंशावली, प्रत्येक राजा का राजत्वकाल तथा कई अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। धर्म-सागर ने प्रवचनपरीक्षा में गुजरात के चावडों तथा सोलंकियों की पूरी वंशावली और राज्य समय दिया है। महाकवि कालिदास के मालविका-ग्नि मित्र नाटक में सुंग वंश के संस्थापक राजा पुष्यमित्र के समय में उसके पुत्र अग्निमित्र का विदिशा (भेलसा) में शासन करना, विदर्भ (बरार) देश का राज्य के लिए यज्ञसेन और माधवसेन के बीच विरोध चलना, माधवसेन का विदिशा जाने के निमित्त भागना तथा यज्ञसेन के सेनापति द्वारा कैद होना, माधवसेन को छुडाने के लिए अग्निमित्र का यज्ञसेन से लडना तथा विदर्भ के दो विभाग कर एक उसको और दूसरा माधवसेन को देना, पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोडे का सिंध (सिंधु-राजपूताने में) नदी के दक्षिण तटपर यवनों (यूनानियों) द्वारा पकडा जाना, वसुमित्र का यवनों से लडकर घोडे का छुडा लाना और पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ का पूर्ण होना आदि वृत्तान्त मिलता है। अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) के राजकवि सोमेश्वर रचित ललित विग्रहराज नाटक में बीसलदेव और मुसलमानों के बीच की लडाई का हाल है। मालवा के परमार राजा अर्जुनवर्मा के राजगुरु मदन की बनाई हुई पारिजातमंजरी नाटिका में अर्जुनवर्मा और गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह

(जिसने भीमदेव दूसरे का राज्य छीन लिया था) के बीच पर्व पर्वत (पावागढ-गुजरात में) के पास लडाई होने तथा उसमें हार कर जयसिंह के भागने का उल्लेख है। कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक से पाया जाता है कि चेदी देश के हृदय (कलचुरी) वंशी राजा कर्ण ने कालिंजर के चंदेल राजा कीर्तिवर्मा का राज्य छीन लिया था, परन्तु उस(कीर्तिवर्मा) के ब्राह्मण सेनापति गोपाल ने कर्ण को परास्त कर उसको फिर राज सिंहासन पर बिठलाया था। गुणाढ्य की वृहत्कथा (पैशाची भाषा में) के संस्कृत अनुवाद तथा कथा सरित्सागर में वररुचि, व्याडी, पाणिनि, नंदी, शकटाल, चाणक्य, सातवाहन, वत्सराज, चंड महासेन, विक्रमादित्य आदि की कथाएँ है और शिवसिंह देव के आश्रित विद्यापति पंडित रचित पुरुष परीक्षा में मिथिला के कर्णाट वंशी राजा नान्यदेव के पुत्र मल्लदेव, गौड के राजा लक्ष्मणसेन, धारानगरी के राजा भोज और काशी के राजा जयचन्द्र आदि का वृत्तान्त मिल जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से ऐतिहासिक घटनाओ के संग्रह करने का आधार इतिहास लेखक की बहुश्रुतता पर ही निर्भर है।

पुस्तको के प्रारम्भ और अन्त-विशेष कर ई० स० की पाँचवी शताब्दी के पीछे के ग्रन्थकारो में से किसी ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ या अन्त में अपना और अपने आश्रयदाता राजा का कुछ-कुछ परिचय दिया है, किसी ने अपनी पुस्तक की रचना का सं० तथा उस समय राज्य करने वाले राजा का नाम, और किसी ने अपने आश्रयदाता के वंश का विशेष वर्णन लिखा है। इसी तरह प्राचीन काल के कई विद्वान् नक़ल करने वालो ने कितनी ही पुस्तको के अन्त में नकल करनें का संवत् तथा उस समय के राजा का नाम भी दिया है ऐसे साधनो से भी इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, जिसके थोडे से उदाहरण यहाँ पर दिये जाते है।

जल्हण पंडित ने अपनी सूक्ति मुक्तावलि के प्रारम्भ में अपने पूर्वजों के वृत्तान्त में देवगिरि (दौलतबाद) के कितने एक यादव राजाओ का परिचय दिया है। प्रसिद्ध हेमाद्रि पंडित ने, जो देवगिरि के यादव राजा महादेव का प्रधानमंत्री था, अपनी चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खंड के अन्त की राजप्रशस्ति में पुराण प्रसिद्ध कितने ही यदुवंशी राजाओ की नामावली के अतिरिक्त दक्षिण में यादवो के राज्य स्थापन करने वाले राजा दृढ़-प्रहार से लगाकर महादेव तक की पूरी वंशावली तथा कई राजाओ का कुछ-कुछ हाल भी दिया है। गुजरात के सोलंकियो के पुरोहित सोमेश्वर ने अपने रचे हुए सुरथोत्सव काव्य के १५वें सर्ग में अपने पूर्वजो के वर्णन

के प्रसंग में गुजरात के सोलकियो का कुछ-कुछ वृत्तान्त दिया है। धनपाल पडित ने तिलकमंजरी के प्रारभ में परमारो की उत्पत्ति तथा वैरिसिंह से भोज तक की वशावली दी है। ब्रह्मगुप्त ने श० स० ५५० (वि० स० ६८५–ई० स० ६२८) में (भीनमाल में जो जोधपुर राज्य में है) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त रचा। उस समय वहाँ का राजा चाप (चावडा) वशी व्याघ्रमुख था, ऐसा उसी के लेख से पाया जाता है। ई० स० की सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रसिद्ध माघ कवि ने (जो भीनमाल नगर का रहने वाला था) शिशुपालबध काव्य रचा, जिसमें वह अपने दादा सुप्रभदेव को वहाँ के राजा वर्मलात का सर्वाधिकारी बतलाता है। जिनेश्वर ने शक स० ७०५ (वि० स० ८४०–ई० स० ७८३) में जैन हरिवश पुराण लिखा। उस समय उत्तर में इन्द्रायुध, दक्षिण में बल्लभ, पूर्व में वत्सराज और पश्चिम में वेहार (जयवराह) का राज्य करना उक्त पुस्तक से पाया जाता है। अमितगति ने वि० स० १०५० (ई० स० ९९३) में सुभाषित-रत्नसदोह नामक पुस्तक बनाई उस समय (मालवा का) राजा मुज (परमार) था। वज्रट के पुत्र उवट ने उज्जैन में रहकर यजुर्वेद (शुक्ल) पर भाष्य लिखा। उस वक्त वहाँ का राजा भोज (परमार) था। प्राग्वाट (पोरवाड) महाजन धवल की पुत्री ने वि० स० १२६१ (ई० स० १२०५) के आश्विन मास में मुजाल पडित से जयतीवृत्ति की नकल करवा कर अजितदेव सूरि को भेट की। उस समय अणहिलवाडे का राजा भीमदेव (सोलकी [दूसरा-भोला भीम]) था, तथा वि० स० १२८४ ई० स० १२२८) के फागुन मास में सेठ हेमचन्द्र ने ऊध निर्युक्ति की नकल करवाई, उस समय आधाट दुर्ग (अहाड–मेवाड की पुरानी राजधानी) में जैत्रसिह (रावल) का राज्य था और उसका महामात्य (मुख्यमत्री) जगतसिह था–ऐसा उक्त दोनो पुस्तको की नकल करने वालो के लेख से पाया जाता है।

इस प्रकार की सामग्री से कई ऐतिहासिक बातो का पता लगता है, यदि उनका सग्रह किया जावे तो एक छोटी सी पुस्तक बन जावे। प्राचीन हस्तलिखित सस्कृत पुस्तको की कई रिपोर्टें तथा कई पुस्तकालयो की सूचियाँ ऐसी बन चुकी है कि जिनमें अनेक पुस्तको के प्रारम्भ और अन्त का कुछ-कुछ आवश्यकीय अश उद्धृत किया हुआ है। उनके द्वारा थोडे से श्रम से कई ऐतिहासिक बातें मालूम हो सकती है। ऐसी पुस्तकों में डाक्टर किलहार्न, हुल्श, भडारकर, पीटर्सन, तथा शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्टें, डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र तथा हरप्रसाद शास्त्री सगृहित 'नोटिसेज

ऑफ संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स' तथा बनारस संस्कृत कॉलेज, काश्मीर, अलवर, बीकानेर, नेपाल, कलकत्ता संस्कृत कालेज, इंडिया ऑफिस, ब्रिटिश म्युजिअम, केंब्रिज युनिवर्सिटी आदि संस्कृत पुस्तक संग्रहों की सूचियाँ मुख्य हैं। डाक्टर ऑफ रेच की 'केटो लोगस केटे लोगरम्'[1] नामक पुस्तक (जिसके तीन भाग छप चुके हैं) इस विषय का अपूर्व ग्रंथ है।

(ऊ) वंशावलियों की पुस्तकें—भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न विभागों से राजाओं तथा धर्माचार्यों की वंश परम्परा की पुस्तकें मिल जाती हैं, जिनसे भी प्राचीन इतिहास में कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। ऐसी पुस्तकों में से मुख्य-मुख्य के नाम नीचे लिखे हैं—

(१) प्रसिद्ध काश्मीरी पंडित क्षेमेन्द्र रचित नृपावलि (राजावली)। इसमें काश्मीर के राजाओं की वंशावली है, जिसका समावेश कल्हण की राजतरंगिणी में हो गया।

(२–३) जैन पंडित विद्याधर संगृहित राजतरंगिणी तथा रघुनाथ रचित राजावली—ये दोनों पुस्तकें जयपुर बसाने वाला राजा जयसिंह के समय में जयपुर में बनी थीं, जिनमें भारत युद्ध से लगा कर विक्रमादित्य तक के राजाओं की नामावली देने का यत्न किया गया है। हमने ये दोनों पुस्तकें देखी नहीं हैं, परन्तु कर्नल टॉड् ने राजस्थान नामक पुस्तक में इनके विषय में जो कुछ लिखा है। उसी के आधार पर इनका यहाँ पर उल्लेख किया जाता है। कर्नल टॉड ने राजावली के अनुसार परीक्षित से लगा कर राजपाल तक के चार वंशों की वंशावलियाँ दी हैं, जिनमें मे पहिले वंश के २८ राजाओं के नामों का विष्णुपुराण तथा भागवत में दिए हुए (उसी वंश के) राजाओं के नामों से मिलान किया तो केवल चार राजाओं के नाम परस्पर मिले, अतएव उनके द्वारा प्राचीन इतिहास में बहुत ही कम सहायता मिलने की संभावना है।

(४) नेपाल की वंशावली—पार्वतीय वंशावली नामक एक पुस्तक नेपाल से मिली है, जिसमें कलियुग के प्रारम्भ से लगाकर ई० स० १८वीं शताब्दी तक उक्त देश पर राज्य करनेवाले भिन्न-भिन्न वंशों के राजाओं की नामावली तथा प्रत्येक राजा का राजत्वकाल दिया है। परन्तु वहीं से मिले हुए प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में दिए हुए वहाँ के राजाओं

---

(1) ई० स० १९०३ के जुलाई तक संस्कृत (हस्तलिखित) पुस्तकों के शोध के विषय में जितनी रिपोर्टें तथा भिन्न-भिन्न संस्कृत पुस्तक-संग्रहों की जितनी सूचियाँ छपीं, उनका पूरा पता इस अमूल्य पुस्तक में लग सकता है। हमने उसमें मुख्य-मुख्य के ही नाम ऊपर दिए हैं।

के नाम तथा सवतो के साथ उक्त वशावली का मिलान करने पर उसकी शुद्धता सिद्ध नही होती । उदाहरणार्थ—देखिये कि ठाकुरी वश के राजा अशुवर्मा के शिलालेखो से उसका ई० स० की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना पाया जाता है । चीनी यात्री हुएनसग ई० स० ६३७ के करीब नेपाल में पहुँचा । उससे थोडे ही समय पूर्व वह (अशुवर्मा) मर चुका था । ऐसा उक्त यात्री के लेख से पाया जाता है । परन्तु उपर्युक्त वशावली के अनुसार उसका ई० स० पूर्व की सातवीं शताब्दी में होना मानना पडता है । ऐसी दशा में वह वशावली प्राचीन इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हो सकती । प्राचीन समय के राजाओ के नामो में से कितने एक सही हैं, परन्तु सवके सव नहीं । यह वशावली इडियन एटीक्वेरी की जिल्द १३वी (पृ० ४१०–२८) मे छपी है ।

(५) उडीसा की वशावली—नेपाल की नाईं उडीसा–राजाओ की वशावली जगन्नाथ (पुरी) से ताडपत्र पर लिखी (खुदी) हुई मिली है, जिसमें युधिष्ठिर से लगाकर अव तक के उडीसा के राजाओ की नामावली तथा प्रत्येक का राज्य समय दिया हुआ है, परन्तु इसकी भी वही दशा है, जो नेपाल की वन्शावली की है । उदाहरण–के लिये प्रसिद्ध जगन्नाथ के मन्दिर के बनने का हाल ही देखिये । प्राचीन ताम्र-लेखादि से पाया जाता है कि जगन्नाथ का मन्दिर, जो इस समय विद्यमान है, गगावशी राजा अनन्तवर्म चोडगग ने वनवाया था, परन्तु उक्त वशावली में उससे पाँचवे राजा अनग भीमदेव को उक्त मन्दिर का वनाने वाला लिखा है । अनतवर्म चोडगग का राज्याभिषेक श० स० ६६६ (वि० स० ११३४ = ई० स० १०७८) में होना उसीके ताम्रपत्र से पाया जाता है, परन्तु उक्त वशावली में उसके राज्य का प्रारम्भ ई० स० ११३२ में होना लिखा है । ई० स० की १२वीं शताब्दी के पूर्व के राजाओ की नामावली तो अधिक अशुद्ध है । यह वशावली हँटर साहिव (W W Hunter) के ओरीसा (Orissa) नामक पुस्तक की दूसरी जिल्द (पृ० १८४–१६१) में छपी है ।

(६) भाटो की वशावलिया—भाट (वडवा) लोग प्रत्येक राजवश की वश परम्परा लिखते है, परन्तु उनकी पुस्तको का, शिलालेख ताम्रपत्रादि से मिलनेवाली भिन्न–भिन्न राजवशो की नामावलियो के साथ मिलान करने पर ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के नामो में से वहुत कम का शुद्ध होना सिद्ध होता है, और एक ही वन्श से सबध रखने वाले भाटो की दो पुस्तकें भी परस्पर नहीं मिलतीं । सिरोही के चोहान राजाओ के भाटो (वडवों)

७

[illegible]

([illegible]) [illegible] [illegible] बतलाता है।

[illegible] ऐतिहासिक [illegible] [illegible] मिल जाता [illegible]। [illegible] दिये हुए हैं —

(१) रत्नमाला—[illegible] भाषा की पुस्तकों में सबसे प्राचीन रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की [illegible] शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें [illegible] रत्न (प्रकरण) थे, जिनमें से २१ अब तक उपलब्ध हुए हैं। उनमें गुजरात के चावड़ा वंशी राजाओं की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलंकी राजाओं का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके हैं।

(२) पृथ्वीराजरासो—इसमें चौहान वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिंदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वीं शताब्दी के अन्त में चंदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानों के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ उसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानों की वंशावली, ऐतिहासिक

वृत्तान्त और साल संवतों का बहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वीं शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते हैं। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वीं शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है। यह अब तक छपी नहीं है।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तकों के अतिरिक्त वीसलदेव रासा, हमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती हैं, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

(४) कलवलिनाडपटु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवीं शताब्दी के करीब रचा था। इसमें चोल देश के राजा चेंकणा और चेर (गंगवाडी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुपोडे के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा कैद हुआ था।) वर्णन है। यह काव्य अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वीं जिल्द (पृ० २५८-६५) में छपा है।

(५) कलिंगत्तु परणी—ई०स० की ११ वीं शताब्दी के अंत के आस-पास जय कोंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव (प्रथम) के कलिंग देश विजय करने का वृत्तान्त है। इसका सारांश अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वीं जिल्द (पृ०३२९-४५) में छपा है।

(६) विक्रम शोलनुला—ई०स० की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेंकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओं की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूबहू वर्णन है। इसका सारांश अंग्रेजी अनुवाद सहित इंडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वीं (पृ०१४१-१५०) में छपा है।

(७) राज राजनुला—यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलंकी राजा राज राज (दूसरे) का वृत्तान्त है। यह काव्य ई०स० की १२वीं शताब्दी में बना था। अब तक यह छपा नहीं है। उपर्युक्त चारों (नं ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी हैं।

(८) कोंगु देश राजाक्कल—यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है, जिसमें

की पुस्तक में उक्त वश के प्रारम्भ से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक २२७ नाम हैं और वहीं के भाटों (बड़वों) की पुस्तक में (वश) भास्कर के अनुसार १७७ हैं, जिनमें से केवल ७ नाम परस्पर मिलते हैं। भाटों की वशावलियाँ ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि उस समय के पूर्व के नामों में से अधिकतर कल्पित ही उनमें भरे हुए हैं।

(७) पट्टावलियाँ—जैनों के प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की क्रम परम्परा की पुस्तकें मिलती हैं, जिनको पट्टावलियाँ कहते हैं। उनमें महावीर स्वामी से लगा कर उनके लिखे जाने के समय तक की (किसी में अब तक की) प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की नामावली, उनका जन्म-सवत जन्म-स्थान, दीक्षा का सवत, आचार्य पद पाने का सवत तथा धर्म प्रचार आदि का वृत्तान्त होता है। इनसे भी कई ऐतिहासिक घटनाओं का पता लगता है। ये पट्टावलियाँ ई० स० की १० वीं शताब्दी के बाद लिखी जाने लगीं हों, ऐसा अनुमान होता है।

(८) भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकें—सस्कृत तथा प्राकृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा तामिल आदि भाषाओं में लिखे हुए कितने एक ऐतिहासिक ग्रथ भी मिलते हैं, जिनमें भी कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है। ऐसी पुस्तकों में लिखी हुई मुख्य हैं—

(१) रत्नमाला—हिंदी भाषा की पुस्तकों में सबसे उत्तम रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की १४वीं शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें १०८ रत्न (अध्याय) थे, जिनमें से ११ अब तक उपलब्ध हुए हैं। उसमें गुजरात के चावडा वशी राजाओं की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलकी राजाओं का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके हैं।

(२) पृथ्वीराजरासो—इसमें चौहान वश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिंदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वी शताब्दी के अन्त में चदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानों के प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ इसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानों की वशावली, ऐतिहासिक

वृत्तान्त और साल सवतो का बहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वीं शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नही है। नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वी शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है। यह अब तक छपी नहीं है।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तको के अतिरिक्त वीसलदेव रासा, हमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नही मिल सकती।

(४) कलवलिनाडपदु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवी शताब्दी के करीब रचा था। इसमें चोल देश के राजा चेंकणा और चेर (गगवाडी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुपोडे के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा कैद हुआ था।) वर्णन है। यह काव्य अग्रेजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वीं जिल्द (पृ० २५८-६५) में छपा है।

(५) कलिगत्तु परणी—ई०स० की ११ वी शताब्दी के अत के आस-पास जय कौंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलकी राजा कुलोत्तु ग चोडदेव (प्रथम) के कलिग देश विजय करने का वृत्तान्त है। इसका साराश अग्रजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वीं जिल्द (पृ०३२९-४५) में छपा है।

(६) विक्रम शोलनुला—ई०स० की बारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेंकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओ की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूवहू वर्णन है। इसका साराश अग्रेजी अनुवाद सहित इडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वीं (पृ०१४१-१५०) में छपा है।

(७) राज राजनुतमा—यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलकी राजा राज राज (दूसरे) का वृत्तान्त है। यह काव्य ई०स० की १२वीं शताब्दी में बना था। अब तक यह छपा नहीं है। उपर्युक्त चारो (न ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी है।

(८) कोगु देश राजाक्कल—यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है, जिसमें

की पुस्तक में उक्त वंश के प्रारम्भ से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक २२७ नाम हैं और बूंदी के भाटों (वडवों) की पुस्तक में (वंश) भास्कर के अनुसार १७७ हैं, जिनमें से केवल ७ नाम परस्पर मिलते हैं। भाटों की वंशावलियां ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं, क्योंकि उक्त समय के पूर्व के नामों में से अधिकतर कृत्रिम ही उनमें धरे हुए हैं।

(७) पट्टावलियां—जैनों के प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की क्रम परंपरा की पुस्तकें मिलती हैं, जिनको पट्टावलियां कहते हैं। उनमें महावीर स्वामी से लगा कर उनके लिखे जाने के समय तक की (किसी में अब तक की) प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की नामावली, उनका जन्म-संवत् जन्म-स्थान, दीक्षा का संवत्, आचार्य पद पाने का संवत् तथा धर्म प्रचार आदि का वृत्तान्त होता है। इनमें भी कई ऐतिहासिक घटनाओं का पता लगता है। ये पट्टावलियां ई० स० की १० वीं शताब्दी के बाद लिखी जाने लगीं हों, ऐसा अनुमान होता है।

(८) भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकें-संस्कृत तथा प्राकृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा तामिल आदि भाषाओं में लिखे हुए कितने एक ऐतिहासिक ग्रंथ भी मिलते हैं, जिनमें भी कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है। ऐसी पुस्तकों में लिखी हुई मुख्य हैं—

(१) रत्नमाला—हिंदी भाषा की पुस्तकों में सबसे उत्तम रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की १४वीं शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें १०८ रत्न (अध्याय) थे, जिनमें से ११ अब तक उपलब्ध हुए हैं। उसमें गुजरात के चावडा वंशी राजाओं की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलंकी राजाओं का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके हैं।

(२) पृथ्वीराजरासो—इसमें चौहान वंश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिंदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वीं शताब्दी के अन्त में चंदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानों के प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तकों के साथ उसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानों की वंशावली, ऐतिहासिक

वृतान्त और साल सवतो का वहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वीं शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वीं शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है। यह अब तक छपी नहीं है।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तको के अतिरिक्त बीसलदेव रासा, हमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

(४) कलवलिनाडपटु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवीं शताब्दी के करीब रचा था। इसमें चोल देश के राजा चेंकणा और चेर (गगवाडी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुपोडे के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा क़ैद हुआ था।) वर्णन है। यह काव्य अंग्रेजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वीं जिल्द (पृ० २५८-६५) में छपा है।

(५) कलिंगत्तु परणी—ई०स० की ११ वीं शताब्दी के अंत के आस-पास जय कौंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोडदेव (प्रथम) के कलिंग देश विजय करने का वृत्तान्त है। इसका साराश अंग्रेजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वीं जिल्द (पृ०३२९-४५) में छपा है।

(६) विक्रम शोलनुला—ई०स० की बारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेंकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओ की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूबहू वर्णन है। इसका साराश अंग्रेजी अनुवाद सहित इडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वीं (पृ०१४१-१५०) में छपा है।

(७) राज राजनुलाा—यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलंकी राजा राज राज (दूसरे) का वृत्तान्त है। यह काव्य ई०स० की १२वी शताब्दी में बना था। अब तक यह छपा नहीं है। उपर्युक्त चारो (न ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी है।

(८) कोंगु देश राजाक्कल—यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है, जिसमें

की पुस्तक में उक्त वश के प्रारम्भ से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक २२७ नाम हैं और बूदी के भाटो (बडवो) की पुस्तक में (वश) भास्कर के अनुसार १७७ हैं, जिनमें से केवल ७ नाम परस्पर मिलते हैं। भाटो की वशावलियाँ ई० स० की तेरहवीं शताब्दी तक के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी नहीं हैं, क्योकि उक्त समय के पूर्व के नामो में से अधिकतर कृत्रिम ही उनमें धरे हुए हैं ।

(७) पट्टावलियाँ–जैनो के प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की क्रम परपरा की पुस्तकें मिलती हैं, जिनको पट्टावलियाँ कहते हैं । उनमें महावीर स्वामी से लगा कर उनके लिखे जाने के समय तक की (किसी में अब तक की) प्रत्येक गच्छ के आचार्यों की नामावली, उनका जन्म-सवत् जन्म-स्थान, दीक्षा का सवत्, आचार्य पद पाने का सवत् तथा धर्म प्रचार आदि का वृत्तान्त होता है। इनसे भी कई ऐतिहासिक घटनाओ का पता लगता है । ये पदावलियाँ ई० स० की १० वी शताब्दी के बाद लिखी जाने लगीं हो, ऐसा अनुमान होता है ।

(ए) भाषा की ऐतिहासिक पुस्तकें-सस्कृत तथा प्राकृत के अतिरिक्त हिन्दी तथा तामिल आदि भाषाओ में लिखे हुए कितने एक ऐतिहासिक ग्रथ भी मिलते हैं, जिनमें भी कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त मिल जाता है । ऐसी पुस्तको में लिखी हुई मुख्य हैं––

(१) रत्नमाला––हिंदी भाषा की पुस्तको में सबसे उत्तम रत्नमाला है, जिसकी रचना ई० स० की १४वी शताब्दी के आसपास कृष्ण कवि ने की थी। इसमें १०८ रत्न (अध्याय) थे, जिनमें से ११ अब तक उपलब्ध हुए हैं । उसमें गुजरात के चावडा वशी राजाओ की नामावली तथा मूलराज से भीमदेव (दूसरे) तक के सोलकी राजाओ का कुछ-कुछ वृत्तान्त है, इसके ८ रत्न अहमदाबाद में गुजराती भाषान्तर सहित छप चुके हैं ।

(२) पृथ्वीराजरासो––इसमें चौहान वश के प्रतापी राजा पृथ्वीराज का इतिहास मुख्य है । ऐसा प्रसिद्ध है कि इस हिंदी (राजस्थानी) भाषा के काव्य की रचना उक्त पृथ्वीराज के समय में अर्थात् ई० स० की १२वीं शताब्दी के अन्त में चदबरदाई नामक भाट ने की थी। यदि यह पुस्तक उक्त समय की बनी होती तो उपर्युक्त पृथ्वीराज विजय के समान इतिहास के लिये अमूल्य होती। परन्तु चौहानो के प्राचीन शिला-लेख, ताम्रपत्र तथा पृथ्वीराज विजय आदि ऐतिहासिक पुस्तको के साथ उसका मिलान करने से इसमें दी हुई चौहानो की वशावली, ऐतिहासिक

वृतान्त और साल सवतो का बहुधा कृत्रिम होना प्रतीत होता है, अतएव हम उसका ई० स० की १५वीं शताब्दी के आसपास बनना अनुमान कर सकते है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी नहीं है। नागरीप्रचारिणी सभा (बनारस) इसको छपवा रही है E।

(३) खुम्माण रासा—यह हिंदी काव्य ई० स० की १७वीं शताब्दी में उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था, जिसमें मेवाड के प्रसिद्ध राजा खुम्माण का इतिहास है, जो बहुधा कल्पित है। प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक बहुत ही कम उपयोगी है। यह अब तक छपी नहीं है।

उपर्युक्त हिंदी पुस्तको के अतिरिक्त वीसलदेव रासा, हमीर रासा, राणा रासा, रायमल रासा, राजविलास आदि पुस्तकें भी मिलती है, परन्तु प्राचीन इतिहास के लिये उनसे विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

(४) कलवलिनाडपटु—यह तामिल भाषा का छोटा-सा काव्य है, जिसको पोइकयार नामक कवि ने ई०स० की सातवीं शताब्दी के करीब रचा था। इसमें चोल देश के राजा चेंकणा और चेर (गगवाडी-माइसोर राज्य में) के राजा कणेकाइरुपोडे के बीच के युद्ध का (जिस में चेर का राजा कैद हुआ था।) वर्णन है। यह काव्य अग्रेजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटिक्वेरी की १८ वीं जिल्द (पृ० २५८-६५) में छपा है।

(५) कलिगत्तु परणी—ई०स० की ११ वीं शताब्दी के अत के आस-पास जय कोंडान् नामक कवि ने इस तामिल काव्य की रचना की थी, जिस में चोल देश के सोलकी राजा कुलोत्तु ग चोडदेव (प्रथम) के कलिग देश विजय करने का वृत्तान्त है। इसका साराश अग्रजी अनुवाद सहित इडिअन् ऐंटीक्वेरी की १९वीं जिल्द (पृ०३२९-४५) में छपा है।

(६) विक्रम शोलनुला—ई०स० की बारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बने हुए इस तामिल काव्य में चोल देश पर राज्य करने वाले राजा शेंगल (चेंकण) चोल से विक्रम चोल तक के राजाओ की नामावली तथा विक्रम चोल की सवारी का हूबहू वर्णन है। इसका साराश अग्रेजी अनुवाद सहित इडियन् ऐंटिक्वेरी की जिल्द २२वीं (पृ०१४१-१५०) में छपा है।

(७) राज राजनुला—यह भी उपर्युक्त विक्रम शोलनुला की शैली का तामिल काव्य है, जिसमें चोल देश के सोलकी राजा राज राज (दूसरे) का वृत्तान्त है। यह काव्य ई०स० की १२वीं शताब्दी में बना था। अब तक यह छपा नहीं है। उपर्युक्त चारो (न ४—७) तामिल काव्य प्राचीन इतिहास के लिये उपयोगी है।

(८) कोगु देश राजाक्कल—यह भी तामिल भाषा की पुस्तक है, जिसमें

(१०) टॉलमी-ई०स० की दूसरी शताब्दी के मध्य मिश्र देश के अलेक्जेंड्रिआ नगर के रहने वाले यूनानी विद्वान् टॉलमी ने भूगोल की बडी पुस्तक लिखी, जिसमें हिन्दुस्तान के कई नगर, नदी आदि के नाम तथा उनका अक्षाश आदि दिए हुए हैं, एवम् क्षत्रिय वश के राजा चष्टन् , सातवाहन (आध्रभृत्य) वशी पुलुमाई आदि उस समय के राजाओ के नामो का उल्लेख किया है, परन्तु उसने अलैक्जेंड्रिआ में बैठे ही बैठे हिन्दुस्तान का भूगोल यात्रियो तथा नाविको द्वारा सुनी हुई बातो तथा पहिले की पुस्तको के आधार पर लिखा था, जिससे उसके नियत किए स्थानों में बहुत ही अन्तर पडता है। यदि उसके लेखानुसार नकशा तय्यार किया जाय तो महानदी को स्याम में, हिमालय को तिब्बत के उत्तर में तथा गगा को चीन तक ले जाना होगा। इस पर भी उसकी पुस्तक से हमारे प्राचीन इतिहास में कुछ सहायता मिल ही जाती है। उक्त पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद मैक्क्रिडल् साहब ने इडिअन् ऐटिकोरी की जिल्द १३वीं (पृ० ३१३-४११ में छपवाया है)।

(११) मार्कोपोलो—वेनेस नगर का प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ई०स०१२९४ के करीब दक्षिण में आया था। उसकी यात्रा की पुस्तक (जि० दूसरी) में वहाँ का जो वृत्तान्त मिलता है, वह भी उपयोगी है। क्योकि उसने अपनी देखी हुई उक्त देश की दशा का वर्णन किया है। उसकी यात्रा की पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद कर्नल हेन्री यूल ने छपवाया है।

(१२) निकोलो डी काउटी—इटली देश का निवासी निकोलो ई०स० १४२० के करीब विजयनगर में रहा था, उसने उक्त नगर का, तथा वहाँ के राजा देवराज (दूसरे) का जो वृत्तान्त लिखा है, वह विजय नगर के यादवो के इतिहास के लिये उपयोगी है। उसका अग्रेजी अनुवाद रावर्ट सेवेल साहब की 'एफगार्टन एम्पायर' नामक पुस्तक में छपा है।

(१३) फर्नाओ नूनीज—इस पोर्त्चुगेज इतिहास लेखक ने ई० स० की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विजयनगर के यादव राज्य का इतिहास लिखा था। जो वहाँ के प्रथम राजवश के इतिहास में बहुत कुछ सहायता देता है। उसका अग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त 'एफर्गाटन एम्पायर' नामक पुस्तक के अन्त में छपा है।

(१४) भिन्न-भिन्न लेखक—समय-समय पर अनेक यूरोपिअन् लेखको ने अपनी पुस्तको में इस देश के सबध में जो कुछ लिखा था, उसका सग्रह मैक्क्रिड्ल साहब ने 'एनश्यट इडिया एज डिस्क्राइब्ड बाई अदर क्लासिकल राइटर्स नामक अग्रेजी पुस्तक में किया है जो बडा ही उपयोगी है।

ऊपर लिखे हुए युरोपिअन विद्वानो की पुस्तको में एक वडी खामी यह है, कि उनमें लिखे हुए स्थान तथा पुरुषो के नामो में से कितनो ही का ठीक-ठीक पता लगाना वडा ही कठिन काम हो पडा है।

(आ) चीन वालो की पुस्तकें-चीन की प्राचीन काल से ही इतिहास लिखने की प्रथा होने के कारण उनके यहाँ इतिहास की अनेक पुस्तकें मिल जाती है, उनसे तथा यात्रार्थ भारतवर्ष में आए हुए चीनी यात्रियो के सफर नामों से एव वहाँ की धर्म (वौद्ध) पुस्तको से हमारे यहाँ की इतिहास सबधी कई वातें मिल जाती है।

(१) ऐतिहासिक पुस्तकें--चीन की ऐतिहासिक पुस्तको से मध्य ऐशिआ में राज्य करने वाली शक, कुशन (तुर्क) हूण आदि जातियो का, जिन्होने भारतवर्ष पर अपना अधिकार वनाया था, विस्तृत वृत्तान्त मिल जाता है। एव दूसरी भी कई एक ऐतिहासिक घटनाओ का उल्लेख मिलता है। चीन का इतिहास लिखने वालो में पहिला पुरुष सूमाचिन था, जिसने अपनी पुस्तक ई०स० पूर्व १०० के आस-पास लिखी थी, जिसका फ्रेंच अनुवाद एम चैवन्निस (M Chavannes) नामक फ्रेंच विद्वान् ने किया है। उसी विद्वान ने 'मेमोयर' नामक फ्रेंच पुस्तक में चीन की और भी ऐतिहासिक पुस्तको का साराश दिया है। एशियाटिक् जर्नल नामक फ्रेंच पत्रिका में भी चीन की ऐतिहासिक पुस्तको के आधार पर हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास से सबध रखने वाले विषयो पर कई एक लेख छपे है, पर उनमें से बहुत कम के अग्रेजी अनुवाद हुए है।

(२) फाहियान--प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ई० स० ३९९ में चीन से यात्रार्थ निकला और गगा के निकटवर्ती प्रदेशो तथा सीलोन में ठहरता हुआ ई० स० ४१४ में चीन को लौटा। उस समय उत्तरी हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर के समस्त देश) का राजा गुप्तवशी चद्रगुप्त (दूसरा) था, जिसका प्रसिद्ध खिताव विक्रमादित्य था। फाहियान उसके राज्य में ६ वर्ष के करीव रहा था। उसने अपनी यात्रा की 'फो-को-की' नामक पुस्तक में चद्रगुप्त की मुख्य राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) का, वहाँ के औषधालय आदि का तथा उसके विस्तृत राज्य के अधीन के अनेक स्थानो का जो वृत्तान्त लिखा है। उससे उक्त राजा के राज्य की वास्तविक दशा प्रकट होती है। उक्त पुस्तक के दो अग्रेजी अनुवाद छपे है, जिसमें प्रोफेसर जेम्स लग्गे (James Lugge) का अनुवाद विशेष उपयोगी है।

(३) सगयुन, और ह्वीसग-ये दोनों यात्री ई० स० ५१८ के करीब इस

देश में आए थे। इनकी यात्रा की पुस्तक से भी कई उपयोगी बातें मिल जाती है। उसका अग्रेज़ी अनुवाद सेम्युल बील साहब ने हुएन्तसाग की यात्रा की पुस्तक के उपोद्घात में छपवाया है।

(४) हुएन्तसाग–प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्तसाग ई०स० ६२९ और ६४५ के बीच करीब-करीब सारे भारतवर्ष में फिरा था और जहाँ-जहाँ वह गया, वहाँ का हाल उसने अपनी पुस्तक में लिखा है, जो 'सी-यु-की' नाम से प्रसिद्ध है। उस समय सारे भारतवर्ष में दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर में कन्नौज का बैस-वशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और दक्षिण में सोलकी पुलुकेशी (दूसरा)। जिनमें से हर्ष के साथ तो वह कई मास तक रहा था। उक्त पुस्तक से उस समय की इस देश की दशा, लोगो के रीति-रिवाज, धर्माचरण आदि अनेक उपयोगी विषयो के अतिरिक्त अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, हर्ष (हर्षवर्द्धन) पुलुकेशी आदि कई राजाओ का, अनेक विद्वानो तथा उनकी पुस्तको का एव अनेक राज्यो का वृत्तान्त मिलता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के लिये इससे बढकर कोई पुस्तक नहीं है। उक्त अमूल्य पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद सेम्युअल बील साहिब ने 'बुद्धिस्ट रेकर्ड ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तक (दो जिल्दो) में किया है और वाटर्स (टी०) नामक विद्वान् ने उक्त विषय में दो जिल्दें और प्रकाशित की है, जो बहुत उत्तम है (Watter's On Yuan Chuang's travels)।

(५) हुएन्तसाग का जीवन चरित्र–हूली तथा येन्तसग नामक दो श्रमणो (बौद्ध साधुओ ने मिलकर उपर्युक्त हुएन्तसग का जीवन चरित्र लिखा है। उनमें से हूली तो उस (हुएन्तसग) का शिष्य था। यह पुस्तक भी हमारे यहां के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। इसका अग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त सैम्युअल बील साहब ने प्रकाशित किया है।

(६) इत्सिग–यह चीनी यात्री ई० स० ६७१ से ६९५ तक हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो तथा मालय प्रायद्वीप में ठहरा था। इसकी 'नन-है-चि-कुइ-ने-फाचुअन्' नामक पुस्तक उस समय के हमारे यहां के बौद्धो के धर्माचरण का ज्ञान सपादन करने के लिए अपूर्व है, एव उसमे कई ऐतिहासिक घटनाओ का भी पता लगता है। उक्त पुस्तक का ३४वा प्रकरण, जिसमें यहां की पठन-पाठन शैली का वर्णन है, देखने योग्य है। इस पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् टाकाकुसु ने छपवाया है।

उपर्युक्त यात्रियो के अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी यात्री भी इस देश

में आए थे, जिनके नाम आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनकी यात्र। सबधी पुस्तको के होने न होने का हाल मालूम नहीं हुआ।

चीनियो की धर्म सबंधी पुस्तको से हमारे यहाँ की अनेक प्राचीन पुस्तको का जो अब यहाँ पर नहीं मिलती, पता लगता है और अनेक ग्रथ कर्ताओ तथा धर्माचार्यों का हाल मिलता है, एव उन विद्वानो के नाम तथा समय मालूम होते हैं, जिन्होने चीन में जाकर अनेक सस्कृत पुस्तको का वहाँ की भाषा में अनुवाद किया, अथवा उस काम में सहायता दी थी। इस विषय में वन्युनजिओ (Bunyin Nanjio) की 'कैटेलाग ऑफ दी वुद्धिस्ट त्रिपिटक' नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है।

(इ) तिब्बतवालो की पुस्तकें—तिब्बत की पुस्तको की अब तक विशेष खोज नहीं हुई, तथापि जिन पुस्तको का पता लगा है, उससे हमारे यहाँ की कितनी ही प्राचीन पुस्तको (जो अब यहाँ पर नहीं मिलतीं) तथा उनके कर्ताओ के नाम आदि मालूम होते हैं। कुन्सजिग (Kunsnjing तारानाथ) नामक तिब्बत के श्रमण (बौद्ध साधु) ने भारतवर्ष का बौद्ध धर्म नामक पुस्तक ई०स० १६०८ में लिखी, जिसम हमारे यहाँ के इतिहास विषय की कई जानने योग्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तक का जर्मन अनुवाद शिफनर (Schiefner) नामक जर्मन विद्वान् ने किया है।

(ई) सीलोन वालो की पुस्तकें—सीलोन के साथ भारतवर्ष का निकट का सबंध होने के कारण वहाँ की ऐतिहासिक तथा धर्म सबधी पुस्तको से हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, ऐसी पुस्तको में मुख्य निम्न लिखित हैं:—

(१) दीपवश—सीलोन के इतिहास की यह पुस्तक ई० स० ३०० के करीब पाली भाषा में बनी थी, जिसमें भारतवर्ष के मौर्यवशी राजाओं का तथा कुछ-कुछ दूसरा वृत्तान्त भी मिलता है। इसका अग्रेज़ी अनुवाद ओल्डनवर्ग (Oldenberg) साहब ने प्रकाशित किया है।

(२) महावश—पाली भाषा की इस पुस्तक मे ई०स० पूर्व की छठी शताब्दी से ई०स० की १८वीं शताब्दी के मध्य तक का सीलोन का इतिहास है। यह पुस्तक भी राजतरगिणी की नाई समय-समय पर लिखी गई थी। इसका प्रथम खड ई०स० ४५६ और ४७७ के बीच महानामन् नामक विद्वान् ने लिखा था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक उपर्युक्त दीपवश की अपेक्षा अधिक उपयोगी है, क्योंकि इसमें शिशुनाग तथा मौर्यवशी राजाओ के समय का भी कुछ-कुछ हाल मिल जाता है। इसके प्रथम खड का अग्रेज़ी अनुवाद जार्ज टर्नर (George Turnour) ने तथा बाकी का

देश में आए थे। इनकी यात्रा की पुस्तक से भी कई उपयोगी बातें मिल जाती है। उसका अंग्रेजी अनुवाद सेम्युल बील साहब ने हुएन्तसांग की यात्रा की पुस्तक के उपोद्घात में छपवाया है।

(४) हुएन्तसांग—प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्तसांग ई०स० ६२९ और ६४५ के बीच करीब-करीब सारे भारतवर्ष में फिरा था और जहां-जहां वह गया, वहां का हाल उसने अपनी पुस्तक में लिखा है, जो 'सी-यु-की' नाम से प्रसिद्ध है। उस समय सारे भारतवर्ष में दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर में कन्नौज का बेस-वंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और दक्षिण में सोलंकी पुलुकेशी (दूसरा)। जिनमें से हर्ष के साथ तो वह कई मास तक रहा था। उक्त पुस्तक से उस समय की इस देश की दशा, लोगो के रीति-रिवाज, धर्माचरण आदि अनेक उपयोगी विषयो के अतिरिक्त अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, हर्ष (हर्षवर्द्धन) पुलुकेशी आदि कई राजाओं का, अनेक विद्वानो तथा उनकी पुस्तकों का एवं अनेक राज्यो का वृत्तान्त मिलता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के लिये इससे बढ़कर कोई पुस्तक नहीं है। उक्त अमूल्य पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद सेम्युअल बील साहिब ने 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्स ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तक (दो जिल्दो) में किया है और वाटर्स (टी०) नामक विद्वान् ने उक्त विषय में दो जिल्दें और प्रकाशित की हैं, जो बहुत उत्तम हैं (Watter's On Yuan Chuang's travels)।

(५) हुएन्त्सांग का जीवन चरित्र—हूली तथा येन्तसंग नामक दो श्रमणो (बौद्ध साधुओ) ने मिलकर उपर्युक्त हुएन्त्संग का जीवन चरित्र लिखा है। उनमें से हूली तो उस (हुएन्त्संग) का शिष्य था। यह पुस्तक भी हमारे यहाँ के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। इसका अंग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त सैम्युअल बील साहब ने प्रकाशित किया है।

(६) इत्सिंग—यह चीनी यात्री ई० स० ६७१ से ६९५ तक हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो तथा मालय प्रायद्वीप में ठहरा था। इसकी 'नन-हे-चि-कुइ-ने-फाचुअन्' नामक पुस्तक उस समय के हमारे यहाँ के बौद्धो के धर्माचरण का ज्ञान संपादन करने के लिए अपूर्व है, एवं उससे कई ऐतिहासिक घटनाओं का भी पता लगता है। उक्त पुस्तक का ३४वां प्रकरण, जिसमें यहाँ की पठन-पाठन शैली का वर्णन है, देखने योग्य है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् टाकाकुसु ने छपवाया है।

उपर्युक्त यात्रियो के अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी यात्री भी इस देश

में आए थे, जिनके नाम आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनकी यात्रा संबधी पुस्तको के होने न होने का हाल मालूम नहीं हुआ।

चीनियो की धर्म सबधी पुस्तकों से हमारे यहां की अनेक प्राचीन पुस्तको का जो अब यहां पर नहीं मिलती, पता लगता है और अनेक ग्रथ कर्ताओ तथा धर्माचार्यों का हाल मिलता है, एव उन विद्वानो के नाम तथा समय मालूम होते हैं, जिन्होने चीन में जाकर अनेक सस्कृत पुस्तकों का वहाँ की भाषा में अनुवाद किया, अथवा उस काम में सहायता दी थी। इस विषय में बन्युनजिओ (Bunyin Nanjio) की 'कैटेलाग ऑफ दी बुद्धिस्ट त्रिपिटक' नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है।

(इ) तिब्बतवालो की पुस्तकें–तिब्बत की पुस्तकों की अब तक विशेष खोज नहीं हुई, तथापि जिन पुस्तको का पता लगा है, उससे हमारे यहां की कितनी ही प्राचीन पुस्तको (जो अब यहां पर नहीं मिलतीं) तथा उनके कर्ताओ के नाम आदि मालूम होते हैं। कुन्सजिंग (Kunsnjing तारानाथ) नामक तिब्बत के श्रमण (बौद्ध साधु) ने भारतवर्ष का बौद्ध धर्म नामक पुस्तक ई०स० १६०८ में लिखी, जिसमें हमारे यहां के इतिहास विषय की कई जानने योग्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तक का जर्मन अनुवाद शिफनर (Schiefner) नामक जर्मन विद्वान् ने किया है।

(ई) सीलोन वालो की पुस्तकें–सीलोन के साथ भारतवर्ष का निकट का संबध होने के कारण वहां की ऐतिहासिक तथा धर्म सबधी पुस्तको से हमारे यहाँ के इतिहास मे कुछ सहायता मिलती है, ऐसी पुस्तकों मे मुख्य निम्न लिखित हैः–

(१) दीपवश–सीलोन के इतिहास की यह पुस्तक ई० स० ३०० के करीब पाली भाषा में बनी थी, जिसमें भारतवर्ष के मौर्यवशी राजाओ का तथा कुछ-कुछ दूसरा वृत्तान्त भी मिलता है। इसका अग्रेजी अनुवाद ओल्डनबर्ग (Oldenberg) साहब ने प्रकाशित किया है।

(२) महावश–पाली भाषा की इस पुस्तक में ई०स० पूर्व की छठी शताब्दी से ई०स० की १८वीं शताब्दी के मध्य तक का सीलोन का इतिहास है। यह पुस्तक भी राजतरगिणी की नाईं समय-समय पर लिखी गई थी। इसका प्रथम खड ई०स० ४५९ और ४७७ के बीच महानामन् नामक विद्वान् ने लिखा था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक उपर्युक्त दीपवश की अपेक्षा अधिक उपयोगी है, क्योंकि इसमें शिशुनाग तथा मौर्यवशी राजाओ के समय का भी कुछ-कुछ हाल मिल जाता है। इसके प्रथम खड का अग्रेजी अनुवाद जार्ज टर्नर (George Turnour) ने तथा बाकी का

देश में आए थे। इनकी यात्रा की पुस्तक से भी कई उपयोगी बातें मिल जाती है। उसका अंग्रेजी अनुवाद सेम्युल बील साहब ने हुएन्तसांग की यात्रा की पुस्तक के उपोद्घात में छपवाया है।

(४) हुएन्तसांग—प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्तसांग ई०स० ६२९ और ६४५ के बीच करीब-करीब सारे भारतवर्ष में फिरा था और जहां-जहां वह गया, वहां का हाल उसने अपनी पुस्तक में लिखा है, जो 'सी-यु-की' नाम से प्रसिद्ध है। उस समय सारे भारतवर्ष में दो ही प्रबल राजा थे। नर्मदा से उत्तर में कन्नौज का बैस-वंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) और दक्षिण में सोलंकी पुलुकेशी (दूसरा)। जिनमें से हर्ष के साथ तो वह कई मास तक रहा था। उक्त पुस्तक से उस समय की इस देश की दशा, लोगो के रीति-रिवाज, धर्माचरण आदि अनेक उपयोगी विषयो के अतिरिक्त अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, हर्ष (हर्षवर्द्धन) पुलुकेशी आदि कई राजाओ का, अनेक विद्वानो तथा उनकी पुस्तको का एवं अनेक राज्यो का वृत्तान्त मिलता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल के लिये इससे बढकर कोई पुस्तक नहीं है। उक्त अमूल्य पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद सेम्युअल बील साहिब ने 'बुद्धिस्ट रेकर्ड ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड' नामक पुस्तक (दो जिल्दो) में किया है और वाटर्स (टी०) नामक विद्वान् ने उक्त विषय में दो जिल्दें और प्रकाशित की है, जो बहुत उत्तम है (Watter's On Yuan Chuang's travels)।

(५) हुएन्त्सांग का जीवन चरित्र—हूली तथा येन्तसंग नामक दो श्रमणो (बौद्ध साधुओ) ने मिलकर उपर्युक्त हुएन्त्संग का जीवन चरित्र लिखा है। उनमें से हूली तो उस (हुएन्त्संग) का शिष्य था। यह पुस्तक भी हमारे यहां के इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है। इसका अंग्रेजी अनुवाद उपर्युक्त सेम्युअल बील साहब ने प्रकाशित किया है।

(६) इत्सिंग—यह चीनी यात्री ई० स० ६७१ से ६९५ तक हिन्दुस्तान के कुछ हिस्सो तथा मालय प्रायद्वीप में ठहरा था। इसकी 'नन-है-चि-कुइ-ने-फाचुअन्' नामक पुस्तक उस समय के हमारे यहां के बौद्धो के धर्माचरण का ज्ञान सम्पादन करने के लिए अपूर्व है, पर इसमें कई ऐतिहासिक घटनाओं का भी पता लगता है। उक्त पुस्तक का ३८वां प्रकरण, जिसमें यहां की पठन-पाठन शैली का वर्णन है, देखने योग्य है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् टाकाकुसु ने छपवाया है।

उपर्युक्त यात्रियो के अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी यात्री भी इस देश

में आए थे, जिनके नाम आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु उनकी यात्रा संबंधी पुस्तकों के होने न होने का हाल मालूम नहीं हुआ।

चीनियो की धर्म सबधी पुस्तको से हमारे यहां की अनेक प्राचीन पुस्तको का जो अब यहाँ पर नहीं मिलती, पता लगता है और अनेक ग्रंथ कर्ताओ तथा धर्माचार्यो का हाल मिलता है, एव उन विद्वानो के नाम तथा समय मालूम होते है, जिन्होने चीन में जाकर अनेक संस्कृत पुस्तको का वहाँ की भाषा में अनुवाद किया, अथवा उस काम में सहायता दी थी। इस विषय में बन्युनजिओ (Bunyin Nanjio) की 'कैटेलाग ऑफ दी बुद्धिस्ट त्रिपिटक' नामक पुस्तक बहुत उपयोगी है।

(इ) तिब्बतवालो की पुस्तकें—तिब्बत की पुस्तकों की अब तक विशेष खोज नहीं हुई, तथापि जिन पुस्तको का पता लगा है, उससे हमारे यहाँ की कितनी ही प्राचीन पुस्तको (जो अब यहाँ पर नहीं मिलतीं) तथा उनके कर्ताओं के नाम आदि मालूम होते हैं। कुन्सजिग (Kunsnjing तारानाथ) नामक तिब्बत के श्रमण (बौद्ध साधु) ने भारतवर्ष का बौद्ध धर्म नामक पुस्तक ई०स० १६०८ में लिखी, जिसमें हमारे यहाँ के इतिहास विषय की कई जानने योग्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है। उक्त पुस्तक का जर्मन अनुवाद शिफनर (Schiefner) नामक जर्मन विद्वान् ने किया है।

(ई) सीलोन वालो की पुस्तकें—सीलोन के साथ भारतवर्ष का निकट का सबध होने के कारण वहाँ की ऐतिहासिक तथा धर्म सबधी पुस्तको से हमारे यहाँ के इतिहास में कुछ सहायता मिलती है, ऐसी पुस्तको में मुख्य निम्न लिखित हैं:—

(१) दीपवंश—सीलोन के इतिहास की यह पुस्तक ई० स० ३०० के करीब पाली भाषा में बनी थी, जिसमें भारतवर्ष के मौर्यवंशी राजाओ का तथा कुछ-कुछ दूसरा वृत्तान्त भी मिलता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद ओल्डनबर्ग (Oldenberg) साहब ने प्रकाशित किया है।

(२) महावंश—पाली भाषा की इस पुस्तक में ई०स० पूर्व की छठी शताब्दी से ई०स० की १८वीं शताब्दी के मध्य तक का सीलोन का इतिहास है। यह पुस्तक भी राजतरंगिणी की नाईं समय-समय पर लिखी गई थी। इसका प्रथम खंड ई०स० ४५६ और ४७७ के बीच महानामन् नामक विद्वान् ने लिखा था। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये यह पुस्तक उपर्युक्त दीपवंश की अपेक्षा अधिक उपयोगी है, क्योंकि इसमें शिशुनाग तथा मौर्यवंशी राजाओ के समय का भी कुछ-कुछ हाल मिल जाता है। इसके प्रथम खंड का अंग्रेजी अनुवाद जार्ज टर्नर (George Turnour) ने तथा बाकी का

विजयसिंह मुडलिअर ने किया है।

(२) मलिंद पन्हो (मलिंद प्रश्न)–पाली भाषा की इस पुस्तक में प्रतापी यूनानी बादशाह मलिंद अर्थात् (मिनैंडर) और बौद्धस्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर है। इससे मलिंद (मिनैंडर) के जन्मस्थान, राजधानी, प्रताप, विद्वत्ता तथा बौद्ध धर्म ग्रहण करने आदि का बोध होता है। हिन्दुस्तान के यूनानी राजकर्ताओ का इतिहास लिखने में इस पुस्तक से कुछ–कुछ सहायता मिल सकती है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'सेक्रेट बुक्स ऑफ दी ईस्ट नामक सीरीज की ३५वीं जिल्द में छपा है।

(उ) मुसलमानो की पुस्तकें–भारतवर्ष के समस्त हिन्दू राज्यो की स्वतंत्रता क्रम-क्रम से मुसलमानो ने नष्ट की, जिनके यहां इतिहास लिखने की प्रथा थी, जिससे उनकी लिखी हुई अरबी तथा फारसी भाषा की पुस्तको मे विशेष कर हमारे यहां के भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यो का पिछला वृत्तान्त मिल जाता है। उसकी पुस्तकें इतनी है कि उन सब का ब्योरा इस लेख में देना आवश्यक है। अतएव हम यहां पर थोडे से मुख्य-मुख्य और प्राचीन ग्रंथो का ही उल्लेख करते है–

(१) सिल्सिलातुत्तवारीख—यह पुस्तक सुलेमान नामक व्यापारी ने ई० स० ८५१ में अरबी भाषा में लिखी थी, जिसमें उसने हिंदुस्तान आदि की अपनी यात्रा का वृत्तान्त दिया है। उसके समय में दक्षिण के मान्य-खेट (मानकेर, निजाम के राज्य मे) नगर में राठौड वंश का राजा अमोघ-वर्ष (प्रथम) और कन्नौज में पडिहार वंश का राजा भोजदेव (प्रथम) राज करता था। सुलेमान ने उक्त दोनो के राज्यो का वृत्तान्त लिखा है। जिसमें राठौड के लिये उसने बलहरा शब्द का प्रयोग किया है, जो उनके प्रसिद्ध खिताब 'वल्लभराज' का प्राकृत रूप (बलहराय) है।

(२) मुरुजुलजहब—अलमसूदी ने ई० स० की दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस पुस्तक को बनाया था, जिसमें मान्यखेट, कन्नौज आदि के राज्यो का कुछ-कुछ वृत्तान्त है।

उपर्युक्त दोनो पुस्तको का अंग्रेजी सारांश सर एच० एम० इलियट की 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया(The History of India as told by its own Historian)' की पहली जिल्द में छपा है।

(३) तहकीके हिन्द–प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अबुरिहां अल्बेरुनी ने, जो सुलतान महमूद गजनवी के समय हिन्दुस्तान में आया और जिसने कई बरसो तक यहां रहकर संस्कृत पढ़ी थी, ई० स० १०३१ के करीब यह किताब अरबी में लिखी थी, जिसमें हिन्दुओं के धर्म संबंधी विचार तथा

भिन्न-भिन्न शास्त्रो के वर्णन के अतिरिक्त कई प्राचीन सवतो का हाल तथा कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी मिल जाता है। डाक्टर ऐडवर्ड साचू (Dr Edward Sachau) ने इसका अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है ।

(४) चचनामा—यह पुस्तक ई० स० की ८वीं शताब्दी के मध्य के करीब अरबी में बनी थी, जिसका फारसी अनुवाद मुहम्मद अली बिन् हमीद ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में किया था । इसमें मुसलमानो के पहिले सिंध पर राज्य करने वाले हिन्दू राजाओं का वृत्तान्त है (जो अन्य किसी प्रकार की सामग्री से नहीं मिल सकता)। सिंध पर से हिन्दू राज्य मिट जाने तथा मुसलमानो का आधिपत्य जमने का हाल अल्बिलादुरी की बनाई हुई 'फूतूहल्बुल्दान,' मीरमासूम की 'तारीखुस्सिंध' मीरताहिर मुहम्मद की 'तारीख ताहिरी,' 'बेगलर नामा' जो अमीर सय्यद कासिम के बेटे शाह क़ासिमखां ने बनवाया था (ग्रथकर्ता ने अपना नाम नहीं दिया), सय्यद जमाल का तरखांनामा (जिसको 'अरगूनामा' भी कहते है), अलीशेरखानी की 'तुहफेतुल्किराम' तथा 'मजमूआउत्तवारीख' आदि किताबो से भी मिलता है, परन्तु इन सब में चचनामा पुरानी पुस्तक है । नागरी प्रचारिणी पत्रिका के १२वें भाग में मुशी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ 'हिन्दुस्तान का इतिहास' नामक लेख जो छप रहा है, उसका दूसरा प्रकरण (सिंध में हिन्दू राज्य) इन्हीं पुस्तको के आधार पर लिखा गया है । इन पुस्तको का ऐतिहासिक साराश उपर्युक्त इलियट साहिब की 'हिस्ट्री ऑफ इडिया' की पहली जिल्द में छप चुका है ।

(५) तारीख यमीनी—यह अरबी पुस्तक अल्उत्बी ने ई० स० १०२० में रची थी, जिसमें मुसलमान महमूद गज़नवी की उस समय तक की हिन्दुस्तान पर की गई चढाईयो का वृत्तान्त है । उत्बी, उक्त सुलतान का समकालीन लेखक होने से उसकी पुस्तक विशेष उपयोगी है ।

(६) तारीखुस्सुबुक्तगीन—इस किताब को ख्वाजह अबुलफज़ल ने ई० स० १०५९ में बनाया था, जिसमें गजनी के सुल्तान महमूद गजनवी के पुत्र सुलतान नासिरुद्दीन मसूद के समय बनारस, हांसी आदि पर मुसलमानो की जो चढाइयां हुई, उनका हाल है ।

(७) जामेउल्हिकायत—यह पुस्तक मुहम्मदऊफी ने ई० स० की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखी थी, जिसमें जयसिंह (सिद्धराज), कुमारपाल आदि का वृत्तान्त मिलता है ।

(८) ताजुलमआसिर—ई० स० १२३० के आस-पास हसन निजामी ने इसकी रचना की थी। इसमें शहाबुद्दीन गौरी और कुतुबुद्दीन ऐबक के समय देहली, अजमेर, मीरट, कोल, अस्नी, बनारस, ग्वालिअर, नेहरवाला (अणहिलवाडा) कालिजर, जालौर आदि के हिन्दू राजाओ पर मुसलमानो ने जो चढाइया की, उनका हाल है।

(९) कामिलुत्तवारीख—इब्न असर ने ई० स० १२३० के करीब इसको बनाया था। इसमें अब्दुलमलिक की अधीनता में (ई० स० ७७५ में) समुद्र मार्ग से हिन्दुस्तान (काठिआवाड पर) मुसलमानो की चढाई होने, बलभ (शायद प्रसिद्ध वल्लभीपुर हो) को विजय करने, तथा बनारस के राजा जयचन्द्र के मारे जाने का वृत्तान्त है।

उपर्युक्त किताबो (न० ५ से ९ तक) का अग्रेजी साराश इलियट साहिब की, 'हिस्ट्री ऑफ इडिया' की जिल्द दूसरी में छपा है।

(१०) तबक़ाते नासिरी—मिन्हाजुस्सिराज ने ई० स० १२५९ में इस पुस्तक की रचना की थी। इसमें उक्त समय तक भिन्न-भिन्न हिन्दू राज्यो पर मुसलमानो की जो-जो चढाइयाँ हुई, उनका विस्तृत वृत्तान्त है। यह पुस्तक इतिहास के लिए बहुत उपयोगी है। रावरटी (Ravarty) साहिब का किया हुआ इसका अग्रेजी अनुवाद बगाल ऐशिआटिक् सोसाइटी की बिब्लिओथिका इडिका नामक सीरीज में छपा है।

(११) तारीखअलाई—प्रसिद्ध हिंदी कवि अमीर खुस्रो ने (जिसका देहात ई० स० १३३५ में हुआ था) देहली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के समय यह किताब बनाई थी, जिसमें उक्त बादशाह की रणथभोर, मालवा, चित्तौड, देवगिरि, सिवाना, मलबार, मदुरा आदि पर की गई चढाइयो का हाल है। अमीर खुसरो ने इस पुस्तक में अपने समय की घटनाओ का उल्लेख किया है, अतएव यह पुस्तक उस समय के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है। इसका अग्रेजी साराश इलियट साहब की 'हिस्ट्री ऑव इडिया' की तीसरी जिल्द में छपा है।

(१२) तारीख फरिश्ता—मुहम्मद कासिम (फरिश्ता) ने अकबर बादशाह के समय में यह किताब बनाई थी, जिसमें देहली, कुलबर्गा (गुलबर्गा) बीजापुर, अहमदनगर, गोलकोंडा (गोलकुडा), बराड, बीदर, गुजरात (अहमदाबाद), मालवा (माडू), खानदेश, बगाल, बिहार, जौनपुर, मुलतान, सिंध और ठट्टा तथा काश्मीर के मुसलमान राज्यो का (उस समय तक का) वृत्तान्त अनेक पुस्तको के आधार पर लिखा है। मुसलमानों के समय के इस देश के इतिहास की यह अपूर्व पुस्तक है और इस

एक ही पुस्तक से भिन्न-भिन्न हिंदू राज्यो के अस्त होने का बहुत कुछ वृत्तान्त मिल जाता है । इसके दो अग्रेजी अनुवाद छप चुके है ।

जिनसे हमारे यहां के इतिहास में कुछ सहायता मिल सके, ऐसी अरवी तथा फारसी भाषा की और भी कितनी ही पुस्तकें हैं, जिनका स्थानाभाव के कारण हम यहां पर उल्लेख नहीं कर सके । उनमें से बहुतो का अग्रेजी साराश इलियट साहब की 'हिस्ट्री, ऑव इडिया (जिल्दें ८)' तथा वेले साहिव (Sir E C Baylay)की 'हिस्ट्री ऑव गुजरात' में छपा है ।

(ग) प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के लिये सब से अधिक सहायता देने वाले शिलालेख और ताम्रपत्र [दानपत्र] है । शिलालेख बहुधा चट्टानो, स्तम्भो मदिर, मठ, स्तूप, तालाव, वावडी आदि में लगी हुई अथवा गावो और खेतो के वीच गडी हुई पत्थर की शिलाओं, मूर्तियो के आसनो तथा स्तूपो के अन्दर रखे हुए पाषाण के पात्रो पर (जिनमें बहुधा किसी धर्माचार्य की हड्डी आदि रक्खी जाती थी) खुदे हुए होते है और सस्कृत, प्राकृत, तामिल, कनाडी आदि भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न भाषाओ में (गद्य तथा पद्य) दोनो में मिलते है । जिनमें राजा आदि की प्रशंसा होती है, उनको प्रशस्ति भी कहते है । शिलालेख पिशावर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से आसाम तक सर्वत्र मिलते है, कहीं कम कहीं अधिक । नर्मदा से उत्तर के प्रदेश की अपेक्षा दक्षिण में ये बहुत अधिक मिलते है, जिसका कारण यह है कि उधर मुसलमानो का अत्याचार उत्तर की अपेक्षा बहुत कम हुआ । अव तक कई हजार शिलालेख मिल चुके है । जिनमें सबसे पुराना ई० स० ४५० क आस-पास का शक्य जाति के क्षत्रियो के बनाए हुए पिप्रावा (नेपाल की तराई में) के स्तूप से निकले हुए पत्थर के पात्र पर (जिसमें बुद्धदेव की हड्डियां रक्खी गई थीं) खुदा हुआ है और सबसे पिछले ई० स० की १९वीं शताब्दी के कई एक मिले हैं । शिलालेखो में से अधिकतर धर्म सबधी कामो अर्थात् मदिर, मठ, स्तूप, गुफा, तालाव आदि के बनवाने या उनका जीर्णोद्धार कराने, मूर्तियो के स्थापन करने या किसी प्रकार का दान देने के सूचक होते है । जिसमें से कितने ही में उक्त धर्म कार्य से सबध रखने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त उस समय के वहां के राजा वा उस (राजा) के वश का भी वृत्तान्त होता है । राजवशियो के बनवाये हुए मदिरादि के लेखो में कभी-कभी विशेष रूप से उनके वश का वृत्तान्त मिलता है । दूसरे प्रकार के शिलालेखो (अर्थात जिसका

धर्म कार्य से सबध नहीं है) में से किसी में राजाज्ञा, किसी-किसी में विजय आदि किसी प्रसिद्ध घटना का उल्लेख, किसी में एक या अनेक राजाओ की प्रशसा या उनका कुछ-कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त और किसी में उनकी वश-परम्परा मिलती है । कई शिलालेख ऐसे भी मिले है, कि जिनमें वीर पुरुषो के युद्ध में मारे जाने, स्त्रियो के अपने पति के साथ सती होने, शेर आदि हिंसक जानवरो द्वारा किसी की मृत्यु होने, पचायत से फैसला होने, धर्म विरुद्ध किसी कार्य को न करने की प्रतिज्ञा करने, अपनी इच्छा से अग्नि में बैठ कर (पुरुषो) के शरीरान्त करने या भिन्न-भिन्न धर्मावलबियो के बीच के बखेड़े की समाधानी होने का उल्लेख मिलता है । शिला पर लेख खुदवाने का मुख्य अभिप्राय यही है कि उक्त धर्म कार्य या घटना की एव उससे सबध रखने वाले व्यक्ति की यादगार चिर स्थायी रहे । इसी अभिप्राय से राजाओ तथा धनाढ्य पुरुषो ने कितनी पुस्तको[1] को भी शिलाओ पर खुदवा डाला था ।

राजाओं तथा सर्दारो की तरफ से ब्राह्मणो, साधुओ, धर्माचार्यों, देव-मदिरो, मठो वगैरह को दी हुई भूमि (गाव, क्षेत्र) आदि की सनद अथवा दूसरी किसी प्रकार की सनद जो तांबे के पत्रो पर खुदवा कर दी जाती है, उसको 'ताम्रपत्र' कहते है और जिसमें दान का उल्लेख होता है, उसको दानपत्र भी कहते है । ताम्रपत्र अक्सर खेतो में गडे हुए अथवा मकानो की दीवारो या नींवों में गडे हुए मिलते है और कभी-कभी कुओ में से भी निकल आते

1 अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (वीसलदेव) ने अपने रचे हुए "हरकेलि नाटक" को तथा अपने राजकवि सोमेश्वर पडित के रचे हुए "ललित विग्रहराज नाटक" को शिलाओ पर खुदवा कर अपनी बनवाई हुई अजमेर की पाठशाला में (जिसको अब ढाई दिन का झोपडा कहते है) लग-वाया था । परमार राजा भोजदेव की बनवाई हुई धारा नगरी की 'सर-स्वती कठा भरण" नामक पाठशाला मे (जो अब कमलमौला नाम से प्रसिद्ध है) "कुमार शतक काव्य," "पारिजात मजरी नाटिका" आदि पुस्तकें शिलाओ पर खुदी हुई मिली है । सेठ लोलाक ने "उन्नत शिखर पुराण" नामक जैन (दिगबर) पुस्तक को बीजोल्या (मेवाड में) के पास की एक चट्टान पर वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) मे खुदवाया था, जो अब तक सुर-क्षित है और मेवाड के महाराणा राजसिंह ने "राजप्रशस्ति" नामक २४ सर्ग का काव्य बडी-बडी पच्चीस शिलाओ पर खुदवा कर अपने बनवाए हुए राजसमुद्र नामक बडे तालाब की पाल पर लगवाया था, जो अब तक वहाँ पर विद्यमान है ।

है। कितने एक ताम्रपत्र एक ही पत्रे पर खुदे होते है, परन्तु प्राचीन ताम्रपत्र बहुधा अधिक पत्रो पर खुदे हुए मिलते हैं जिनमें से पहिला तथा अन्तिम पत्र एक ही (भीतर की) ओर खुदा रहता हैं, और सब पत्रे कडियो से जुडे रहते है। ताम्रपत्र अधिकतर दान के ही सूचक होते है, जिनमें दान देने वाले और लेने वाले के नाम आदि के अतिरिक्त दान देने वाले (राजा, सामत) के वश का वृत्तान्त भी होता है। अब तक सैकडो ताम्रपत्र मिल चुके है।

प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्र हमारे प्राचीन इतिहास के लिये बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इनसे मौर्य, शातकर्णी (आंध्रभृत्य), शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), अभीर, गुप्त, पल्लव, हूण, यौधेय, बैश, लिच्छवि, मौखरी, मैत्रक, गुहिल, सोलकी, पडिहार, परमार, चौहान, राठौड, कछवाहा, तवर, कलचुरी (हैहयवन्शी), चन्देल, यादव, गुर्जर, पाल, सेन, कदम्ब, शिलारा, सेंद्रक, काकतीय, नाग, निकुम्भ, गगा, बाण, चोल आदि कितने ही राजवशों का बहुत कुछ वृत्तान्त, उनकी वशावलियाँ तथा अनेक राजाओ के राज्याभिषेक तथा देहात के निश्चित् सवत् मिलते हैं। इतना ही नहीं, किंतु अनेक विद्वान्, धर्माचार्य, धनाढ्य, दानी, वीर आदि प्रसिद्ध पुरुषो के नाम तथा उनके निश्चित समय आदि का भी पता चलता है एवम् अनेक प्राचीन सवतो के नाम तथा उनके प्रारम्भ का निर्णय होता है और कई दूसरी आवश्यकीय बातें जानी जाती है।

पत्थर और तावे के पत्रो के अतिरिक्त लोह के स्तम्भो पर भी कुछ लेख खुदे हुए मिले है, जिनमें मुख्य देहली के प्रसिद्ध कुतुबमीनार के पास खडे हुए लोह के स्तम्भ (कीली) पर खुदा हुआ गुप्तवशी प्रतापी राजा चन्द्र (चन्द्रगुप्त दूसरे) का लेख है, जिसमें उक्त राजा की विजय (वगाल से वलूचिस्तान तक) का उल्लेख है।

शिलालेख और ताम्रपत्र अनेक पुस्तको में छपे है, जिनमें से मुख्य नीचे लिखी हुई है—

एपिग्राफिआ इडिका (जिल्दें ९), साउथ इडिअन् इन्स्क्रिपशन्स (जिल्द ३), एपिग्राफिआ कर्णाटिका (जिल्द १२), इडिअन् एटिक्वेरी, तामिल ऍड सस्कृत इन्स्क्रिपशन्स (डा० वर्जेस और नटेश शास्त्री-सपादित), गुप्त इन्स्क्रिपशन्स (डा० फ्लीट सम्पादित), अशोक इन्स्क्रिपशन्स (जनरल कनिंगहाम सम्पादित), एशिआटिक सोसाइटी वगाल, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और वम्वई की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल, वियाना ओरिएंटल जर्नल, जर्नल एशियाटिक, अमेरिकन् ओरिएटल सोसाइटी के

जर्नल, एशियाटिक रिसर्चेज, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, भावनगर प्राचीन शोध संग्रह (प्रथम भाग विजयशंकर गौरीशंकर ओझा सम्पादित), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जनरल कनिंगहाम सम्पादित जिल्दें २३), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (डाक्टर वर्जेस सम्पादित जिल्दें ५), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जिल्दें २—सन् १९०२—३ और १९०३—४ की), पाली, संस्कृत ऐंड ओल्ड कनडी इंस्क्रिपशन्स (डा० वर्जेस और फ्लीट सम्पादित), ट्रांसलेशंस ऑफ इंस्क्रिपशन्स फ्रॉम बेलगाव ऐंड कलाडगी डिस्ट्रिक्टस (डॉ० फ्लीट और हरिवामन लिमये सम्पादित), इंस्क्रिपशन्स फ्रॉम दि केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया (डा० भगवानलाल इंद्रजी और डा० बर्जेस सम्पादित) और आर्किआलोजिकल सर्वे की प्रोग्रेस रिपोर्टें आदि ।

(घ) प्राचीन सिक्के मुद्रा और शिल्प

(अ) प्राचीन सिक्के—भारतवर्ष में चलनेवाले सोने, चांदी और तांबे के हजारों प्राचीन सिक्के मिल चुके हैं, और समय२ पर मिलते ही रहते हैं । ये सिक्के भी हमारे इतिहास में बड़ा काम देते हैं । ई० स० पूर्व की चौथी शताब्दी के पहले समस्त भारतवर्ष में चलनेवाले सिक्कों पर (जो चतुरस्र और गोल दोनों प्रकार के होते थे) राजाओं के नाम नहीं, किंतु सूर्य, चन्द्र, धनुष, पशु, पक्षी, वृक्ष, स्तूप, तारे आदि अनेक भिन्न-भिन्न चिह्नों के ठप्पे ही लगाए जाते थे । ऐसे प्राचीन सिक्के इतिहास में कुछ भी सहायक नहीं हो सकते । सिकन्दर की चढ़ाई के पीछे और खासकर बाक्ट्रिया के यूनानियों का राज्य काबुल, पंजाब आदि पर होने के समय से हमारे सिक्कों में बहुत कुछ सुधार हुआ, और यूनानियों के सिक्कों का अनुकरण किया जाकर उनपर राजाओं के नाम आदि अंकित होने लगे । इस देश में सुन्दरता के साथ बने हुए सिक्के प्रथम बाक्ट्रिया के यूनानी राजाओं ने बनाए, जिनकी एक तरफ प्राचीन यूनानी लिपि में यूनानी भाषा का लेख (जिसमें राजा का नाम तथा खिताब होता था) और दूसरी ओर खरोष्ठी (गांधार) लिपि में (जो फारसी की नाईं उलटी पढ़ी जाती है), बहुधा उसी आशय का (संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा का लेख[1] मिलता है । यूनानियों के पीछे शकों ने भी इस

(1) [illegible]

देश पर अपना आधिपत्य जमाया जिनके सिक्के[1] भी यूनानियों के सिक्के की शैली के बनते रहे। इसी तरह के कुशनवन्शियो के सिक्के भी बनें, परन्तु उनके पिछले सिक्को में दोनो तरफ ग्रीक लिपि के ही लेख है। पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्को[2] पर एक तरफ प्राचीन देवनागरी लिपि के और दूसरी ओर यूनानी लिपि के लेख मिलते है, परन्तु चष्टन के बाद के राजाओ के समय यहाँ वालो को यूनानी भाषा का ज्ञान रहा हो, ऐसा अनुमान नहीं होता, क्योकि उन सिक्को पर के यूनानी लेखो से यही पाया जाता है कि उन पर 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की तरह लोग यूनानी अक्षरो की नक़ल बना देते थे, जिनसे कुछ भी आशय नहीं निकलता। ई० स० की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्तो के प्रतापी राज्य का उदय हुआ, जिन्होने कुशनवन्शियो की शैली का अपने सिक्को में अनुकरण किया, परन्तु यूनानी लेख को मिटाकर दोनो ओर प्राचीन देवनागरी लिपि का लेख रक्खा, एवम् युनानी, ईरानी आदि देवी-देवताओ की तस्वीरो के स्थान पर हिन्दुओ के देवी-देवताओ की तस्वीरें (उस पर) बनवाईं। गुप्तों के समय से हिंदू शैली के सुन्दर सिक्के बनने लगे, परन्तु उन (गुप्तो) के बाद समय के साथ सिक्कों की कारीगरी में फिर भद्दापन आने लगा। यह सब परिवर्तन बहुधा नर्मदा के उत्तर में चलनेवाले सिक्को में हुआ। दक्षिण के सिक्को पर विदेशियो के सिक्को का प्रभाव बहुत ही कम पडा। जिससे बहुत अरसे तक वहाँ पर प्राचीन शैली के अर्थात् बिना लेख के सिक्के ही चलते रहे। (सातवाहनवन्शी राजाओ के सिक्कों में नवीन शैली का अनुकरण पाया जाता है) पीछे से वहाँ के सिक्को पर भी राजाओ के नाम आदि अंकित होने लगे, परन्तु उनमें सुन्दरता कम पाई जाती है।

अबतक यूनानी शक, क्षत्रप, कुशन, (तुर्क), आंध्र, मौखरी, मैत्रक, (वल्लभी के राजकर्ता), परिव्राजक (डाहलदेश के जोगिया राजा),

1 शको के सिक्के यूनानियो के सिक्को जैसे सुन्दर नही है। उनमें क्रम-क्रम से भद्दापन आता गया।

2 पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्को पर एक तरफ राजा का सिर तथा संवत् का अंक, और दूसरी तरफ बीच में चैत्य का चिह्न तथा किनारे के निकट प्राचीन नागरी लिपि का लेख है। जिसमें राजा का तथा उसके पिता का नाम और उनके खिताबो का उल्लेख मिलता है। अतएव सिक्को के आधार पर क्षत्रपो का समय तथा राजक्रम निश्चित होता है।

कड़ियों की संधि पर राजमुद्राएँ लगी हुई मिलती हैं। कितने ही मिट्टी के गोले ऐसे मिले हैं, जिन पर भिन्न-भिन्न पुरुषों की मुद्राएँ लगी हुई हैं। अंगूठियों तथा कीमती पत्थरों पर भी खुदी हुई कई मुद्राएँ मिली हैं। इन मुद्राओं से भी हमारे यहाँ के प्राचीन इतिहास में कुछ-कुछ सहायता मिल सकती है। कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से भोजदेव तक की पूरी वंशावली तथा चार रानियों के नाम हैं। वहीं के राजा विनायकपाल के ताम्रपत्र की मुद्रा में देवशक्ति से विनायकपाल तक की वंशावली और ६ रानियों के नाम हैं। गुप्तवंश के राजा कुमारगुप्त (दूसरे) की मुद्रा में (जो लखनऊ के म्यूजिअम में रक्खी हुई है) महाराजगुप्त से लगाकर कुमारगुप्त (दूसरे) तक वंशावली एवं छः राजमाताओं के नाम हैं। मौखरी सर्ववर्मा की मुद्रा में हरिवर्मा से सर्ववर्मा तक की वंशावली तथा चार रानियों के नाम हैं। गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरे) के पुत्र गोविंदगुप्त के नाम का पता एक मिट्टी के गोले पर लगी हुई उस (गोविंदगुप्त) की माता ध्रुवस्वामिनी की मुद्रा से ही लगता है। ऐसे ही कई राजाओं, धर्माचार्यों, धनाढ्यों आदि के नाम उनकी मुद्राओं से मिल जाते हैं। अब तक २०० से अधिक मुद्राएँ मिल चुकी हैं, उनका वृत्तान्त एपिग्राफिआ इंडिका, रायल बंगाल, और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटिओं के जर्नल, जनरल कनिंगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्ट्स, इंडिअन एंटिक्वेरी तथा आर्किआलोजिकल सर्वे की एन्युअल रिपोर्ट (सन् १९०३-४ ई० की) आदि पुस्तकों में छपा है।

(इ) शिल्प—प्राचीन चित्र, मंदिर, गुफा आदि स्थान तथा प्राचीन मूर्तियाँ भी इतिहास में कुछ सहायता देती हैं। चित्रों से पोशाक, जेवर आदि का हाल मालूम होने के अतिरिक्त उनके बनाने के समय की चित्र-विद्या की दशा का भी ज्ञान होता है। प्रसिद्ध अजंता की गुफा की दीवार पर के सोलंकी राजा पुलकेशी (दूसरे) के दरबार के रंगीन चित्र से उसके दरबार के ढंग के अतिरिक्त उस समय की वहाँ की पोशाक आदि का हाल मालूम होता है। प्राचीन मंदिर, गुफा आदि से भी उसके बनाने वालों के नाम आदि का लेखों से पता लगाने पर इतिहास लेखक को कुछ-कुछ सहायता मिल जाती है और उनमें खुदी हुई मूर्तियाँ वही काम देती हैं, जो प्राचीन चित्र देते हैं। परन्तु यह लिखना अनुचित नहीं होगा कि हमारे यहाँ की प्राचीन मूर्तियों में वास्तविकता लाने का यत्न किया गया हो, ऐसा पाया नहीं जाता, क्योंकि कई पुरुषों की प्राचीन मूर्तियाँ अब तक विद्यमान हैं, जिन सबके चेहरे एक से हैं। प्राचीन चित्र तथा मंदिरादि के फोटो कई पुस्तकों में

छपे हैं, जिनमें मुख्य 'दी पेंटिंग्ज ऑफ अजंटा' (दो जिल्दें, जानग्रिफिथ साहब की बनाई), आर्किआलोजिकल सर्वे की भिन्न-भिन्न पुस्तकें आदि हैं ।

उपर्युक्त समस्त सामग्री (क, ख, ग और घ) द्वारा भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास बनाने का यत्न कहाँ तक सफल हो सकता है ? यह जानने की आकाक्षा रखने वाले पाठको को हम 'भारतीय ऐतिहासिक ग्रथमालाF' की पहिली जिल्द (जिसमें सोलकियो का प्राचीन इतिहास छपा है) देखने का आग्रह करते है, क्योकि वह केवल उपर्युक्त सामग्री के आधार पर तैयार की गई है ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, बनारस (प्राचीन सस्करण)
ई० स० १९०८–९ भाग १३, पृ० ९१–१४१

सम्पादकीय टिप्पण

A पृ० ३७, 'भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री' । यह निबन्ध श्री ओझाजी द्वारा उपरोक्त पत्रिका, भाग १३, मे प्रकाशित हुआ था । इतिहास के विद्यार्थियो में इसकी माग विशेष रहने से उक्त निबन्ध को फिर उन्होने थोडे बहुत परिवर्तन के साथ पुस्तकाकार रूप से वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपवाकर ई० सन् १९११ (वि० स० १९६८) में प्रकाशित किया । इस निबन्ध में उन्ही पुस्तको आदि के नामो का समावेश हुआ है, जिनका कि उस समय श्री ओझाजी को ज्ञान था । इसके बाद इतिहास के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई है और कितने ही शिलालेख, दानपत्र, सिक्के मुद्राए, पुस्तको आदि का पता लगा है । इतिहास के अज्ञात विषयो पर भी कितने ही विद्वानो ने डा० ओझा वर्णित सामग्री के आधार पर ग्रथो की रचना कर भारतीय इतिहास के भडार को समृद्ध बनाने का यत्न किया है । तक्षशिला, हरप्पो, मोहनजोदडो आदि की खुदाई में भी अद्वितीय साधन मिले है, जिनसे भारत की अति प्राचीन सभ्यता और सस्कृति का ज्ञान होता है । पुरातत्वानुसधान के प्रेमियो के उद्योग से ऐतिहासिक क्षेत्र में सतत विकास हो रहा है, यह शुभ लक्षण है । इस निबध में उल्लिखित कई ग्रथ प्रकाशित हो गये है, जिससे भारतीय इतिहास लेखन-कला का साधन सुलभ हो गया है ।

B पृ० ३९, पा० ५ राजतरगिणी के दूसरे खड के कर्ता जोनराज का समय ई० सन् की पन्द्रहवी शताब्दी निश्चित् है । अतएव इस निवन्ध मे जो समय ई० सन्

११४२, राजतरगिणी दूसरे खड की रचना का लिखा गया है, वह ठीक नही है। वस्तुत राजतरगिणी का दूसरा खण्ड जोनराज द्वारा ई० सन् १४४२ में लिखा गया। सम्भव है, मूल मे लेखक अथवा छापे के दोप से ई० सन् ११४२ रह गया हो।

C पृ० ४१, पृ० २३७ पृथ्वीराज विजय इस महाकाव्य की अजमेर के प्रसिद्ध चौहान महाराजा पृथ्वीराज के दरबारी कवि जयानक द्वारा रचना हुई। यह ऐतिहासिक काव्य सस्कृत भाषा में है। जयानक काश्मीर का निवासी था और पृथ्वीराज की विद्यमानता में ही उसने इस वृहद् काव्य ग्रथ की रचना आरभ की थी। वह अपना ग्रथ सम्पूर्ण करने नही पाया कि पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन गौरी की चढाई हुई, जिससे वह उक्त अपूर्ण ग्रथ को लेकर काश्मीर चला गया। ई० स० की पन्द्रहवी शताब्दी में जोनराज द्वारा उस पर सस्कृत भाषा मे टीका लिखी गई। यह ग्रथ काश्मीर की शारदा लिपि में लिखा हुआ है और अत्यन्त ही जीर्ण-शीर्ण है। पत्र सख्या क्रम से नही है तथा इसका कितना ही भाग नष्ट हो गया है। डॉ० बुल्हर को काश्मीर के प्राचीन इतिहास की सामग्री का शोध करते समय ई० स० १८७६ मे यह ग्रथ मिला, जिसको उन्होने दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय में भेंट किया है। दक्कन कॉलेज पूना के पुस्तकालय से मूल ग्रथ मगवाकर श्री ओझाजी एव उनके मित्र श्री चन्द्रधर गुलेरी बी० ए० ने पृथ्वीराज विजय महाकाव्य का बडी योग्यतापूर्वक सम्पादन किया, जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपकर श्री ओझाजी द्वारा प्रकाशित होगया है।

D पृ० ४४-४५। यादव राजा सिंघण एवम् धोलका के बघेल (सोलकी) राणा लावण्यप्रसाद के बीच वि० स० १२८८ में सधि हुई, वह लेख-पन्चाशिका में प्रकाशित हुई है। ऊपर वि० स० १२८८ के आगे ११३२ के अक दिये है। इनमे से ११३२ को शक सम्वत् पढना चाहिये, जिसका दक्षिण मे प्रचार है।

E पृ० ५१, प० ३। यह ग्रथ सम्पूर्ण रूप से नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा कई भागो मे छपाकर प्रकाशित किया गया है।

F पृ० ६८ प० ६। भारतीय ऐतिहासिक ग्रथमाला पहिली जिल्द अर्थात् सोलकियो का प्राचीन इतिहास, श्री ओझाजी द्वारा ई० स० १६०७ में प्रकाशित हुआ। उसकी केवल छ सौ प्रतिया ही छपी और अब अप्राप्य है।

---

२ क्षत्रियों के गोत्र A

ब्राह्मणो के गौतम, भारद्वाज, वत्स आदि अनेक गोत्र (ऋषि-गोत्र) मिलते हैं जो उन (ब्राह्मणो) का उक्त ऋषियो के वंशज होना प्रकट करते हैं। ब्राह्मणो के समान क्षत्रियो के भी अनेक गोत्र उनके शिलालेखादि में मिलते है, जैसे कि चालुक्यो (सोलंकियो) का मानव, चौहानो का वत्स, परमारो का वसिष्ठ, वाकाटको का विष्णुवर्द्धन आदि। क्षत्रियो के गोत्र किस बात के सूचक हैं, इसके विषय में मैंने टॉड राजस्थान के सातवें प्रकरण पर टिप्पणी करते समय प्रसगवशात् वाकाटक वश का परिचय देते हुए लिखा था—"वाकाटक-वशियो के दानपत्रो में उनका विष्णवर्द्धन गोत्र में होना लिखा है। बौद्धायन प्रणीत 'गोत्र-प्रवर-निर्णय' के अनुसार [विष्णुवर्द्धन गोत्र वालो का महर्षि भारद्वाज के वश में होना पाया जाता है। परन्तु प्राचीन काल में राजाओ का गोत्र वही माना जाता था, जो उनके पुरोहितो का होता था। अतएव विष्णुवर्द्धन गोत्र से अभिप्राय इतना ही होना चाहिये कि इस वश के राजाओ के पुरोहित विष्णुवर्द्धन गोत्र के ब्राह्मण थे।" * कई बरसो तक मेरे उक्त कथन के विरुद्ध किसी ने कुछ भी नहीं लिखा। परन्तु अब उस विषय की चर्चा खडी हुई है जिससे उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य एम०ए०एल-एल बी० के नाम और उनकी 'महाभारत मीमासा' पुस्तक से हिन्दी प्रेमी परिचित ही है। वैद्य महाशय इतिहास के भी प्रेमी है। उन्होने ई०सन् १६२३ में "मध्य युगीन भारत, भाग दूसरा" नाम की मराठी पुस्तक प्रकाशित की जिसमें हिन्दू राज्यो का उत्कर्ष अर्थात् राजपूतो का प्रारंभिक(अनुमानत ई०सन् ७५०से १०००तक का) इतिहास लिखने का यत्न किया है। उसमें क्या राजपूत विदेशी है, अग्निकुल की झूठी कल्पना, पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिक आलोचना, क्या अग्निवशी गूजर हैं, राजपूतो के गोत्र और आर्य जाति का राजपूताने में बसना आदि विषयो पर

*खड्गविलास प्रेस(बाँकीपुर)का छपा'हिन्दी टॉड राजस्थान',खड१,पृ०५३०-३१।

सम्पादकीय टिप्पण

A यह निबध स्वर्गीय डॉ ओझा द्वारा स्वय के 'राजपूताना का इतिहास' जि० १ और उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० १, की परिशिष्ट सख्या ४ मे प्रकाशित हो चुका है।

अपना मतव्य तथा चित्तौर के गुहिलवशियो, सांभर के चौहानो, कन्नौज के सम्राट्-प्रतिहारो, (पडिहारो), अनहिलवाडे (पाटण) के चावडो, धार के परमारों, बुदेलखड के चँदेलो, चेदि अर्थात् त्रिपुरि के कलचुरियो, बगाल अथवा मूंगेर के पालवशियो, दक्षिण के राष्ट्रकूटो (राठौडो) आदि का कुछ इतिहास, तथा उस समय की भाषा, धार्मिक परिस्थिति, सामाजिक स्थिति, वर्णव्यवस्था, राजकीय परिस्थिति, मुल्की और फौजी व्यवस्था आदि कई ऐतिहासिक विषयो का समावेश किया है। वैद्य महाशय का यत्न बडा ही सराहनीय है। मेरे इस लेख का उद्देश्य उनके ग्रथ की समालोचना करना नहीं, किंतु केवल राजपूतो (क्षत्रियो) के गोत्र के सबध में मेरा और उनका जो मतभेद है, उसी का निर्णय करना है। वैद्य महाशय ने 'राजपूतो के गोत्र' तथा 'गोत्र और प्रवर' इन दो लेखो में यह बतलाने का यत्न किया है कि क्षत्रियो के जो गोत्र है, वे उनके मूल पुरुषो के सूचक है, पुरोहितो के नहीं, और पहले क्षत्रिय लोग ऐसा ही मानते थे (पृ०६१)। अर्थात् भिन्न-भिन्न क्षत्रिय वास्तव में उन ब्राह्मणो की सतति है, जिनके गोत्र वे धारण करते है।

अब इस विषय की जांच करना आवश्यक है कि क्षत्रियों के गोत्र वास्तव में उनके मूल पुरुषो के सूचक है वा उनके पुरोहितो के, जो उनके सस्कार करते और उनको वेदादि शास्त्रो का अध्ययन कराते थे।

(१) याज्ञवल्क्य स्मृति के आचाराध्याय के विवाह प्रकरण में कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिये, यह बतलाने के लिये नीचे लिखा हुआ श्लोक है—

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजा।
पचमात्सप्तमादूर्ध्व मातृत पितृस्तथा। ५३ ॥

आशय—जो कन्या निरोग, भाईवाली, भिन्न ऋषि-गोत्र की हो, और (वर का) माता की तरफ से पाँच पीढी तक और पिता की तरफ से सात पीढ़ी तक का जिससे सबध न हो, उससे विवाह करना चाहिए।

वि०स० ११३३ और ११८३ के बीच दक्षिण (कल्याण) के दरबार के चालुक्य (सोलकी) राजा विक्रमादित्य (छठे) के समय के पडित विज्ञानेश्वर ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर 'मिताक्षरा' नाम की विस्तृत टीका लिखी, जिसका अब तक विद्वानों में बडा सम्मान है और जो सरकारी न्यायालयो में भी प्रमाण रूप मानी जाती है। उक्त टीका में ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक के

R ई स १०७६ और ११२६ (स० टि०)।

'असमानार्षगोत्रजा' चरण का अर्थ बतलाते हुए विज्ञानेश्वर ने लिखा है— 'राजन्य (क्षत्रिय) और वैश्यो में अपने गोत्र (ऋषि गोत्र) और प्रवरों का अभाव होने के कारण उनके गोत्र और प्रवर पुरोहितो के गोत्र और प्रवर * समझने चाहिएँ †। साथ ही उक्त कथन की पुष्टि में आश्वलायन का मत उद्धृत करके बतलाया है कि राजाओ और वैश्यो के गोत्र वे ही मानने चाहिएँ जो उनके पुरोहितो के हो§। मिताक्षरा के उक्त अर्थ के विषय में श्रीयुत वैद्यजी का कथन है—'मिताक्षरा-कार ने यहाँ ग़लती की है, इसमें हमें लेशमात्र भी सदेह नहीं है' (पृ० ६०) 'मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियों के स्वत के गोत्र थे' (पृ०६१)। इस कथन का आशय यही है कि मिताक्षरा के बनने के पीछे क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के सूचक है, ऐसा माना जाने लगा, पहले ऐसा नहीं था।

अब हमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि मिताक्षरा के बनने के पूर्व क्षत्रियो के गोत्रो के विषय में क्या माना जाता था। वि० स० दूसरी शताब्दी के प्रारभ में अश्वघोष नामक प्रसिद्ध विद्वान् और कवि हुआ, जो पहले ब्राह्मण था, परन्तु पीछे से बौद्ध हो गया था। वह कुशनवशी राजा कनिष्क का धर्मसंबंधी सलाहकार था, ऐसा माना जाता है। उसके 'बुद्धचरित' और 'सौंदरानद काव्य' कविता की दृष्टि से बडे ही उत्कृष्ट समझे जाते है। उसकी प्रभावोत्पादक कविता सरलता और सरलता में कवि-शिरोमणि कालिदास की कविता के जैसी ही है; और यदि कालिदास की समता का पद किसी कवि

---

* प्रत्येक ऋषिगोत्र के साथ बहुधा तीन या पाँच प्रवर होते है जो उक्त गोत्र (वश) में होने वाले प्रवर (परम प्रसिद्ध) पुरुषो के सूचक होते है। कश्मीरी पण्डित जयानक अपने 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' में लिखता है—

काकुत्स्थमिक्ष्वाकुरघू च यद्दधत्पुराभवत्त्रिप्रवर रघो कुलम्।
कलावपि प्राप्य स चाहमानता प्ररूढतुर्यप्रवर बभूव तत् ।।२।७१।।

आशय—रघु का वश (सूर्यवश) जो पहले (कृतयुग में) काकुत्स्थ, इक्ष्वाकु और रघु इन तीन प्रवरोवाला था, वह कलियुग में चाहमान (चौहान) को पाकर चार प्रवरवाला हो गया।

†राजन्यविशा प्राप्तिस्विकगोत्राभावात् प्रवराभावस्तथापि पुरोहितगोत्रप्रवरौ वेदितव्यो (मिताक्षरा, पृ० १४)।

§ तथा च यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशां प्रवृणीते इत्याश्वलायन । (वही, पृ० १४)।

को दिया जाय तो उसके लिये अश्वघोष ही उपयुक्त पात्र हो सकता है। उसको हिन्दुओ के शास्त्रो तथा पुराणों का ज्ञान भी अनुपम था, जैसा कि उसके उक्त काव्यो से पाया जाता है। सौंदरानद काव्य के प्रथम सर्ग में उसने क्षत्रियो के गोत्रो के सबध में जो विस्तृत विवेचन किया है, उसका साराश नीचे लिखा जाता है—

"गौतम गोत्री कपिल नामक तपस्वी मुनि अपने माहात्म्य के कारण 'दीर्घतपस्' के समान और अपनी बुद्धि के हेतु काव्य (शुक्र) और अगिरस के समान था। उसका आश्रम हिमालय के पार्श्व में था। कई इक्ष्वाकुवशी राजपुत्र मातृद्वेष के कारण और अपने पिता के सत्य की रक्षा के निमित्त राजलक्ष्मी का परित्याग कर उस आश्रम में जा रहे। कपिल उनके उपाध्याय (गुरु) हुए, जिससे राजकुमार जो पहले कौत्स गोत्री थे, अब अपने गुरु के गोत्र के अनुसार गौतम गोत्री कहलाए। एक पिता के ही पुत्र भिन्न-भिन्न गुरुओ के कारण भिन्न-भिन्न गोत्र के हो जाते है। जैसे कि राम (बलराम) का गोत्र 'गार्ग्य' और वासुभद्र (कृष्ण) का 'गौतम' हुआ। जिस आश्रम में उन राजपुत्रो ने निवास किया, वह 'शाक' नामक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण वे इक्ष्वाकुवशी 'शाक्य' नाम से भी प्रसिद्ध हुए। गौतम ने अपने वश की प्रथा के अनुसार उन राजपुत्रो के सस्कार किए और उक्त मुनि और उन क्षत्रिय-पुगव राजपुत्रो के कारण उस आश्रम ने एक साथ 'ब्रह्मक्षेत्र' की शोभा धारण की *

यही मत बौधायन, आपस्तब और लौगाक्षी का है (पुरोहित प्रवरो राज्ञाम्) देखो 'गोत्र प्रवर निबधकदबम्,' पृ० ६० ।

बुदेला राजा वीरसिंह देव (बरसिंह देव) के समय मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' नामक ग्रथ लिखा था। उसमे भी क्षत्रियो के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के सूचक माने है—

तत्र द्विविधा क्षत्रिया केचिद्विद्यमान मत्रदृश केचिदविद्यमान मत्रदृश। तत्र विद्यमान मत्रदृश स्वीयानेव प्रवरान्प्रवृणीरन्। येत्वविद्यमान मत्रदृशास्ते पुरोहितप्रवरान् प्रवृणीरन्। स्वीय वरत्वेपि स्वस्य पुरोहितगोत्रप्रवरपक्ष एव मिताक्षराकारमेधातिथिप्रभृतिभिराश्रित

'वीरमित्रोदय,' सस्कार प्रकाश, पृ० ६५६ ।

*गौतम. कपिलो नाम मुनिधर्म्मभृता वर ।
बभूव तपसि श्रान्त कक्षीवानिव गोतम ।। १ ।।
माहात्म्यात् दीर्घतपसो यो द्वितीय इवाभवत् ।
तृतीय इव यश्चाभूत् काव्याङ्गिरसयोर्धिया ।। ४ ।।

अश्वघोष का यह कथन मिताक्षरा के बनने से १००० वर्ष से भी अधिक पूर्व का है; अतएव श्रीयुत वैद्य के यह कथन कि 'मिताक्षराकार ने ग़लती की है और मिताक्षरा के पूर्व क्षत्रियो के स्वतः के गोत्र थे' सर्वथा मानने योग्य नहीं हैं; और क्षत्रियो के गोत्रो को देखकर यह मानना कि ये क्षत्रिय उन ऋषियो (ब्राह्मणो) के वशधर है जिनके गोत्र वे धारण करते है, सरासर भ्रम ही है। पुराणो से यह तो पाया जाता है कि अनेक क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए और उनसे कुछ ब्राह्मणो के गोत्र चले*; परन्तु उनमें यह कहीं लिखा नहीं मिलता कि क्षत्रिय ब्राह्मणो के वशधर है।

तस्य विस्तीर्णतपस पार्श्वे हिमवत. शुभे।
क्षेत्र चायतनञ्चैव तपसामाश्रयोऽभवत् ॥ ५ ॥
अथ तेजस्विसदन तपक्षेत्र तमाश्रमम्।
केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सव ॥१८॥
मातृशुल्कादुपगता ते श्रिय न विषेहिरे।
ररक्षुश्च पितु सत्यं यस्माच्छिश्रियिरे वनम् ॥२१॥
तेषा मुनिरुपाध्यायो गोतम· कपिलोऽभवत्।
गुरोर्गोत्रादत कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमा· ॥२२॥
एकपित्रोर्यथा भ्रात्रो पृथग्गुरुपरिग्रहात्।
राम एवाभवद् गार्ग्यो वासुभद्रोऽपि गोतम ॥२३॥
शाकवृक्षप्रतिच्छन्न' वास यस्माच्च चक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृता· ॥ २४ ॥
स तेषा गोतमश्चक्रे स्ववशसदृश क्रिया ॥ २५ ॥
तद्वन मुनिना तेन तैश्च क्षत्रियपुङ्गवै।
शान्ता गुप्ता च युगपद् ब्रह्मक्षत्रश्रिय दधे ॥ २७ ॥
—सौंदरानदकाव्य। सर्ग १।

* सूर्यवंशी राजा माधाता के तीन पुत्र पुरुकुत्स, अबरीष और मुचकुंद हुए। अबरीष का पुत्र युवनाश्व और उसका हरित हुआ, जिसके वशज अगिरस हारित कहलाए और हारित गोत्री ब्राह्मण हुए।

तस्यामुत्पादयामास माधाता त्रीन्सुतान्प्रभु ॥ ७१ ॥
पुरुकुत्समम्बरीप मुचकुद च विश्रुतम्।
अम्बरीपस्य दायादो युवनाश्वोऽपर स्मृत ॥ ७२ ॥
हरितो युवनाश्वस्य हारिता श्रय स्मृता।
एते ह्यङ्गिरस पुत्रा क्षात्रोपेता द्विजातय ॥ ७३ ॥
—वायुपुराण अध्याय ८८।

यदि क्षत्रियों के गोत्र उनके पुरोहितो (गुरुओ) के सूचक न होकर उनके मूल पुरुषो के सूचक होते जैसा कि श्रीयुत वैद्य का मानना है तो ब्राह्मणो के समान उनके गोत्र सदा वे ही बने रहते और कभी न बदलते। परन्तु प्राचीन शिलालेखादि से ऐसे प्रमाण मिल जाते है जिनसे एक ही कुल या वश के क्षत्रियो के समय-समय पर भिन्न गोत्रो का होना पाया जाता है। ऐसे थोडे से उदाहरण नीचे उद्धृत किए जाते है--

मेवाड (उदयपुर) के गुहिल वशियो (गुहिलोतो, गोहिलो, सीसोदियो) का गोत्र वैजवाप है। पुष्कर के अष्टोत्तर-शत लिंगवाले मदिर में एक सती का स्तभ खडा है जिस पर के लेख से पाया जाता है कि वि० स० १२४३ C माघ सुदी ११ को ठ० (ठकुराणी) हीरवदेवी ठा० (ठाकुर) कोल्हण की स्त्री सती हुई। उक्त लेख में ठा० कोल्हण को गुहिलवशी और गौतम गोत्री* लिखा है। काठियावाड के गुहिल भी, जो मारवाड के खेड इलाके से वहाँ गए है और जो मेवाड के राजा शालिवाहन के वशज है, अपने को गौतम गोत्री मानते है। मध्य प्रदेश के दमोह जिले के मुख्य स्थान दमोह से गुहिल वशी विजयसिह का एक शिलालेख मिला है, जो इस समय नागपुर म्युजिअम मे सुरक्षित है। वह लेख छदो-बद्ध डिंगल भाषा में खुदा है और उसी के अत का थोडा-सा अश सस्कृत में भी है। पत्थर का कुछ टुकडा टूट जाने के कारण सवत् जाता रहा है। उसमें गुहिल वश के चार राजवशियो के नाम क्रमश विजयपाल, भुवनपाल, हर्षराज और विजयसिह दिए है, जिनको विश्वामित्र गोत्री† और गुहिलोत ‡ (गुहिल।

अवरीषस्य मावातुस्तनयस्य युवनाश्व पुत्रोभूत्। तस्माद्धरितो यतोऽगिरसो। हारिता ॥ ५ ॥ —विष्णुपुराण। अश ४, अध्याय ३।

विष्णुपुराण की टीका में--

अवरीषस्य युवनाश्व प्रपितामहसनामा यतो हरिताद्धारिता अगिरसो द्विजा हरितगोत्र प्रवरा*। (पृ० ६।१)।

चद्रवशी राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया और उनके वशज ब्राह्मण हुए जो कौशिक गोत्री कहलाते है। पुराणो में ऐसे बहुत से उदहारण मिलते है।

* राजपूताना म्युजिअम् (अजमेर) की ई० सन् १९२०-२१ की रिपोर्ट, पृ० ३, लेखसख्या ५।

† विसामित्त गोत उत्तिम चग्ति विमल पवित्तो० (पक्ति६ठी, डिंगल भाग में) विस्वा (श्वा) मित्रे सु(शु) भे गोत्रे (पक्ति २९, सस्कृत अश में)।

‡ विजयसीहु धूर चरगो चाई सूरोऽमुमगो। सेलम्बहनम कुशलो गुहिलोतो

C ई० स० ११४७। (स० टि०)।

बतलाया है। ये मेवाड से ही उधर गए हुए प्रतीत होते हैं, क्योकि विजयसिंह के विषय में लिखा है कि वह चित्तौड की लडाई मे लडा और उसने दिल्ली की सेना को परास्त किया *। इस प्रकार मेवाड के गुहिलवंशियो के तीन भिन्न गोत्रो का पता चलता है।

इसी प्रकार चालुक्यो (सोलंक्यो) का मूल गोत्र मानव्य था और मद्रास अहाते के विशाखपट्टन (विजगापट्टम्) जिले के जयपुर राज्य (जमींदारी) के अन्तर्गत गुणपुर और मोडगुला के ठिकाने अब तक सोलंकियो के ही है और उनका गोत्र मानव्य † ही है, परन्तु लूणावाडा, पीथापुर और रीवाँ आदि के सोलंकियो (बघेलो) का गोत्र भारद्वाज होना श्रीयुत वैद्य महाशय ने बतलाया है (पृ० ६४)।

इस प्रकार एक ही वंश के राजाओ के भिन्न-भिन्न गोत्र होने का कारण यही मानना पडता है कि राजपूतो के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो के ही सूचक है, और वे अलग-अलग जगह जा बसे, तब वहाँ जिसको पुरोहित माना, उसी का गोत्र वे धारण करते रहे।

राजपूतो के गोत्र उनके वंशकर्ता के सूचक न होने तथा उनके पुरोहितो के गोत्रो के सूचक होने के कारण पीछे से उनमें गोत्र का महत्त्व कुछ भी रहा हो, ऐसा पाया नहीं जाता। केवल पुरानी रीति के अनुसार संकल्प, श्राद्ध आदि में उसका उच्चारण होता रहा है। सोलंकियो का प्राचीन गोत्र मानव्य था और अब तक भी कहीं-कहीं वही माना जाता है। गुजरात के मूलराज आदि सोलंकी राजाओ का गोत्र क्या माना जाता था, इसका कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता तो भी संभव है कि या तो मानव्य या भारद्वाज हो। परन्तु उनके पुरोहितो का गोत्र वसिष्ठ ‡ था, ऐसा गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर देव के 'सुरथोत्सव काव्य' से निश्चित है। आज भी राजपूताने आदि के राजपूत राजाओ के गोत्र उनके पुरोहितो के गोत्रो से बहुधा भिन्न ही है।

ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि राजपूतो के गोत्र सर्वथा उनके वंशकर्ताओ के सूचक नहीं, किन्तु पुरोहितो के गोत्रो के सूचक होते थे, और कभी कभी पुरोहितो के बदलने पर गोत्र भी बदल जाया करते थे। यह रीति उनमें उसी समय तक बनी रही, जब तक कि पुरोहितो के द्वारा उनके वैदिक

सत्व गुणे (प० १३–१५, डिंगल भाग में)।

* जो चित्तोडहुँ जुझिअउ जिण ढिलीदलु जित्तु (प० २१)।

† 'सोलंक्यो का प्राचीन इतिहास, भाग १, पृ० २०४।

‡ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग ४ पृ० २।

सस्कार होकर प्राचीन शैली के अनुसार वेदादि पठन-पाठन का क्रम उनमें प्रचलित रहा। पीछे तो वे गोत्र नाम मात्र के रह गए। केवल प्राचीन प्रणाली को लिए हुए सकल्प, श्राद्ध आदि में गोत्रोच्चार करने के अतिरिक्त उनका महत्त्व कुछ भी न रहा और न वह प्रथा रही कि पुरोहितो का जो गोत्र हो वही राजा का भी हो।

ना० प्र० पत्रिका, काशी (न० सस्करण),
भाग ५, सख्या ४, वि स १९८१ = ई० स० १९२४।

३—सेनापति पुष्यमित्र और अयोध्या का शिलालेख

नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ५, अक १ 'शुग-वन्श का एक शिलालेख' नामक लेख बावू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर' बी० ए० ने मूल लेख की प्रतिलिपि सहित प्रकाशित किया है (पृ० ९९–१०४)। उसके प्रकाशित होने के पूर्व हाथ से लिखी हुई उसकी एक प्रतिलिपि बावू जगन्नाथदासजी ने बावू श्यामसुन्दरदासजी के द्वारा मेरे पास भेजी, जिसको पढ़ते ही मैंने बावू श्यामसुन्दरदासजी को सूचित किया कि यह लेख बडे महत्त्व का है; परन्तु जब तक उसकी छाप या फोटो न देखी जाय, तब तक विश्वस्त रूप से उसके सबध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। बाव जगन्नाथदासजी ने उसे प्रकाशित कर इतिहास-प्रेमियो का बडा उपकार किया है। उन्होने उसकी प्रतिलिपि, नागरी अक्षरातर, हिंदी अनुवाद एवम् अक्षरो के विषय में विस्तृत विवेचन किया है, और उसके सम्बन्ध में विशेष रूप से किसी अवसर पर फिर लिखने की इच्छा प्रकट की है। अपना लेख प्रकाशित हो जाने के पश्चात् उन्होने कृपाकर उक्त लेख पर से उठाई हुई छाप भी मेरे पास भिजवाई, जिसके लिये मैं उनका बहुत ही अनुगृहीत हूँ। इस छोटे से लेख के मिलने से शुग वन्श के इतिहास सबधी कितनी एक सशय युक्त बातो का निर्णय होने के अतिरिक्त शुगो के इतिहास पर कुछ नया प्रकाश भी पडा। अतएव उस पर मै इस लेख के द्वारा अपने कुछ विचार प्रकट करता हूँ, जैसा कि मैंने उक्त लेख के अन्त की सम्पादकीय टिप्पणी में उल्लेख किया था।

वह लेख दो पक्ति का है। पहली पक्ति का आदि और अन्त का कुछ कुछ अश नष्ट हो गया सा जान पड़ता है, और दूसरी पक्ति का तो केवल दाहिनी ओर का आधा अश ही रक्षित है। तिस पर भी वह पुरातत्त्ववेत्ताओ के लिये कम महत्त्व का नहीं है। पहली पक्ति का

जो अंश, विद्यमान है, उसका आशय यह है कि 'दो बार अश्वमेध यज्ञ करनेवाले सेनापति पुष्यमित्र के छठे (वंशधर) कोशलाधिपति कोशिकी-पुत्र (धन) · ··· ··ने· · · ' । कोशिकीपुत्र के बाद कोशल (अयोध्या) के उस समय के राजा का नाम होना चाहिये, जिसका पहला अक्षर 'ध' स्पष्ट है, और दूसरा 'न' सा प्रतीत होता है । यदि वह 'न' ही हो, तो अयोध्या के जिस राजा का यह लेख है, उसका नाम धनभूति अथवा 'धन' पद से प्रारम्भ होने वाला (धनदेव धनमित्र आदि) होना चाहिये । दूसरी पक्ति के बचे हुए अक्षरो में पहले दो अक्षर छाप में 'धम' से प्रतीत होते है, जो सभवत 'धर्म' हो । उनका संबध उनके पूर्व के अक्षरो के साथ था, या पिछलों से है, यह अनिश्चित है । उनके बाद के दो अक्षर 'राज्ञा' से प्रतीत होते है, परन्तु वे सदेहरहित नहीं है । इन चार अक्षरो के पीछे का अश साफ है, और उसका आशय यह है कि पिता फल्गुदेव का (फल्गुदेव के निमित्त) केतन् (स्थान) बनवाया । फल्गुदेव सभवत उक्त कोशलाधिपति के पिता का नाम हो । दूसरी पक्ति इतिहास के लिये उतनी उपयोगी नहीं है, जितनी पहली ।

अब उक्त लेख के सम्बन्ध में कुछ विचारणीय बातो का विवेचन नीचे किया जाता है—

कौशिकीपुत्र धन को पुष्यमित्र का छठा (वन्शधर) और अयोध्या का अधिपति कहा है । कौशिकपुत्र शुग राज्य का स्वामी नहीं, किंतु केवल अयोध्या का राजा था, अतएव उसको पुष्यमित्र का कुटुबी मानना युक्तियुक्त है ।

उक्त लेख से शुगवशियो का राज्य पश्चिम में अयोध्या तक होना तो निर्विवाद है, परन्तु भरहूत (मध्य भारत) के प्रसिद्ध स्तूप के एक तोरण पर शुगो के राजत्व काल का एक लेख* खुदा हुआ है, जो राजा गागी-पुत (गार्गीपुत्र) विसदेव (विश्वदेव) के पौत्र और गोतिपुत (गोति-पुत्र) आगरजु के पुत्र वाछिपुत (वात्सीपुत्र) धनभूति का है । उक्त लेख से शुगो का राज्य पाटलीपुत्र (पटना) से पश्चिम में मध्य भारत तक होना निश्चित है ।

उक्त लेख में सब से अधिक महत्त्व की बात सेनापति पुष्यमित्र के दो अश्वमेध करने का उल्लेख है । महाभाष्य के कर्ता पतजलि ने, जो पुष्यमित्र के समय विद्यमान थे, उक्त राजा के यज्ञ† का उल्लेख

* इडियन एटिक्वेरी जि० १४, पृ० १३९ ।
† इह पुष्यमित्र याजयाम (महाभाष्य) ।

प्रसगवशात् किया है, परन्तु उसमे यह नही पाया जाता कि उसने कौन-सा यज्ञ किया था । महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में शुग वश का विशेष इतिहास मिलता है । उससे पाया जाता है कि जिस समय सेनापति पुष्यमित्र ने राजसूय (अश्वमेध) यज्ञ किया, उस समय उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा (भिलसा, ग्वालियर राज्य) में शासन करता था । उक्त नाटक में अग्निमित्र के नाम भेजे हुए पुष्यमित्र के एक पत्र का भी उल्लेख है, जिसका आशय यह है—

"यज्ञभूमि से सेनापति पुष्यमित्र स्नेहालिगन के पश्चात् विदिशास्थित आयुष्मान् कुमार अग्निमित्र को सूचित करता है कि मैंने राजसूय यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर सैकडों राजपुत्रों-सहित वसुमित्र की सरक्षा में एक वर्ष में लौट आने के नियम के साथ यज्ञ का निरर्गल (बधन से मुक्त) अश्व छोड दिया । सिंधु‡ नदी के दक्षिणी तट पर विचरते हुए उस अश्व को यवनों* (यूनानियो) के अश्वसैन्य ने पकड लिया, जिससे दोनो सेनाओ में घोर सग्राम हुआ । फिर वसुमित्र ने अश्व को बलात्

‡ सिंधु अर्थात काली सिंध जो मालवे से निकलकर राजपूताने में होकर बहती है । सिंधु को सिंध मे बहनेवाली सिंधु नदी न मानकर राजपूताने की सिंधु (काली सिन्ध) मानने का कारण यह है कि पतञ्जलि ने अपने जीवन-समय की भूतकाल की घटनाओ के उदाहरण देते हुए 'यवनो ने माध्यमिका को घेरा' (अरुणद्यवनो माध्यमिका), 'यवनो ने साकेत (अयोध्या) को घेरा' (अरुणद्यवन साकेत) ये दो उदाहरण दिये है । माध्यमिका को इस समय 'नगरी' या 'तांबावती नगरी' कहते है और वह चित्तौड के प्रसिद्ध किले से ६–७ मील उत्तर में है । माध्यमिका से आगे बढते हुए यवनो (यूनानियो) की मुठभेड वसुमित्र के साथ होना प्रतीत होता है । महाकवि भवभूति ने अपने 'मालती माधव' नाटक में पद्मावती (पेहोआ, ग्वालियर राज्य में) के निकट बहनेवाली पारा और सिन्धु नदियों का उल्लेख किया है । वही सिन्धु राजपूताने में बहने पर काली सिन्ध कहलाती है ।

* कालिदास का प्रयोग किया हुआ 'यवन' शब्द काबुल पर राज्य करनेवाले बैक्ट्रिया (बलख) के ग्रीकों (यूनानियो) का सूचक है । पुष्यमित्र के समय मे माध्यमिका आदि को घेरनेवाला यूनानी राजा मिनेंडर था, जिसके चादी के दो सिक्के मुझे नगरी (माध्यमिका) मे मिले है । पुष्यमित्र के अश्वमेध के घोडे को पकडनेवाला यवनो का अश्वसैन्य भी मिनेंडर का ही होना चाहिए ।

छीननेवाले शत्रुओ को परास्त कर मेरा उत्तम अश्व छुडा लिया । जैसे पौत्र अशुमत् के द्वारा वापस लाए हुए अश्व से सगर ने यज्ञ किया, वैसे मैं भी अपने पौत्र द्वारा वापस लाए हुए अश्व से यज्ञ करूँगा । अतएव तुम्हें यज्ञदर्शन के लिये वधूजन-सहित शीघ्र आना चाहिए‡ ।"

कालिदास के इस कथन से पुष्यमित्र का एक अश्वमेध करना पाया गया; परन्तु अब तक उसकी पुष्टि किसी अन्य पुस्तक या शिलालेख से नहीं हुई थी । अयोध्या वाले शिलालेख से निश्चित हो गया कि पुष्यमित्र ने एक ही नही वरन् दो अश्वमेध किए थे और कालिदास का कथन सर्वथा ठीक है ।

'कौशिकीपुत्र' अयोध्या के राजा का नाम नहीं, किंतु उसकी माता के वश के नाम या गोत्र का सूचक है । प्राचीन काल में राजाओ, ब्राह्मणो आदि में एक से अधिक विवाह करने की रीति प्रचलित थी, इसी से अमुक पुत्र कौन सी रानी या स्त्री से उत्पन्न हुआ, यह बतलाने क लिये उसके नाम के पूर्व उसकी माता के गोत्र वा कुल का परिचय दिया जाता था । भरहूत के उपर्युक्त शिलालेख में गार्गीपुत्र का नाम विश्वदेव, गोतिपुत्र का आगरजू और वात्सीपुत्र का नाम धनभूति मिलता है । इसी शैली से अयोध्यावाले शिलालेख के कौशिकीपुत्र का नाम धन ' (धनभूति या धनदेव या धनमित्र आदि) होना चाहिए ।

पुष्यमित्र मौर्य वश के अतिम राजा बृहद्रथ का सेनापति था । उसने अपने स्वामी को सेना का निरीक्षण कराते हुए मारकर उसका राज्य छीन लिया । उसने मौर्य साम्राज्य के स्वामी होने पर भी अपना विरुद 'सेनापति' ही रखा और उसका वश शुग वश कहलाया । मौर्य राजा अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर वैदिक यज्ञो का होना बद कर दिया था, परन्तु पुष्यमित्र ने वेद-धर्मानुयायी होने के कारण ही अश्वमेध किए । तिब्बत के बौद्ध लेखक तारानाथ ने लिखा है—'पुष्यमित्र ने मध्य देश से लेकर जालधर तक के बौद्ध मठ जला दिए और कई विद्वान् बौद्ध भिक्षुओ को मरवा डाला' । कुछ लोगो का यह भी कथन है कि उसने बौद्ध धर्म को नष्ट करने की इच्छा से पाटलीपुत्र के कुक्कुटाराम (विहार) को नष्ट कर दिया और साकल प्रदेश (पजाब) में रहने वाले बौद्ध भिक्षुओ को मरवा डाला था । पुष्यमित्र ने धर्म-द्वेष के कारण बौद्धो के साथ ऐसे अत्याचार किए हो, यह

---

‡ मालविकाग्निमित्र, अक ५ (ई० स० १९२२ का बम्बई का सस्करण पृ० १०४–५) ।

सम्भव हैA।

'मालविकाग्नि मित्र' में विदिशा के शासक अग्निमित्र के विषय में लिखा है—"विदर्भ (बरार) के राजा यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन से उसने कहलाया कि अपनी बहिन मालविका का विवाह मेरे साथ कर दो। उस समय विदर्भ के राज्य के लिये माधवसेन और यज्ञसेन के बीच विरोध चल रहा था। माधवसेन अपने मंत्री सुमति और मालविका के साथ गुप्त रूप से विदिशा जा रहा था। उस समय में यज्ञसेन के सीमास्थित सेनापति ने माधवसेन को पकड़कर कैद कर लिया। परन्तु सुमति और मालविका बच निकले। इस घटना का समाचार पाते ही अग्निमित्र ने माधवसेन को सकुटुंब छोड़ देने के लिये यज्ञसेन से कहलाया, जिसके उत्तर में उसने कहा कि मेरा साला, जो मौर्यों का मंत्री था, आपके यहाँ कैद है। यदि आप उसको छोड़ दें, तो मैं माधवसेन को बंधनमुक्त कर दूं। इस उत्तर से क्रुद्ध होकर अग्निमित्र ने यज्ञसेन पर सेना भेज उसे जीत लिया और माधवसेन को छुड़ा लिया। फिर विदर्भ के दो विभाग कर एक यज्ञसेन को और दूसरा माधवसेन को दे वरदा नदी उनके बीच की सीमा नियत कर दी।" इसी प्रकार उक्त नाटक में वसुमित्र को अग्निमित्र का पुत्र, उस (वसुमित्र) की माता का नाम धारिणी और अग्निमित्र की दूसरी स्त्री का नाम ईरावती लिखा है। संस्कृत ग्रंथकारों में से किसी ने शुंग वंश का इतना विस्तृत विवेचन नहीं किया। पुराणों में केवल पुष्यमित्र का बृहद्रथ को मारकर उसका राज्य लेना लिखा है¶। बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में सेना का निरीक्षण कराते हुए पुष्यमित्र का बृहद्रथ को मारना बतलाया है†। कालिदास के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई उसका वि० सं० की पहली शताब्दी में, कोई पाँचवीं में, तो कोई छठी में और कोई उससे भी पीछे होना मानते हैं। पुष्यमित्र वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के अन्त के लगभग हुआ। यदि कालिदास वि०

¶ इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुन्धराम्।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति ॥ २६ ॥
पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्।
कारयिष्यन्ति वै राज्यं षट्त्रिंशत्तु समा नृप ॥ २७ ॥
(मत्स्यपुराण, अध्याय २७२)।

A पुष्यमित्र ने वैदिक धर्म के पुनरोत्थान का कार्य प्रारम्भ किया था और बौद्धों ने उनके विरोध में विदेशियों का साथ दिया था। अतः बौद्धों पर पुष्यमित्र का अत्याचार राजनैतिक दृष्टिकोण से हुआ प्रतीत होता है, न कि धार्मिक दृष्टिकोण या धर्म-द्वेष से। (सं० टि०)

स० की पाँचवीं शताब्दी में अर्थात् पुष्यमित्र से अनुमान ६०० वर्ष पीछे हुआ हो, तो पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र के सबध की घटनाओं का इतनी बारीकी के साथ उसका वर्णन करना सर्वथा असभव है। कालिदास के ऊपर उद्‌धृत किए हुए वर्णन को देखते हुए तो यही अनुमान होता है कि वह पुष्यमित्र से बहुत पीछे न हुआ हो और सभवतः उसका वि० स० की पहली शताब्दी में होना मानना अनुचित न होगा।

सस्कृत न जाननेवाले पुस्तक-लेखक सस्कृत ग्रथो की नक़ल करने में बहुधा सयुक्त व्यञ्जन के दूसरे वर्ण 'य' को 'प' सा लिख देते है, जिससे वास्तविक नाम के जानने में कभी-कभी भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इसी से कोई-कोई विद्वान् पुष्पमित्र* लिखते है। प्राचीन ब्राह्मी लिपि में 'य' और 'प' में बडा अन्तर† होने से उसमें ऐसा भ्रम हो ही नहीं सकता। अयोध्या-वाले उक्त लेख में पुष्यमित्र नाम है, जिसको कोई पुष्पमित्र नहीं पढ सकता। अतएव उक्त लेख से यह भी निश्चय हो गया कि उक्त राजा का नाम पुष्पमित्र मानना भ्रम ही है।

ना० प्र० पत्रिका, काशी, [न० स०]
भाग ५, सं० २, वि० स० १९८१ ई० स० १९२४

---

४ मालवे पर वलभी-नरेशों का अधिकार

गुप्त वश के राजा स्कदगुप्त के बाद हूणो की चढाई के समय जब गुप्त साम्राज्य के खड-खड हो गये तो उनके सेनापति जहाँ जिसको भूमि मिली उस पर अधिकार कर राजा बनने का उद्योग करने लगे। उसी समय गुप्तो के भटार्क नामक एक सेनापति ने काठियावाड पर अधिकार जमाकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसने अपनी राजधानी वलभीपुर को

एव मौर्या दशभूपतयो भविष्यन्ति अब्दशत सप्तत्रिंशदुत्तरते पृथिवी शुगा भोक्ष्यन्ति ॥८॥ तत पुष्यमित्र सेनापति स्वामिन हत्वा राज्य करिष्यति ॥९॥
(विष्णुपुराण, अश ४, अध्याय २३)।

† प्रतिज्ञा दुर्बल च बलदर्शनव्यपदेशदर्शिता शेषसैन्य सेनानीरनार्यो मौर्य बृहद्रथ दिपेष पुष्यमित्र स्वामिन ।
(हर्षचरित उच्छ्वास ६)

* इडियन् एटिक्वेरी, जि० ५३, पृ० १२।

† भारतीय प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र १–१०।

बनाया । प्राचीन शोध से इस वलभी के नवीन राज्य का उदयकाल विक्रम की छठी शताब्दी में ठहरता है ।

भटार्क के लिए प्रसिद्ध है कि वह सूर्यवंशी था, और दानपत्रों में इस वंश के लिए मैत्रक शब्द का प्रयोग हुआ है, जो सूर्य (मित्र) से ही सम्बन्ध रखता है । वलभी के ये मैत्रक राजा स्वाधीन राजा थे। भटार्क और उनके पुत्र धरसेन का विरुद सेनापति था । पश्चात् धरसेन के पुत्र द्रोणसिंह की उपाधि महाराज लिखी हुई मिलती है और वहां ऐसा भी लिखा मिलता है कि उसका राज्याभिषेक एक बड़े राजा ने किया । इससे ज्ञात होता है कि वलभी का स्वामी द्रोणसिंह ही स्वतंत्र राजा हुआ । इन मैत्रक राजाओं का राज्य वहां पर उन्नीस पीढ़ी तक बना रहा और वि० सं० ८२६ (ई० स० ७६६) के आस-पास वहां के अन्तिम राजा शीलादित्य (छठे) के समय सिंध की तरफ से अरबों ने आकर उस राज्य को नष्ट किया ।

भारत के अन्य राज्य वंशों की भांति वलभी के राजाओं ने भी अपना राज्य-विस्तार दूर-दूर तक किया था । उन्होंने अपने राज्य में गुप्त संवत् को ही जारी रखा जो पीछे से 'वलभी संवत्' कहलाने लगा । वहां देश-देशान्तर के अनेक विद्वानों को बराबर राज्याश्रय मिलता था । उक्त नगर में बौद्धों के अनेक संघाराम (विहार) थे, जिनमें छः हजार बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां रहा करती थीं । भिक्षुणियों के विहार पृथक् थे । उन बौद्ध विहारों के निर्वाह के लिए वहां के राजाओं और उनके सामंतों ने गांव, भूमि आदि दान दे रखे थे । जिनके कई दानपत्र मिल चुके हैं । गुणमति तथा स्थिरमति नामक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों ने वलभी में भी निवास किया था और ईस्वी सन् की पांचवीं शताब्दी के मध्यकाल में देवर्धि गणि क्षमाश्रवण ने वहां की धर्म परिषद् में जैन-धर्म-ग्रंथों (सूत्रों) को लिपिबद्ध करवाया था । भट्टी काव्य का रचयिता महाकवि भट्टी भी वलभीपुर के राजा धरसेन का आश्रित था । वहां के राजाओं के धार्मिक विचार उदार थे, इसलिए वहां सब ही धर्मावलंबी स्वतंत्रतापूर्वक विचरते थे । वैदिक धर्मावलंबियों का तो उस समय वह मुख्य स्थान था, क्योंकि वहां राजा स्वयं शैवधर्म के उपासक थे । ई० स० १८९८ (वि० सं० १९५५) में मैंने काठियावाड की यात्रा के समय वहां से निकला हुआ एक ही पत्थर का ऐसा बड़ा नंदी देखा जैसा अन्यत्र कहीं नहीं पाया गया । नंदी के निकट बड़ा विशाल शिवलिङ्ग भी था । प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युएन्त्सग ने ईस्वी सन् ६४० (वि० सं० ६९७) के आस-पास इस नगर को देखा था । उसने अपनी यात्रा की पुस्तक में वहां की समृद्धि का बहुत कुछ वर्णन किया है, जिससे वहां के पूर्व कालीन वैभव आदि का अच्छा ज्ञान हो जाता है ।

वलभी के इन मैत्रक राजाओ का राज्य काठिवाड और गुजरात के अतिरिक्त अधिकाश मालवे पर भी था । मालवे के रतलाम नगर से ई० स० १९०२ में वलभी के ग्यारहवें राजा ध्रुवसेन के समय के दो दानपत्र मिले हैं, उनमें से एक अच्छी स्थिति में है उसका आशय इस प्रकार है कि गुप्त (वलभी) सवत् ३२१A (ई० स० ६४०–६४१ वि० स० ६९७) चैत्र बदि ३· ·· को महाराज ध्रुवसेन ने दशपुर (मदसोर) प्रदेश के रहनेवाले त्रिवेदी (तिवाडी) ब्राह्मण बुधस्वामी के पुत्र दत्तस्वामी को तथा उनके भाई कुमारस्वामी को मालवे के चद्रपुत्रक (चाँदोरिया) गाँव की दक्षिण सीमा पर सौ भुक्ति (बीघा) माप का क्षेत्र दान किया¶ दूसरे दानपत्र का अधिकांश भाग बिगडा हुआ है तो भी उससे इतना ज्ञान हो जाता है कि उन्हीं दोनो ब्राह्मणो को गुप्त (वलभी) सवत् ३२० (ई० स० ६३९–४० वि० स० ६९६) में भी उसी गाँव में सौ भुक्ति (बीघा) भूमि दान की गयी थी।

¶ बा [ला] दित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वर श्री ध्रुवसेन कुशली सर्व्वानेव यथा सम्बध्यमानकान्समाज्ञापयत्यस्तु वस्सविदित यथा मया मातापित्रो पुण्याप्यायनायउदुम्बरगह्वरविनिर्ग्गताय नकाब्राहार (नकाग्रहार) निवासिदशपुरत्रैविद्यसामान्यपाराशरसगोत्रमाध्यन्दिन वाजसनेयसब्रह्मचारिब्राह्मणबुधस्वामि पुत्र ब्राह्मण दत्त स्वामीतथागस्तिकाग्रहार निवासि [३] च्यमानचातुर्व्विद्यसामान्य पाराशरस गोत्रवाजसनेयस ब्रह्मचारि ब्राह्मण बुधस्वामपुत्र (बुधस्वामिपुत्र) ब्राह्मणकुमारस्वामिभ्याँ मालवके उच्यमान विष [ये] चद्रपुत्रकग्रामे दक्षिण सीम्नि भक्तीशतपमाणक्षेत्र यस्याघ [I] टनानि पूर्व्वत. धम्मणहड्डिका ग्रामकङ्कट दक्षिणतो देवकुलपाट (क) ग्रामकङ्कट अपरत वीरतर मण्डलि महत्तरक्षेत्रमर्य्यादा उत्तरपश्चिमकोणे निर्ग्गण्डीतडाकिका उत्तरत वीरतरमण्डली एवमेतच्चतुराघाटनविशुद्ध भक्तीशतप्रमाणक्षेत्र उदकातिसर्ग्गेण धर्म्मदायो निसृष्ट [ ]
स० ३०० २० चैत्र ब ३ स्वहस्तो मम ।

आर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इडिया, एन्युअल रिपोर्ट, ई० स० १९०२–३, पृ० २३७–३८ ।

A अपने कथन की पुष्टि मे डॉ० ओझा ने पाद टिप्पण में मूल लेख का अश दिया है, वहाँ अत मे 'स० ३०० २० चैत्र व ३' उल्लिखित है। इससे यह दानपत्र भी गुप्त स० ३२० (ई० स० ६३९–४० वि० स० ६९६) का होना चाहिये ।

(सपा० टि०)

यह चन्द्रपुत्रक गांव इस समय कहाँ है ? इसका विचार करने पर यह सहज ही में प्रकट हो जाता है कि वह भूनिदान दशपुर (मदसोर) प्रदेश के ब्राह्मणो को दिया गया, अतएव, चद्रपुत्रक गाव दशपुर (मदसोर) के निकट होना चाहिए। वे दान-पत्र रतलाम राज्य से मिले है, इससे अनुमान होता है कि वह गांव रतलाम और मदसोर के बीच में होगा। रतलाम से उत्तर पश्चिम में लगभग ४० मील दूर सैलाना के निकट चांदोरिआ (Chandoria) नामक ग्राम है, जिसके उत्तर में उतनी ही दूर पर मदसोर का कस्बा है, जिससे अनुमान होता है कि यह 'चांदोरिआ' वास्तव में 'चद्रपुत्रक' का सूचक है ओर जिस तरह अन्य सस्कृत शब्दो के काल पाकर रूपानर हो गये है, उसी प्रकार 'चद्रपुत्रक' गांव के नाम में भी रूपांतर होकर चांदोरिया प्रसिद्ध हो गया। उक्त दानपत्रो में 'चद्रपुत्रक' गांव के सीमा-स्थित गांवो 'धमणहड्डिका,' 'देवकुलपाटक' आदि का उल्लेख है जो 'धमनोद' और 'दिवेल' के सूचक है। वर्तमान 'चांदोरिआ' इन दोनो गांवो के समीप में है। इसलिए इसका वास्तविक नाम 'चद्रपुत्रक' होने में कुछ भी सदेह नहीं हो सकता।

उपर्युक्त ताम्रपत्रो से यह तो स्पष्ट है कि मालवे में वलभी के राजाओ का राज्य था, जिससे उन्होने मालवे के ब्राह्मणो का उसी देश में भूमि दी। यदि उनका मालवे पर अधिकार न होता तो वे मालवे में भूमि-दान कदापि नहीं कर सकते थे।

अब यहां पर यही प्रश्न बाकी रहता है कि मालवे में वलभी के किस राजा ने अधिकार किया और कब तक वहां उनका अधिकार रहा ? इसका स्पष्टीकरण चीनी यात्री ह्युएन्त्सग के यात्रा विवरण से इस प्रकार होता है, कि राजा ध्रुवसेन (वलभी तथा) मालवे के राजा शीलादित्य (प्रथम) का भतीजा था। शीलादित्य के ताम्रपत्र गुप्त (वलभी) सवत् २८६ और २९० (वि० स० ६६२–६६६ ई० स० ६०५–६०९) के मिले है। अतएव उसका उपर्युक्त सवतो के आस-पास मालवे का स्वामी होना सिद्ध होता है। संभव है कि शीलादित्य प्रथम ने ही मालवे पर अधिकार किया हो। ध्रुवसेन के समय कन्नोज के वैश्य वशीB महाप्रतापी राजा श्री (हर्षवर्द्धन) की वलभी पर चढ़ाई हुई, परन्तु फिर उसके और ध्रुवसेन के बीच सधि हो गयी और

B वैश्यवशी से यहा आशय वैश्यवर्ण से लिया जा सकता है, किन्तु हर्षवर्द्धन वैश्य वर्ण का नही था। वह क्षत्रिय वर्ण का था, और वैश्यवशी माना जाता है, जो प्राचीन क्षत्रिय वश है।

(स० टि०)

श्रीहर्ष ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी। ध्रुवसेन का मालवे पर अधिकार चला आता था जिससे उसने मालवे में भूमिदान किया और वलभी-विनाश के समय ई० स० ७६६ वि० स० ८२६ तक वलभी के राजाओ का अधिकार मालवे पर बना रहा होगाC।

'वीणा' (मा० प०), इन्दौर,

अप्रेल सन् १९३४, वि० स० १९९१।

---

५ गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंशA

अनेक पुरातत्ववेत्ताओ और पुरातत्व-विभागो के प्रयत्न से अब तक हजारो शिलालेख प्रसिद्धि में आये है, किंतु गौर वश का कोई शिलालेख नहीं मिला था, जिससे उस वश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० स० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने की बडी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान गयासशाह खिलजी के बीच की लडाई का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस लडाई में एक गौर वीर प्रति दिन बहुत से

C राजा यशोधर्म के पश्चात् जबकि उसका ;; सस्थापित राष्ट्र विलीन होने लगा, उस गडबडी में वल्लभी के नरेशो का मालवे पर अधिकार होना सम्भव है, जो कन्नौज के बैसवशी राजा हर्षवर्द्धन के पीछे भी बहुत वर्षों तक बना रहा। हर्षवर्द्धन के पीछे उसके क्रमानुयायियो की निर्बलता का अवसर पाकर रघुवशी प्रतिहार उत्थान करने लगे, उस समय के आस-पास मालवे से वल्लभी के राजाओ का अधिकार उठ गया और उनका राज्य भी समाप्त हो गया। यह अधिकतया सम्भव है कि हर्षकालीन युग में वल्लभी के राजा उस (हर्षवर्द्धन) के अधीनस्थ की भाति ही मालवे पर शासन करते हो। (सम्पा० टि०)

A यह निबन्ध भी डा० ओझा द्वारा उनके 'राजपूताना का इतिहास' जि० २ और 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० २ के परिशिष्ट सख्या २ में प्रकाशित हो चुका है।

(सपा० टि०)

शकों (मुसलमानो) को मारता था, इसलिये किले के उस शृंग (बुर्ज) का नाम गौरशृंग (गौरबुर्ज रखा गया) । फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया । बडी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौरवीर मुसलमानो के रुधिरस्पर्श से अपने को अपवित्र जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1] ", अर्थात् मारा गया । इस अवतरण से यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वन्श-सूचक है, न कि व्यक्ति-सूचक ।

काव्य की चार रीतियो में एक गौडी, मद्यो में गौडी (गुड से बना हुआ मद्य), गौडवध (काव्य), गौडपाद (आचार्य), गौड (देश), आदि शब्दो से सस्कृत के विद्वान् भली भांति परिचित थे । ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करें, यह सम्भव नहीं । गौर क्षत्रिय वन्श का कोई लेख न मिलने और उस वन्श का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार होकर गौर क्षत्रियो को गौड क्षत्रिय अनुमान करना पडा, जो अब मुझे पलटना पडता है ।

ई० स० १९३० (वि० स० १९८७) में मुझे एक मित्र द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादडी गांव से दो मील दूर एक पहाडी पर के भमरमाता के मन्दिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढा नहीं जाता । सादडी का जिला पहले दक्षिणी ब्राह्मणो की जागीर में

---

1 नन्वान तुमुल महासिहतिभि श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्व ग्यासशकेश्वर व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृप ॥६८॥
कश्चिद्गौरो वीरवर्य शकौघ युद्धेमुष्मिन प्रत्यह मजह्नार ।
तस्मादेतन्नाम काम बभार प्राकाराशश्चित्रकूटैकशृंगम् ॥६९॥
योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोच्चान्
गौराभिधान ममधिशृगममावर्चर्पीत् ।
श्रीराजमल्लनृपति प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वमहरणचडभुजानिवाद्री ॥७०॥
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमाराद्य सद्यो
यद्योधो गौरसज्ञो मुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तान् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगळदसृक्प्रस्पर्कदोष
नि शेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नानुकाम ॥७१॥
—भावनगर इन्स्क्रिपशन, पृष्ठ १२१ ।

श्रीहर्ष ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी । ध्रुवसेन का मालवे पर अधिकार चला आता था जिससे उसने मालवे में भूमिदान किया और वलभी-विनाश के समय ई० स० ७६६ वि० स० ८२६ तक वलभी के राजाओ का अधिकार मालवे पर बना रहा होगाC ।

'वीणा' (मा० प०), इन्दौर,

अप्रेल सन् १६३४, वि० स० १६६१ ।

---

५ गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंशA

अनेक पुरातत्ववेत्ताओ और पुरातत्व-विभागो के प्रयत्न से अब तक हजारो शिलालेख प्रसिद्धि में आये हैं, किंतु गौर वश का कोई शिलालेख नही मिला था, जिससे उस वश का अस्तित्व अधकार में ही रहा । महाराणा रायमल के समय के वि० स० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिंगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने की बडी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान गयासशाह खिलजी के बीच की लडाई का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस लडाई में एक गौर वीर प्रति दिन बहुत से

C राजा यशोधर्म के पश्चात् जबकि उसका सस्थापित राष्ट्र विलीन होने लगा, उस गडबडी में वल्लभी के नरेशो का मालवे पर अधिकार होना सम्भव है, जो कन्नौज के बैसवशी राजा हर्षवर्द्धन के पीछे भी बहुत वर्षों तक बना रहा । हर्षवर्द्धन के पीछे उसके क्रमानुयायियो की निर्बलता का अवसर पाकर रघुवशी प्रतिहार उत्थान करने लगे, उस समय के आस-पास मालवे से वल्लभी के राजाओ का अधिकार उठ गया और उनका राज्य भी समाप्त हो गया । यह अधिकतया सम्भव है कि हर्षकालीन युग में वल्लभी के राजा उस (हर्षवर्द्धन) के अधीनस्थ की भाति ही मालवे पर शासन करते हो । (सम्पा० टि०)

A यह निबन्ध भी डा० ओझा द्वारा उनके 'राजपूताना का इतिहास' जि० २ और 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जि० २ के परिशिष्ट सख्या २ में प्रकाशित हो चुका है ।

(संपा० टि०)

शकों (मुसलमानो) को मारता था, इसलिये किले के उस शृंग (बुर्ज) का नाम गौरशृग (गौरबुर्ज रखा गया) । फिर रायमल ने उसी शृग पर चार और गौर योद्धाओ को नियत किया । बडी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौरवीर मुसलमानो के रुधिरस्पर्श से अपने को अपवित्र जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1] ", अर्थात् मारा गया । इस अवतरण से यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वन्श-सूचक है, न कि व्यक्ति-सूचक ।

काव्य की चार रीतियो में एक गौडी, मद्यो में गौडी (गुड से बना हुआ मद्य), गौडवध (काव्य), गौडपाद (आचार्य), गौड (देश), आदि शब्दो से सस्कृत के विद्वान् भली भाँति परिचित थे । ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करें, यह सम्भव नहीं । गौर क्षत्रिय वन्श का कोई लेख न मिलने और उस वन्श का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार होकर गौर क्षत्रियो को गौड क्षत्रिय अनुमान करना पडा, जो अब मुझे पलटना पडता है ।

ई० स० १९३० (वि० स० १९८७) में मुझे एक मित्र द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादडी गाँव से दो मील दूर एक पहाडी पर के भमरमाता के मन्दिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढा नहीं जाता । सादडी का जिला पहले दक्षिणी ब्राह्मणो की जागीर में

---

1 तन्वान तुमुल महासिहतिभि श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वर व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृप ।।६८।।
कश्चिद्गौरो वीरवर्यं शकौघ युद्धेमुष्मिन प्रत्यह सजहार ।
तस्मादेतन्नाम काम बभार प्राकाराशश्चित्रकूटैकश्शृगम् ।।६९।।
योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोच्चान्
गौराभिधान समविश्शृगमसावचैषीत् ।
श्रीराजमल्लनृपति प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वमहरणचडभुजानिवाद्रौ ।।७०।।
मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गोरसज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तात् ।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगळदसृक्पूरसपर्कदोप
नि शेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकाम ।।७१।।
—भावनगर इस्क्रिपशस, पृष्ठ १२१ ।

रहा था, इसलिये उस लेख का मोडी लिपि में होना अनुमान किया, परन्तु अनुसधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोडी नहीं, किंतु उडिया है और उसकी एक पक्ति सीधी तो दूसरी फारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाई ओर लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि आर्यलिपि दाहिनी ओर से बाई ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वय वहाँ जाकर उस लेख को पढा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी सस्कृत है। वह गौरवश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पक्तियाँ है, जिनमें १६ पक्तियाँ श्लोक-बद्ध है और अन्तिम पक्ति गद्य की है। भमरमाता का मन्दिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ है और निज मदिर गर्भगृह का नीचे का थोडा सा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मन्दिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा में पडा रहा और लोगो ने उस पर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अश अस्पष्ट हो गया है, तो भी जो अश बचने पाया है, वह भी बडे महत्व का है। पीछे से उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक में लगाया गया, जहाँ मेरे देखने में आया। बचे हुए अश का आशय इस प्रकार है—

प्रारम्भ के दो श्लोक देवी के वर्णन के है। आगे गौर वन्श के क्षत्रिय राजाओ का वन्शक्रम दिया हुआ है। उक्त वन्श में राजा धान्य-सोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओ के राष्ट्रो को मथ डाला। उसका पुत्र यशगुप्तB हुआ।

B यशगुप्त के अन्यत्र कोई शिलालेख नही मिले है। यही पहला शिलालेख है, जो मेवाड के छोटी सादडी नामक कस्बे के भमरमाता नामक देवी के मन्दिर से मिला है। इससे गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय वन्श का पता चलता है, जो डॉ० ओझा की खोज का फल है। छोटी सादडी का कस्बा मन्दसौर के निकट है। मन्दसौर से राजा यशोधर्म के शिलालेख मिले है। यशोधर्म के मन्दसौर के अतिरिक्त अन्यत्र कोई लेख नही मिले, जिससे अब तक इतिहास के विद्यार्थी इस बात को जानने से वचित ही है कि वह किस वश का था। छोटी सादडी के शिलालेख की लिपि ब्राह्मी है। मन्दसौर तथा छोटी सादडी के शिलालेखो की लिपि आदि में सादृश्यता है अथवा नही, यह जानकर इस बात का निर्णय करने की पूरी आवश्यकता है कि छोटी सादडी के शिलालेख में वर्णित यशगुप्त

वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञ-कर्ता और शत्रुओ का विजेता था । उस गौर महाराज ने वि० स० ५४७ माघ सुदी १० (ई० स० ४९१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मन्दिर बनवाया† । इस लेख से निश्चित है कि गौर क्षत्रिय वन्श वि० स० की

† तस्या प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव जस्नम्
[कीर्ति शु] भा गुणगणौघम [यी नृपाणाम्] [३]
कुलो [द्भू] व व [ड्श] गौरा
क्षात्रे प [दे] सतत दीक्षित शौडा ।

..धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]

.. .. . किल राज्यजितप्रतापो
यो राज्यवर्द्धण (न) गुणै कृतनामधेय
.. .. [५]

जात सुतो करिकरायतदीर्घवाहु ।
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्गतपुन्य [ण्य] कीर्ति [६]
सोयम् यशोभरणभूपितसर्वगात्र
प्रोत्फुल्लपद्म तायतचारुनेत्रः ।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्ष
क्ष्मा शासति यशगुप्त इति क्षितीन्दु [८]
तेनेय भूतधात्री श्रतुभिरिहचिता [पूर्व] शृङ्गेव भाति
प्रासादैरद्रितुङ्गै. शशिकरवपुपै स्थापितै भूपिताद्य
नानादानेन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येनलक्ष्मीर्व्विभक्ता
. स्थितयशवपुपा श्रीमहाराज गौर [११]
यातेपु पचसु शतेप्ववथवत्सराणाम्
द्वेविंशतीसमधिकेपु ससप्तकेपु

और मन्दसौर के लेखो के राजा यशोधर्म में क्या सम्बन्ध था, क्योकि दोनो के बीच समय का अधिक अन्तर नही है । उपरोक्त छोटी सादडी का शिलालेख प्रकाश में नही आया है, यह बड़े खेद की बात है । पुरातत्वनुसधान के प्रेमियो को इस पर ध्यान देना चाहिये ।

(सपा० टि०)

छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड में विद्यमान था और छोटी सादडी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वंश वालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बडी वीरता से लडे थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० स० की १४ वी शताब्दी में भी गौरवंशीC राजपूत मेवाड के राजाओं की सेना में थे। चित्तौड के किले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबजदार मकान हैं, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते हैं। अलाउद्दीन खिलजी के साथ की गई चित्तौड के महारावल रतनसिंह की लडाई में गोरा बादल बडी वीरता से लडते हुए मारे गए, ऐसा पिछले ग्रंथों में लिखा मिलता है। हि० स० ६४७ (वि० स० १५६७ = ई० स० १५४०) में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत नाम की कथा बनाई तथा वि० स० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनों पुस्तकों में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परंतु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमश २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी हैं। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं, किंतु एक ही पुरुष

माघस्य शुक्लदिवसे त्वगमत्प्रतिष्ठाम्
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१३]

—मूललेख की छाप से

C उपर्युक्त एकलिङ्गजी के मंदिर की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि मांडू (मालवा) के सुलतान गयासुद्दीन की चित्तौड पर चढाई के समय मेवाड के महाराणाओं की सेवा मे गौरवंशी क्षत्रिय विद्यमान थे। एकलिङ्गजी के शिवालय की प्रशस्ति, छोटी सादडी की प्रशस्ति से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पीछे की है। अर्थात् छोटी सादडी की प्रशस्ति से एक हजार वर्ष पीछे तक गौरवंश का अस्तित्व था और अब तो गौरवंश का पता ही नहीं चलता। संभव है कि गौरवंशियों को जन साधारण में गौड कहने लग गये हों, अथवा वंशोत्पत्ति नहीं जानने से वे गौडों मे शामिल होकर अपने को गौड कहने लग गये हों। उदयपुर में पहले 'गौरवा' नामक एक क्षत्रिय वंश था, जो कोतवाल आदि उच्चपदों पर काम करता था, परन्तु अब उसका वहाँ अस्तित्व ही नहीं है। नाथद्वारा कांकरोली में अब भी 'गौरवा' नामक एक जाति है, जो अपने को क्षत्रिय मानती है और वहाँ के वैष्णव मंदिरों की सेवा करते हैं। अनुमान होता है कि संभवत उक्त प्राचीन गौरवंश के अवशेष चिन्ह स्वरूप यह 'गौरवा' जाति हो।

(संपा० टि०)

का नाम होना सभव है,D जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अश (गोरा) वशसूचक और दूसरा अश (बादल) व्यक्तिगत नाम है । गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर (गोरा) वश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है । वशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखको ने भ्रम से ये दो नाम अलग-अलग मान लिए होगे ।

बापा रावल¹ का सोने का सिक्का ।

हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से स्वतत्र और बडे राजा अपने नाम के

---

1 ई० स० की बारहवी शताब्दी के मध्य के आस-पास तक तो मेवाड के राजाओ का खिताब (विरुद) 'राजा' था ऐसा उनके शिला-

---

D डॉ० ओझा का जायसी वर्णित 'पद्मावत' के गौरा-बादल को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नही मान गौरवशी बादल होने का कथन एक सुन्दर कल्पना है, किन्तु जब तक इसका दूसरा कोई सुदृढ प्रमाण नही मिले, तब तक उनका कथन साक्षर वर्ग द्वारा स्वीकार किया जाना कठिन है, क्योकि साधन के अभाव में परम्परा को माना जाता है ।

'पद्मावत' में जायसी ने जो वर्णन किया है, वह रूपक मानलें तो भी उसमें ऐतिहासिक अश है । वह चित्ताड का राजा रत्नसेन को बतलाता है, जो इतिहास से विरूद्ध नही जान पडता और सुन्दरता युक्त उसके राणी होना भी फारसी तवारीखो में मिलता है । रत्नसिंह, समरसिंह का पुत्र था । समरसिंह का अतिम शिलालेख वि० स० १३५८ माघसुदी १० (ई० स० १३०२) का मिला है और रत्नसिंह का वि० स० १३५९ माघसुदी ५ (ई० स० १३०३) बुधवार का शिलालेख दरीबा गाव (मेवाड) के देवी के मदिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिससे पाया जाता है कि रत्नसिह एक वर्ष से अधिक भी राज्य नही करने पाया कि वि० स० १३५९ (ई० स० १३०३) में मेवाड राज्य पर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की चढाई हुई, जिसमे उसकी राणी पद्मिनी ने सैकडो महिलाओ के साथ जौहर की अग्नि म प्रवेश कर सतीत्व रक्षा की और वह मुसलमान सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया । ऐसी अवस्था मे जायसी का वर्णन ज्यो का त्यों इतिहास में ग्रहण नही किया जा सकता, एव रत्नसिंह के सिंहल जाकर विवाह करने का कथन रूपक मात्र ही है ।

(सपा० टि०)

छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वश वालो का राज्य था । महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बडी वीरता से लडे थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है । वि० स० की १४ वीं शताब्दी में भी गौरवशीC राजपूत मेवाड के राजाओ की सेना में थे । चित्तौड के किले पर पद्मिनी के महलो से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुबजदार मकान है, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते है । अलाउद्दीन खिलजी के साथ की गई चित्तौड के महारावल रत्नसिंह की लड़ाई में गोरा बादल बडी वीरता से लडते हुए मारे गए, ऐसा पिछले ग्रथो में लिखा मिलता है । हि० स० ९४७ (वि० स० १५९७ = ई० स० १५४०) में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत नाम की कथा बनाई तथा वि० स० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनो पुस्तको में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परंतु ये दोनो पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी है । इतने दीर्घकाल में नामो में भ्रम होना संभव है । गोरा और बादल दो पुरुष नही, किंतु एक ही पुरुष

माघस्य शुक्लदिवसे त्वगमत्प्रतिष्ठाम्
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१३]

—मूललेख की छाप से

C उपर्युक्त एकलिङ्गजी के मदिर की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि माडू (मालवा) के सुलतान गयासुद्दीन की चित्तौड पर चढाई के समय मेवाड के महाराणाओ की सेवा में गौरवशी क्षत्रिय विद्यमान थे । एकलिङ्गजी के शिवालय की प्रशस्ति, छोटी सादडी की प्रशस्ति से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पीछे की है । अर्थात् छोटी सादडी की प्रशस्ति से एक हज़ार वर्ष पीछे तक गौरवश का अस्तित्व था और अब तो गौरवश का पता ही नही चलता । सभव है कि गौरवशियो को जन साधारण में गौड कहने लग गये हो, अथवा वशोत्पत्ति नही जानने से वे गौडो मे शामिल होकर अपने को गौड कहने लग गये हो । उदयपुर में पहले 'गौरवा' नामक एक क्षत्रिय वश था, जो कोतवाल आदि उच्चपदो पर काम करता था, परन्तु अब उसका वहां अस्तित्व ही नहीं है । नाथद्वारा काकरोली में अब भी 'गौरवा' नामक एक जाति है, जो अपने को क्षत्रिय मानती है और वहाँ के वैष्णव मदिरो की सेवा करते है । अनुमान होता है कि सभवत: उक्त प्राचीन गौरवश के अवशेष चिन्ह स्वरूप यह 'गौरवा' जाति हो ।

(सपा० टि०)

का नाम होना सभव है,D जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अश (गोरा) वशसूचक और दूसरा अश (बादल) व्यक्तिगत नाम है । गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर (गोरा) वश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है । वशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से ये दो नाम अलग-अलग मान लिए होगे ।

बापा रावल[1] का सोने का सिक्का ।

हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से स्वतत्र और बडे राजा अपने नाम के

---

1 ई० स० की बारहवी शताब्दी के मध्य के आस-पास तक तो मेवाड के राजाओ का खिताब (विरुद) 'राजा' था ऐसा उनके शिला-

---

D डॉ० ओझा का जायसी वर्णित 'पद्मावत' के गोरा-बादल को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति नही मान गौरवशी बादल होने का कथन एक सुन्दर कल्पना है, किन्तु जब तक इसका दूसरा कोई सुदृढ प्रमाण नही मिले, तब तक उनका कथन साक्षर वर्ग द्वारा स्वीकार किया जाना कठिन है, क्योकि साधन के अभाव में परम्परा को माना जाता है ।

'पद्मावत' में जायसी ने जो वर्णन किया है, वह रूपक मानलें तो भी उसमें ऐतिहासिक अश है । वह चित्ताड का राजा रत्नसेन को बतलाता है, जो इतिहास से विरूद्ध नही जान पडता और सुन्दरता युक्त उसके राणी होना भी फारसी तवारीखो मे मिलता है । रत्नसिंह, समरसिंह का पुत्र था । समरसिंह का अतिम शिलालेख वि० स० १३५८ माघसुदी १० (ई० स० १३०२) का मिला है और रत्नसिंह का वि० स० १३५९ माघसुदी ५ (ई० स० १३०३) बुधवार का शिलालेख दरीबा गाव (मेवाड) के देवी के मदिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिससे पाया जाता है कि रत्न-सिंह एक वर्ष से अधिक भी राज्य नही करने पाया कि वि० स० १३५९ (ई० स० १३०३) में मेवाड राज्य पर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की चढाई हुई, जिसमें उसकी राणी पद्मिनी ने सेकडो महिलाओ के साथ जौहर की अग्नि म प्रवेश कर सतीत्व रक्षा की और वह मुसलमान सेना से युद्ध करता हुआ मारा गया । ऐसी अवस्था में जायसी का वर्णन ज्यों का त्यो इतिहास में ग्रहण नही किया जा सकता, एव रत्नसिंह के सिंहल जाकर विवाह करने का कथन रूपक मात्र ही है ।

(संपा० टि०)

सोने, चांदी और तांबे के सिक्के[2] चलाते थे। उनके हजारो सिक्के इस देश के भिन्न-भिन्न विभागो से मिल चुके हैं और प्रतिवर्ष अनेक नए मिलते जाते हैं। ये सिक्के विशेष कर प्राचीन नगरो और गांवो में बहुधा जमीन में गडे हुए मिलते हैं। कभी तो उनसे भरे हुए पात्र ही मिल जाते हैं और कभी जब चौमासे में अधिक वृष्टि के कारण जमीन कट जाती है या उसपर की मिट्टी बह जाती है तब वे इधर बिखरे हुए मिलते हैं। कभी वे महाजनो आदि की लक्ष्मी-पूजन के रुपयो की थैलियो में मिलते हैं और कभी नाके (कुडे) लगा कर गले के जेवर के रूप मे रखे हुए भी पाए जाते हैं और आवश्यकता पडने पर, धातु के मोल से, सर्राफो आदि के हाथ बेंच दिए जाते हैं। जमीन से निकले हुए सोने और चांदी के कितने ही सिक्के तो महाजनों या सर्राफो तक भी नहीं पहुँचने पाते, सुनारो के यहां जेवर बनवाने में गला दिए जाते हैं। तांबे के सिक्के ही विशेषत महाजनो और सर्राफो के यहां पहुँचते हैं। वे लोग उनको जमः किया करते हैं और जब बहुत से एकट्ठे हो जाते हैं, तब वे उनको तांबे के भाव से ठठेरे आदि बर्तन बनाने वालो को बेच देते हैं। इस तरह हमारे प्राचीन इतिहास के ज्ञान के ये अमूल्य साधन लोगो के अज्ञान के कारण अधिकतर तो नष्ट ही हो जाते हैं और थोडे से ही प्राचीन सिक्को के सग्रह करनेवालो के पास पहुँच कर सुरक्षित होते हैं। तिस पर भी उनके कितने ही सग्रह यूरोप और अमेरिका में तथा यहां के भिन्न-भिन्न अजायबघरो और कई एक श्रीमानो और विद्वानो के यहां बन चुके हैं, जो यहां के प्राचीन इतिहास के उद्धार के लिये बडे महत्त्व के हैं।

लेख से पाया जाता है। उसके पीछे उन्होने 'रावल' (राजकुल) खिताब धारण किया। पिछले इतिहास-लेखको को उनके पुराने खिताब का ज्ञान न होने के कारण उन्होने प्रारम्भ से ही उनका खिताब 'रावल' होना मान लिया और प्राचीन काल के वास्तविक इतिहास के अभाव में उसीकी लोगो में प्रसिद्धि हो गई। इस समय बापा आदि पहले के राजा मेवाड म बापा रावल, खुमाण रावल, आलु (अल्लट) रावल, आदि नामो से प्रसिद्ध हैं। इसीसे हमने बापा को 'बापा रावल' ही लिखा है।

2 सस्कृत, प्राकृत आदि की पुस्तको एव शिलालेखो तथा ताम्रपत्रो में पहले के सोने के सिक्को के नाम सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक, आदि, चादी के सिक्को के पुराण, धरण, पाद, पडिक (फदैया या फदिया), द्रम्म, रूपक, टक आदि और तांबे के सिक्को के नाम कार्षापण (काहापण), पण, काकिणी, आदि मिलते हैं।

राजपूताना अब तक हिंदुस्तान के दूसरे विभागो की अपेक्षा विद्या-विषय में बहुत ही पीछे है जिससे यहाँ के राजा-महाराजाओं, सर्दारो और धनवानो में प्राचीन राजाओ की कीर्ति को चिरस्थायी करनेवाले इन सिक्को का सग्रह करने की जागृति बहुत ही कम हुई है। इसीसे इस विस्तीर्ण देश से मिलने वाले बहुत कम प्राचीन सिक्के अब तक प्रसिद्धि में आए है।

राजपूताने से मिलनेवाले प्राचीन सिक्कों को देखने से पाया जाता है कि अधिक प्राचीन काल में यहाँ पर चादी और तॉबे के जो सिक्के चलते थे वे हिंदुस्तान के दूसरे प्रदेशो के सिक्कों की नाई प्रारम्भ में चौकोर और पीछे से गोल बनते थे। वे पुराण और कार्षापण कहलाते थे। उनपर कोई लेख नहीं होता था, किंतु मनुष्य, पशु पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि, ग्रह-नक्षत्र, धनुष-बाण आदि शस्त्र, स्तूप, बोधिद्रुम, स्वस्तिक, वज्र, पर्वत (मेरु), नदी (गगा) आदि धर्म-सबधी सकेत और अनेक अन्य चिह्न अकित होते थे जिसका वास्तविक आशय अब तक ज्ञात नहीं हुआ। उन सिक्को की एक ओर केवल एक या दो ही चिह्न और दूसरी तरफ अधिक चिह्न अकित मिलते है। ऐसे चिह्नोवाले सिक्के चाँदी और ताँबे के असख्य मिले है, परन्तु सोने का अब तक एक भी नहीं मिला, तो भी पहले इस प्रकार के सोने के सिक्के भी होते थे, ऐसा बौद्ध-साहित्य से पाया जाता है। बौद्ध जातकों में एक कथा ऐसी मिलती है कि श्रावस्ती नगरी के रहनेवाले सेठ अनाथपिडद ने बौद्धों के लिये एक विहार बनाने के लिये राजकुमार जेत से भूमि खरीदना चाहा तो जेत ने कहा कि जितनी जमीन तुम लेना चाहो उसको सोने[3] के सिक्को से ढक दो तो वह मिल सकती है। अनाथपिडद ने १८ करोड सोने के सिक्को से ढक कर वह जमीन खरीद ली। इस कथा का चित्र बुद्ध-गया और नागोद राज्य (मध्य भारत) के भरहुत के स्तूप की वेष्टनी में शिला पर अकित है। दोनो में उक्त सेठ के सेवक लोग जमीन पर चौखूंटे सिक्के बिछाते हुए बतलाए गए है। बुद्ध-गया की शिला पर तो इस विषय का लेख भी खुदा है। ये दोनो शिलाएँ[4] ईसवी सन् पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की खुदी हुई हैं।

राजपूताने में सब से पुराने लेखवाले सिक्के मध्यमिका नामक प्राचीन नगर में तॉबे के सिक्के है जिनपर 'मझमिकाय शिबिजनपदस' (शिबि जनपद

---

3 राखालदास बैनर्जी, 'भारतेर प्राचीन मुद्रा' (बगला), पृ० ७।

4 जनरल कनिंगहाम, 'कॉइस ऑफ एनश्यट इडिआ,' प्रारभ का चित्रपट।

= देश) की मध्यमिका (नगरी) का (सिक्का)] लेख[5] है । ये सिक्के ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास के हो, ऐसा उनके लेखो की लिपि से अनुमान होता है । मध्यमिका का स्थान मेवाड (उदयपुर) राज्य में चित्तौड के किले से करीब ७ मील उत्तर में है। उसका वर्तमान नाम नगरी है और वह बेंदला के चौहान सर्दार की जागीर में है-। ये सिक्के यहाँ के सब से पुराने सिक्के है । उसी समय के आस-पास के मालव जाति के ताँबे के सिक्के जयपुर राज्य में 'नगर' (कर्कोटक नगर) से मिले है, जिनपर, 'मालवाना जय' [= मालवो की जय] लेख[6] है । ये सिक्के मालवगण अर्थात् मालव जाति के विजय के स्मारक है । इनसे पीछे के जो सिक्के राजपूताने में मिले है वे ग्रीक (यूनानी), शक, पार्थिअन् (पारद), कुशन और क्षत्रप वशी राजाओ के है । ग्रीक (यूनानी) और क्षत्रपो के सिक्के तो यहाँ पर चाँदी और ताँबे के ही मिले है, बाकी के तीन वशो के सोने के भी कभी-कभी मिल जाते है । क्षत्रपो के चाँदी के सिक्के हजारो की सख्या में मिल चुके है, ताँबे के बहुत कम । इनके पीछे के सिक्के गुप्तवशी राजाओ के है जिनमें विशेष कर सोने के मिलते है, चाँदी के कम । गुप्तवशियो के २० से अधिक सोने के सिक्के मैंने अपने मित्रो के लिये अजमेर में ही खरीदे । गुप्तो के पीछे हूणो के चाँदी और ताँबे के सिक्के मिलते है परन्तु बहुत ही कम । हूणो के सिक्के ईरान के ससानवशी राजाओ के सिक्को की शैली के है और उनकी नकलें ई० स० की छठी से ११वीं शताब्दी के आस-पास तक इस देश में बनती रहीं । समय के साथ उनका आकार घटता गया और पतलेपन के स्थान में मोटाई आती गई । कारीगरी में भी क्रमशः भद्दापन आता गया, जिससे उनके सामने की तरफ की राजा की सिर से छाती तक की मूर्ति यहाँ तक बिगडती गई कि लोग पीछे से पहिचान भी न सके कि वह किसकी सूचक है। इससे वे उसको गधे का खुर ठहरा कर उनको 'गधिये सिक्के' कहने लगे और अब तक उनका वही नाम चला आता है । परन्तु जब समय-समय के सिक्के पास-पास रख कर मिलान करते है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में उनपर राजा का अर्ध शरीर ही था, परन्तु ठप्पा खोदनेवालो की कारीगरी में क्रमश. भद्दापन आने के कारण वे उसको पहले का सा सुन्दर न बना सके और इसीसे लोगो ने उसको गधे का खुर मान लिया ।

---

5 कर्निगहाम, आर्किऑलाजिकल सर्वे—रिपोर्ट, जि० ६, पृ० २०३. ।

6 वही, पृ० १८१ । कर्कोटक नगर अब जयपुर राज्य के उणियारा ग्राम से १५ मील दक्षिण-पश्चिम मे पुराना खेडा नाम मे प्रसिद्ध है ।

ई० स० की छठी शताव्दी से अजमेर पर मुसलमानो का अधिकार होने (ई० स० ११९२) तक के ६०० वर्षों में राजपूताने पर राज्य करनेवाले हिन्दू राजवशो में से केवल तीन ही वशो अर्थात् मेवाड के गुहिल (सिसोदिया), अजमेर के चौहान, और कन्नौज के प्रतिहारो (पडिहारो) के चांदी और तांबे के सिक्के कभी-कभी मिल जाते है । प्रतिहार वश के तो अब तक केवल भोजदेव (आदिवराह) और महीपाल के ही सिक्के मिले है । उक्त ६०० वर्षों तक राजपूताने में राज करनेवाले राजाओ में से किसी का भी सोने का सिक्का पहले नही मिला था । वापा रावल का यह सिक्का उक्त काल का पहला ही सोने का सिक्का है और अब तक एक ही मिला हैA । वापा रावल मेवाड के गुहिल (सीसोदिया) वशी राजाओ का पूर्वज था और उसकी वीरता आदि की अनेक कथाएँ राजपूताने में प्रसिद्ध है ।

यह सिक्का तीन वर्ष पहले अजमेर के एक सर्राफ के यहाँ मिला उससे मालूम हुआ कि भीलवाडे (मेवाड) की तरफ का एक महाजन कुछ सोने और चांदी के पुराने जेवरो के साथ यह सिक्का भी बेंच गया था । इसके साथ दो मोहरें और भी थीं, एक वादशाह अकबर की और दूसरी औरगजेब-आलमगीर की । ये तीनो सिक्के मैंने सिरोही के महाराजाधिराज महाराव सर केसरीसिंह जी के लिये खरीद लिए, जो उनके प्राचीन सिक्को के बडे सग्रह में सुरक्षित है । जब यह सिक्का सर्राफ के पास आया, तब उसमें सोने का नाका (कुडा) लगा हुआ था जिसको उसने उखडवा डाला और झालन (टाँके) को घिसवा दिया, परन्तु अब तक उसका कुछ अश इस पर पाया

A इसके पूर्व भी वापा रावल का एक स्वर्ण-सिक्का मिला है, जो अफीम के एक अग्रेज अधिकारी को मिला था, जिसने वह अपने एक अग्रेज मित्र को दिया और उसके द्वारा वह प्राचीन शोधक वर्ग के पास पहुँचा । रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बगाल के जर्नलो मे उसके विषय मे चर्चा हुई, परन्तु कोई भी विद्वान् उक्त सिक्के मे अकित लिपि को ठीक-ठीक पढकर अपना मत स्थिर नही कर सके । हिंदू यूनिवरसिटी बनारस के ख्यातनामा प्रोफेसर डॉ० ए० एस० आल्टेकर ने उक्त सिक्के के फोटो आदि को पढकर यह सिद्ध किया है कि वह डॉ० ओझा के वर्णित स्वर्ण सिक्के के समान चिह्नयुक्त है और उस पर अकित लेख 'श्री बोप्प' है, जो वापा रावल का सूचक है (सातवी ओरियटल कॉन्फरेस वडोदा की रिपोर्ट ई० स० १९३३) ।— (स० टि०)

जाता है । दाहिनी ओर का इसका थोडा सा अंश दोनों तरफ से घिस गया है जिससे वहाँ के चिह्न कुछ अस्पष्ट हो गए हैं ।

इस सिक्के का तौल इस समय ११५ ग्रेन (६५$\frac{५}{७}$ रत्ती) है । दोनो ओर के चिह्न आदि नीचे लिखे अनुसार है, जिनका विवेचन आगे किया जायगा—

सामने की तरफ—(१) ऊपर के हिस्से से लगाकर बाईं ओर, अर्थात् लगभग आधे सिक्के के किनारे पर, बिंदियो की एक वर्तुलाकर पक्ति है जिसको माला कहते हैं । (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे ई० स० की आठवीं शताब्दी की लिपि में 'श्रीबोप्प' लेख है जो जिस राजा (बापा) का यह सिक्का है उसका सूचक है । (३) उक्त लेख के नीचे बाईं ओर माला के पास खड़ा त्रिशूल है । (४) त्रिशूल की दाहिनी ओर दो प्रस्तरवाली वेदी पर शिवलिंग बना है । (५) शिवलिंग की दाहिनी ओर बैठा हुआ नदि (बैल) है जिस का मुख शिवलिंग की तरफ है और जिसकी पूँछ और उसके पास का कुछ अश, सिक्के का उधर का हिस्सा घिस जाने के कारण, नहीं रहा है । (६) शिवलिग और बैल के नीचे पेट के बल लेटा हुआ एक मनुष्य है जिसका जाँघो तक का ही हिस्सा सिक्के पर आया है । उसके दोनो कान आज कल के कनफटे जोगियो की तरह बीच में से बहुत छिदे हुए होने के कारण मनुष्य के कानो से बडे दिखाई देते हैं और मुख भी कुछ अधिक लम्बा प्रतीत होता है ।

पीछे की तरफ—(१) दाहिनी ओर के थोडे से किनारे को छोड कर अनुमान सिक्के के $\frac{3}{4}$ किनारे के पास बिंदियो की माला है । (२) ऊपर के हिस्से में माला के नीचे एक पक्ति में तीन चिह्न बने हैं जिनमें से बाँई ओर से पहला सिमटा हुआ चमर प्रतीत होता है । (३) दूसरा चिह्न है । (४) तीसरे चिह्न का ऊपर का भाग, सिक्के का वह अश घिस जाने के कारण, स्पष्ट नही है, परन्तु उसका नीचे का अश नीचेवाली गौ के सींग के पास नीचे से कुछ मुडी हुई खडी लकीर के रूप में दिखलाई देता है । यह छत्र की डडी हो सकती है और ऊपर का अस्पष्ट भाग भी छत्र-सा दीख पडता है । (५) उक्त तीनो चिह्नो के नीचे दाहिनी ओर को मुख किए गौ खडी है जिसके मुख का कुछ अश सिक्के के घिस जाने से अस्पष्ट हो गया है । (६) गौ के पैरो के पास बाँई ओर मुख किए गौ का दूध पीता बछडा है, जिसके गले में घटी लटक रही है, वह पूँछ कुछ ऊँची किए हुए है और उसका स्कध (ककुद) भी दीखता है । (७) बछडे

की पूंछ से कुछ ऊपर और गौ के मुख के नीचे एक पात्र बना हुआ है जिसकी दाहिनी ओर का अंश घिस गया है। पात्र की बाईं ओर की गोलाई और उसके नीचे सहारे की पैंदी स्पष्ट है। (८) गौ और बछड़े के नीचे दो आड़ी लकीरें बनी है जिसके बीच में थोड़ा-सा अन्तर है। (९) उक्त लकीरो की दाहिनी ओर तिरछी मछली है, जिस का पिछला हिस्सा उक्त लकीरो से जा लगा है। (१०) उक्त लकीरो के नीचे और बिंदियो की बिंदु-माला के ऊपर चार बिंदियो से बना हुआ फूल-सा दिखाई देता है।

सामने की तरफ का विवेचन।

(१) बिंदियो से बनी हुई माला—प्राचीन काल में बहुधा गोल सिक्के के किनारो के पास बिंदियो से बनी हुई परिधि होती है जिसको राजपूताने के लोग माला कहते है। जब सिक्का ठप्पे के समान ही बड़ा होता है तब पूरी माला सिक्के पर आ जाती है परन्तु जब छोटा होता है, तब माला का कुछ अंश ही उसपर आता है। सिक्को पर माला बनाने की रीति प्राचीन काल से चली आती है। हिंदुस्तान के ग्रीक (यूनानी), कुशन (तुर्क), गुप्त, यौधेय, कलचुरि, चौहान आदि कई राजवंशो के एवं ससान तथा गधिये सिक्को पर तथा नेपाल, आसाम और दक्षिण से मिलनें वाले कई सिक्को पर यह माला[7] पाई जाती है। केवल पुराने सिक्को पर ही नही, किंतु हिंदुस्तान के मुसलमान सुलतानो और बादशाहो के कई सिक्को पर भी यह होती है[8] राजपूताने के राज्यो के कई सिक्को पर[9] तो यह बहुधा अब तक बनती थी।

(२) सिक्के के लेख में राजा का नाम श्रीवोप्प है। यह वप्प (बप्प = बापा) के नाम के पुराने मिलनेवाले अनेक रूपो में से एक है। संस्कृत के शिलालेखो तथा पुस्तको में इस राजा का नाम कई तरह से लिखा मिलता

---

7 वी० ए० स्मिथ, केटेलॉग ऑफ दी कॉइंस इन दी इंडिअन् म्यूजिअम, (कलकत्ता), प्लेट १, ३, ९, ११–१७, २०, २१, २४, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१।

8 एच० एन० राइट, केटेलॉग ऑफ दी कॉइंस इन दी इंडियन् म्यूजिअम (कलकत्ता), जिल्द २, प्लेट, ७, ९, जिल्द ३, प्लेट १, २, ४, ६ ७—१३, १५, १७—२०, २२।

9 वेब, दी करंसीज ऑफ राजपूताना, प्लेट १–१२।

हैं, जैसा कि 'वप्प', 'वप्पक'[10], 'बप्प' 'बप्पक[11]' 'बाप्प'[12]' 'बप्पाक[13]' 'बाप्प[14]' 'बापा[15],' आदि। 'ब' के स्थान में 'व' का प्रयोग राजपूताने, आदि के शिलालेखो में बहुधा मिलता है और यहाँ के लोगो में बगालियो की नाई 'अ' के स्थान में अर्ध 'ओकार' बोलने का प्रचार भी है, जैसे कि

---

10 अस्मिन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्र
श्रीवप्पकक्षितिपति क्षितिपीठरत्नम् ।
मेवाड के राजा नरवाहन के समय की वि० सं० १०२८ की प्रशस्ति, बंब० एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६ ।
गुहिलागजवशजः पुरा क्षितिपालोत्र बभूव वप्पक ।
प्रथमः परिपथिपार्थिवध्वजिनीध्वंसनलालसाशयः ॥३॥
रावल समरसिह के समय का वि० स० १३३० का चीरवा गाँव का शिलालेख ।

11 हारीतः शिवसगमंगविगमात् प्राप्तः स्वसेवाकृते
बप्पाय प्रथिताय सिद्धिनिलयो राज्यश्रियं दत्तवान् ॥१०॥
हारीतात्किल ,बप्पकोऽह्निवलयव्याजेन लेभे मह, क्षात्र
रावल समरसिह का वि० स० १३४२ का आबू का शिलालेख (इडि० एटि०, जि० १६, पृ० ३४७) ।

12 जगाम बाष्प परमेश्वरं महो .. ..॥१७॥
एर्कालगजी के मन्दिर के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति (भावनगर इस्क्रिप्शस, पृ० ११८) ।
बप्प शब्द के और पाठातर तो ठीक है किंतु इसका निर्वचन ठीक न जानकर शुद्ध सस्कृत बनाने की धुन में किसी पडित ने वाष्प की कल्पना की होगी और इसीको दृढ करने के लिये पार्वती के वाष्प (आंसू) का सम्बन्ध बापा से मिलाने की कथा गढी गई होगी। देखो, आगे टिप्पण २३)

13 श्रीगुहिदत्तराउलश्रीवप्पाकश्रीखुमाणादिमहाराजान्वये
नारलाई के आदिनाथ के मन्दिर में लगा हुआ महाराणा रायमल के समय का वि० स० १५५७ (न कि १५९७) का शिलालेख (वही पृ० १४१)।

14 श्रीमेदपाटवसुधामपालयद्बाप्पपृथ्वीश. ॥१९॥
महाराणा कुम्भकर्ण के समय का वना हुआ एकलिंग-माहात्म्य, राजवर्णन अध्याय (वि० सं० १७३८ की हस्तलिखित प्रति से) ।

15 प्राप्तमेदपाटप्रमुखसमस्तवसुमतीसाम्राज्यश्रीवापाखुम्मान ..
उपर्युक्त, टिप्पण, १२ दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अत का गद्य ।

'खल' को 'खोल', 'ढल' (ढेला) को 'ढोल', 'पांच' को 'पौंच' आदि। अतएव 'वप्प' को 'वोप्प' लिखना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वप्प[16] और बोप्प दोनो प्राकृत पर्याय शब्द है और दोनो का मूल अर्थ 'पिता'[17] है। ये दोनो एक दूसरे के स्थान में व्यवहृत होते है जिसके कई उदाहरण मिलते हैं जैसे कि वप्प स्वामि'[18] के स्थान पर 'वोप्प

---

16 'वप्प' प्राकृत भाषा का प्राचीन शब्द है जिसका मूल अर्थ 'वाप' (सस्कृत वाप = वीज वोनेवाला = पिता) था। इसका या इसके भिन्न२ रूपान्तरो का प्रयोग वहुधा सारे हिंदोस्तान में प्राचीन काल से लगाकर अव तक चला आता है। वल्लभी (काठियावाड में राजाओ के दानपत्रो में पिता के नाम की जगह 'वप्प' शब्द सम्मान के लिये कई जगह मिलता है (परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवप्पपादानुध्यात. परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर. श्रीशीलादित्य वलभी के राजा शीलादित्य सातवें का अलीना का गुप्त सवत् ४४७ = ई० स० ७६६–६७ का दानपत्र, फ्लीट-गुप्त इस्क्रिप्शस, पृ० १७८)। नेपाल के लिच्छवि वशी राजा शिवदेव और उसके सामत अशुवर्मा के [गुप्त] सवत् ३१६ (या ३१८ ? = ई० स० ६३५–३६ के शिलालेख मे 'वप्प' शब्द का प्रयोग वैसे ही अर्थ मे हुआ है (स्वस्ति मानग्रहादपरिमितगुणसमुदयोद्भासितदिशो (?) वप्पपादानुध्यातोलिच्छविकुलकेतुभंट्टारकमहाराजाधिराजश्रीशिवदेव कुशली . इडि० एटि०, जि० १४, पृ० ९८)। पीछे से यह शब्द नामसूचक भी हो गया और मेवाड के अनेक लेखो में वापा रावल के लिये नामरूप से लिखा हुआ मिलता है (देखो, ऊपर टिप्पण ११)। पीछे से इसके कई भिन्न२ रूपान्तर वालक, वृद्ध आदि के लिये या उनके सम्मानार्थ उनको सवोधन करने में सस्कृत के 'तात' शब्द की नाई काम में आने लगे। मेवाड में 'बापू' शब्द लडके या पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है और 'वापजी' राजकुमार के लिये। राजपूताना, गुजरात आदि में वापा, वापू, और वापो शब्द पिता पूज्य या वृद्ध के अर्थ में आते हैं। वापूजी, वापूदेव, बोपदेव, वापूराव, वापूलाल, वावाराव, बापाराव, वापण्णभट्ट, वोपण्णभट्ट, बोपण्णदेव आदि अनेक शब्दो के पूर्व अश इसी 'वप्प' शब्द के रूपान्तर मात्र है। पजावी और हिंदी गीतो तथा स्त्रियो की वोलचाल में 'वावल' पिता का सूचक है।

17 फ्लीट, गुप्त इस्क्रिपशस, पृ० ३०४।

18 परिव्राजक महाराज हस्ती के गुप्त सवत् १६३ (ई० स० ४८२–८३) के खोह के दानपत्र यें कोपरिक अग्रहार जिन व्राह्मणो को देना लिखा है उनमें से एक का नाम 'बप्पास्वामि' मिलता है (फ्लीट, गुप्त

स्वामि'[19] और 'बापण्णभट्टीय, के स्थान पर 'बोपण्णभट्टीय'[20], आदि[21]।

(३) त्रिशूल शिव के आयुधो में से मुख्य है। बापा जैसे दृढ शिव-भक्त राजा के सिक्के में शिवलिंग के साथ त्रिशूल चिह्न का होना स्वाभाविक ही है।

(४) शिवलिंग बापा के इष्टदेव[22] एकलिंग का सूचक होना चाहिए।

(५) बैल शिव का वाहन होने के कारण शिवलिंग के सामने उसका

इस्क्रिप्शस, पृ० १०३)। गुजरात के राष्ट्रकूट (राठौड) राजा गोविदराज के शक स० ७३५ (वि० स० ८७०=ई० स० ८१३) के दानपत्र में उक्त दान के लेनेवाले गुजरात के ब्राह्मणो मे से एक का नाम बप्पस्वामि लिखा है (एपि० इडि०, जि० ३, पृ० ५८)।

19 वल्लभी के राजा शिलादित्य (प्रथम) के गुप्त स० २८६ के नवलक्खी से मिले हुए दानपत्र मे सगपुरि (शहापुर-काठियावाड के जूनागढ के निकट) के ब्राह्मणो में से जिनको दान दिया गया, एक का नाम बोप्पस्वामि लिखा है (एपि० इडि०, जि० ११, पृ० १७५, १७९)।

20 बापण्णभट्ट (बोपण्णभट के कई ग्रथो मे से एक का नाम 'बापण्णभट्टीय' और बोपण्णभट्टीय' दोनो तरह से लिखा मिलता है (आफ्रेक्ट-कैटलॉगस् कैटलॉगोरम्, खड १ पृ० ३६९, ३७७)।

21 देवगिरि के यादव राजा महादेव और रामदेव (रामचन्द्र) के प्रसिद्ध विद्वान् मत्री हेमाद्रि (हेमाडपत) के आश्रित, वैद्य केशव के पुत्र और हरिलीला, मुग्धबोध व्याकरण आदि अनेक ग्रथो के कर्ता का, भानुदत्त रचित रसमजरी पर 'रसमजरी विकास नामक टीका के कर्ता (नृसिह के पुत्र) का, एव काकेर (मध्यप्रदेश) के सामत व्याघ्रराज के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम वोपदेव (बोपदेव) मिलता है। ऐसे ही राजा तिविरदेव के एक दानपत्र के खोदनेवाले का नाम वोप्पनाग मिलता है (एपि० इडि०, जि० ७, पृ० १०७)। इन नामो के पहले अश 'वोप', 'वोप' या 'वोप्प', वप्प' या उसके पर्याय 'वोप्प' के ही सूचक है।

22 मेवाड के राजाओ के इष्टदेव एकलिंगजी है और वापा उनका परम भक्त था, ऐसा मेवाड के अनेक शिलालेखो एव ऐतिहासिक पुस्तको से पाया जाता है।

नागह्रदपुरे तिष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभोः।
चक्रे वाप्पोऽर्चन चास्मै वरान्रुद्रो ददौ तत ॥९॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

होना उचित है ।

(६) शिवलिंग और वृष के नीचे लेटे हुए पुरुष की मूर्ति किसकी सूचक है ? इस विषय में निश्चय के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता, परन्तु संभव है कि वह बापा की ही सूचक हो और उसे अपने इष्टदेव एकलिंग के आगे प्रणाम करता हुआ प्रगट करती हो । उसके कान फटे और मुख अधिक लंबा होने के विषय में तीन कल्पनाएँ हो सकती हैं । या तो ठप्पा खोदने वाला अच्छा कारीगर न हो, जिससे जैसी चाहिए वैसी ठीक आकृति न बना सका । प्राचीन राजाओ के कानो में बड़े-बड़े कुंडल पहनने की चाल होने से व फटे हुए और लटक जाने के कारण बड़े बनाए जाते थे जैसा कि कई मूर्तियो में देखा जाता है । अथवा बापा शिव के गण नंदि (नंदिकेश्वर) का अवतार[23] माना जाता था जिससे उसका मुख वानराकार बनाया गया हो । अथवा यह बापा के गुरु हारीत राशि की मूर्ति हो, जो शिव के गण चंड का अवतार[24] माना जाता था ।

---

23 यं दृष्ट्वा नंदिनं गौरी दृशो बाष्पं पुराऽसृजत्
नंदीगणोसौ बाप्पोपि प्रियादृक्बाप्पदोऽभवत् ॥७॥
वही, सर्ग० ३ ।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं बाष्पं सृजन्ती तमुवाच ह ॥१२॥
यस्माद्बाष्पं सृजाम्यद्य वियोगात्शंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद्बाप्पो राजा भविष्यति (सि) ॥१३॥
महाराणा रायमल के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय ६ ।
नंदीगण का मुख वानर का सा माना गया है । रावण ने उसका उपहास किया था, तब नंदी ने शाप दिया कि मेरे सदृश मुखवाले तेरा नाश करेंगे ।

(वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकांड, ५० । २-३, तथा वहीं पर कतक टीका, उत्तरकांड १६।१४–२१)

24 रे चंड त्वं द्वारि स्थितोपि रक्षाविधौ प्रमत्तोभू ।
हारीतराशिनामा भूयास्त्वं मेदपाटमुनिः ॥
राणा कुंभकर्ण के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय १, श्लोक २२ ।

हारीतराशिः स मुनिश्चण्डः शंभोर्गणोऽभवत् ।
राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३, श्लोक ८ ।

स्वामि'[19] और 'बापण्णभट्टीय, के स्थान पर 'वोपण्णभट्टीय'[20], आदि[21]।

(३) त्रिशूल शिव के आयुधो में से मुख्य है। बापा जैसे दृढ शिव-भक्त राजा के सिक्के में शिवलिंग के साथ त्रिशूल चिह्न का होना स्वाभाविक ही है।

(४) शिवलिंग बापा के इष्टदेव[22] एकलिंग का सूचक होना चाहिए।

(५) बैल शिव का वाहन होने के कारण शिवलिंग के सामने उसका

इस्क्रिप्शस, पृ० १०३)। गुजरात के राष्ट्रकूट (राठौड) राजा गोविंदराज के शक स० ७३५ (वि० स० ८७० = ई० स० ८१३) के दानपत्र मे उक्त दान के लेनेवाले गुजरात के ब्राह्मणो में से एक का नाम बप्पस्वामि लिखा है (एपि० इडि०, जि० ३, पृ० ५८)।

19 वल्लभी के राजा शिलादित्य (प्रथम) के गुप्त स० २८६ के नव लक्खी से मिले हुए दानपत्र में सगपुरि (शहापुर-काठियावाड के जूनागढ के निकट) के ब्राह्मणो मे से जिनको दान दिया गया, एक का नाम बोप्पस्वामि लिखा है (एपि० इडि०, जि० ११, पृ० १७५, १७९)।

20 बापण्णभट्ट (बोपण्णभट के कई ग्रथो मे से एक का नाम 'बापण्णभट्टीय' और बोपण्णभट्टीय' दोनो तरह से लिखा मिलता है (आफ्रेक्ट-कैटलॉगस् कैटलॉगोरम्, खड १ पृ० ३६९, ३७७)।

21 देवगिरि के यादव राजा महादेव और रामदेव (रामचन्द्र) के प्रसिद्ध विद्वान् मत्री हेमाद्रि (हेमाडपत) के आश्रित, वैद्य केशव के पुत्र और हरिलीला, मुग्धबोध व्याकरण आदि अनेक ग्रथो के कर्ता का, भानुदत्त रचित रसमजरी पर 'रसमजरी विकास नामक टीका के कर्ता (नृसिह के पुत्र) का, एव काकेर (मध्यप्रदेश) के सामत व्याघ्रराज के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम वोपदेव (वोपदेव) मिलता है। ऐसे ही राजा तिविरदेव के एक दानपत्र के खोदनेवाले का नाम वोप्पनाग मिलता है (एपि० इडि०, जि० ७, पृ० १०७)। इन नामो के पहले अश 'वोप', 'वोप' या 'वोप्प', वप्प' या उसके पर्याय 'वोप्प' के ही सूचक है।

22 मेवाड के राजाओ के इष्टदेव एकलिंगजी है और बापा उनका परम भक्त था, ऐसा मेवाड के अनेक शिलालेखो एव ऐतिहासिक पुस्तको से पाया जाता है।

नागह्रदपुरे निष्ठन्नेकलिंगशिवप्रभो. ।
चक्रे वाप्पोऽर्चनं चास्मै वगान्द्रो ददौ नन ॥९॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग ३।

होना उचित है ।

(६) शिवलिंग और वृष के नीचे लेटे हुए पुरुष की मूर्ति किसकी सूचक है ? इस विषय में निश्चय के साथ कुछ भी कहा नहीं जा सकता, परन्तु संभव है कि वह बापा की ही सूचक हो और उसे अपने इष्टदेव एकलिंग के आगे प्रणाम करता हुआ प्रगट करती हो । उसके कान फटे और मुख अधिक लंबा होने के विषय में तीन कल्पनाएँ हो सकती हैं । या तो ठप्पा खोदने वाला अच्छा कारीगर न हो, जिससे जैसी चाहिए वैसी ठीक आकृति न बना सका । प्राचीन राजाओं के कानों में बड़े-बड़े कुंडल पहनने की चाल होने से व फटे हुए और लटक जाने के कारण बड़े बनाए जाते थे जैसा कि कई मूर्तियों में देखा जाता है । अथवा बापा शिव के गण नंदि (नंदिकेश्वर) का अवतार[23] माना जाता था जिससे उसका मुख वानराकार बनाया गया हो । अथवा यह बापा के गुरु हारीत राशि की मूर्ति हो, जो शिव के गण चंड का अवतार[24] माना जाता था ।

---

23 यं दृष्ट्वा नंदिनं गौरी दशो वाष्पं पुराऽसृजत्
नंदीगणोसौ बाप्पोपि प्रियादृक्त्राप्पदोऽभवत् ॥७॥
वही, सर्ग० ३ ।

अथ शैलात्मजा ब्रह्मन् शोकव्याकुललोचना ।
नंदिनं प्रथमं वाष्पं सृजन्ती तमुवाच ह ॥१२॥
यस्माद्वाष्पं सृजाम्यद्य वियोगाच्छंकरस्य च ।
पूर्वदत्ताच्च मे शापाद्बाप्पो राजा भविष्यति (सि) ॥१३॥

महाराणा रायमल्ल के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय ६ ।

नंदीगण का मुख वानर का सा माना गया है । रावण ने उसका उपहास किया था, तब नंदी ने शाप दिया कि मेरे सदृश मुखवाले तेरा नाश करेंगे ।

(वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकांड, ५० । २-३, तथा वहीं पर कतक टीका, उत्तरकाँड १६।१४–२१)

24 रे चंड त्वं द्वारि स्थितोपि रक्षाविधौ प्रमत्तीभूः ।
हारीतराशिनामा भूयास्त्वं मेदपाटमुनिः ॥

राणा कुंभकर्ण के समय का बना एकलिंग-माहात्म्य, अध्याय १, श्लोक २२ ।

हारीतराशि स मुनिश्चण्डः शंभोर्गणोऽभवत् ।
राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३, श्लोक ८ ।

पिछली तरफ का विवेचन ।

(१) बिंदियो से बनी हुई माला—इसका विवेचन ऊपर हो चुका है ।

(२) और (४) ऊपर के पक्तिबद्ध तीन चिह्नो में से पहले चमर और तीसरे (छत्र) का विवेचन ऊपर हो चुका । ये दोनो राज्य-चिह्न हैं ।

(३) यह चिह्न या तो बौद्धो के धर्मचक्र का या सूर्य का सूचक हो सकता है । परम शैव राजा के सिक्के पर त्रिशूल, शिवलिंग और वृषभ के साथ बौद्ध धर्म चक्र का होना तो सर्वथा असभव है, अतएव यह चिह्न सूर्य का सूचक होना चाहिए । प्राचीन काल में सूर्य का चिह्न बीच में बिंदी सहित छोटा सा वृत्त होता था जिस पर बाहर की ओर किरणें होती थीं । पुराण और कार्षापण नाम के प्राचीन सिक्को पर सूर्य का चिह्न [25] वैसा ही मिलता है । वह इतना स्पष्ट होता है उसको देख कर हर एक पुरुष सहसा यही कहेगा कि यह सूर्य बना है । पीछे से जैसे अक्षरो की आकृति में अन्तर पडता गया, वैसा ही सूर्य के चिह्न में भी भिन्नता आती गई । पश्चिमी क्षत्रप वंशी राजाओ के सिक्को पर सूर्य और चद्र के चिह्न मिलते हैं । उनमें चष्टन से लगा कर रुद्रसेन प्रथम तक के सिक्को पर सूर्य का चिन्ह किरणो सहित स्थूल बिंदी[26] ही है, वृत्त नहीं, और किरणें बहुत स्पष्ट हैं । परन्तु उसके पीछे के उसी वंश के राजाओ के सिक्को पर का वही चिन्ह बिंदियो से बना हुआ वृत्त मात्र[27] है, जिसके मध्य में एक सूक्ष्म बिंदी और लगी है । सिक्को के अभ्यासियो को छोडकर उस चिन्ह को और कोई सूर्य का चिन्ह न कहेगा किंतु उसको सतफूल ही बतलावेगा । वैदिको की ग्रहशांति के नवग्रहस्थापन में जहां नवग्रहो के सांकेतिक चिन्ह बनाकर उनका पूजन होता है ।

---

25 कनिंगहाम कॉइंस ऑफ एन्श्यट इंडिया, प्लेट १, संख्या १, ३–७, १३ ।

26 रापसन् कैटलॉग आफ इंडियन् कॉइंस, 'आंध्र, क्षत्रप आदि' प्लेट १०–१२ ।

27 वही, प्लेट १२–१८ ।

वहाँ सूर्य के मडल में सूर्य का चिन्ह वृत्त[28] ही होता है। राजपूताने में राजाओ तथा सर्दारो की ओर से ब्राह्मणो, देवमदिरो आदि को दान किए हुए खेतो पर उनकी सनदें शिलाओ पर खुदवा कर खडी की जाती थी। ऐसे ही राजाओ की ओर से छोडे हुए किसी कर आदि के,, या प्रजावर्ग में से किसी जाति की की हुई प्रतिज्ञा के, लेख भी शिलाओ पर खुदवा कर गाँवो में खडे किए हुए मिलते है। उक्त दोनों प्रकार के लेखो को यहाँ के लोग 'सुरे' (फारसी शरह) कहते है। समय-समय के ऐसे संकडो नहीं, हजारो शिलालेख अब तक भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में खेतों और गाँवो में खडे हुए मिलते है। ऐसे लेखो में से कई एक के ऊपर के भाग में सूर्य चद्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी होती है। इनका भाव यही है कि जब तक सूर्य, चद और सवत्सा गौ (अर्थात् रसदात्री पृथ्वी) है तब तक वह दान (आदि) अविच्छिन्न रहे। गौ की मूर्ति का यह भाव भी है कि इस दान या नियम का भग करनेवालो को गोहत्या का पाप लेंगे। ऐसे शिलालेखो पर सूर्य के चिन्ह अकित किए हुए मिलते है। राजपूताना म्यूजिअम (अजमेर) में रखे हुए वि० सवत् १३०० के एक शिलालेख के ऊपर के भाग में सूर्य, चन्द्र और वत्स सहित गौ की मूर्तियाँ बनी है। उसमें सूर्य का चिन्ह ऊपर बतलाए हुए चार प्रकार के चिन्हो में से पहला है। अतएव सिक्के पर जो चिन्ह सूर्य का ही सूचक होना चाहिए।

इस सिक्के पर छत्र और चँवर दो राज्य-चिन्हो के बीच में सूर्य की मूर्ति किस अभिप्राय से रक्खी गई, इस विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ हो सकती है, परन्तु अधिक सभव यही है कि वह बापा का सूर्यवशी होना सूचित करती हो। मेवाड के राजा अब तक अपने को सूर्यवशी मानते चले आते है।

(५--६) ये चिन्ह गौ और उसका स्तनपान करते हुए बछडे के है। यह गौ बापा रावल के प्रसिद्ध गुरु लकुलीश सप्रदाय के साधु (नाथ) हारीतऋषि की काम-धेनु हो जिसकी सेवा बापा रावल ने की ऐसी कथा प्रसिद्ध है। स्तनपान करते हुए वत्स का अभिप्राय गौ का दुधारु होना है।

---

28 वृत्तमडलमादित्ये चतुरस्र निशाकरे।
भूमिपुत्रे त्रिकोण स्याद्बुधे वै बाणसदृश ॥
ग्रहशाति।

(७) पात्र—इसका वर्णन ऊपर हो चुका ।

(८) दो आड़ी लकीरें नदी के दोनो तटो को सूचित करती है क्योकि उनकी दाहिनी ओर के अन्त पर मछली बनी है जो वहाँ पर जल का होना प्रकट करती है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो ये लकीरें एकलिगजी के मदिर के पास बहनेवाली कुटिला नाम की छोटी नदी[29] (नाले) की सूचक होनी चाहिएँ ।

(९) फूल—शोभा के लिये बना हो या नदी के निकट पुष्पो का होना सूचित करता हो ।

बापा का सूर्यवशी होना ।

ऊपर हम कह आए है कि छत्र और चमर के बीच सूर्य का चिन्ह होना बापा (और उसके वशजो) का सूर्यवशी होना सूचित करता है । इस कथन पर यह शका उठ सकती है कि इस चिन्ह पर से ही बापा का सूर्यवशी होना कैसे सभव हो सकता है ? क्या ऐसा मानने के लिये कोई प्राचीन शिलालेख आदि का प्रमाण है ? इसके उत्तर में यह कथन है कि मेवाड के पुराने राजाओ में से अल्लट तक के राजाओ के पाँच शिलालेख अब तक मिले है, जिनमें शीलादित्य (शील) का वि० स० ७०३[30] का, अपराजित का वि० स० ७१८[31] का, भर्तृपट्ट (भर्तृभट) दूसरे के वि० स० ९९९[32] और १०००[33] के और अल्लट का वि० स० १०१०[34] का है। इनमें से किसी में भी मेवाड के राजवश की उत्पत्ति के सबध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता । वि० स० १०१० के पीछे के जिन शिलालेखो में उसकी

---

29 मा कुरुष्वेत्यत कोपमित्युवाच सरिद्वरा ।
ता शशापातिरोपेण कुटिलेति सरिद्भव ॥२५॥
तत्रैकलिगसामीप्ये कुटिलेति सहस्रश ।
धाराश्च सभविष्यन्ति प्रायशो गुप्तभावत ॥२६॥
महाराणा रायमल के समय का बना 'एकलिगमाहात्म्य', अध्याय ६ ।

30 यह लेख इसी सख्या (ना प्र प काशी, भाग १ स ३, स० १९७७) में मुद्रित है ।

31 एपि० इडि०, जि० ४, पृ० ३१–३२ ।

32 वही, जि० १८, पृ० १८३ ।

33 राजपूताना म्यूजियम की रिपोर्ट, ई० स० १९१३–१४, पृ० २

34 भावनगर इन्स्क्रिपशस, पृ० ६७–६८ ।

उत्पत्ति के विषय म कुछ लिखा मिलता है उनमें सब से पहला लेख एकलिंग के मदिर के निकट के लकुलीश (लकुटीश) के मदिर को, जिसको इस समय नाथो का मदिर कहते है, प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति मेवाड के राजा नरवाहन के समय की और वि० स० १०२८ की है। इससे मेवाड के राजाओ का रघुवशी (सूर्यवशी) होना पाया जाता है। उक्त प्रशस्ति वाले ताक के ऊपर छज्जा न होने के कारण चौमासे में मदिर के शिखर का जल प्रशस्ति के ऊपर होकर बहने से उसका कुछ अश बिगड गया है, तिस पर भी जो अश बचा है वह बडे महत्त्व का है। उसका साराश नीचे लिखा जाता है—–

प्रारम्भ में 'ओ ओ नमो लकुलीशाय' से लकुलीश को नमस्कार किया है। फिर पहले और दूसरे श्लोको में किसी देवता और देवी (सरस्वती) की प्रार्थना हो ऐसा पाया जाता है परन्तु उन श्लोको का अधिक अश जाता रहा है। तीसरे और चौथे श्लोको में नागह्लद (नागदा) नगर का वर्णन है। पाँचवें श्लोक में उस नगर के राजा वप्पक (बप्पक = बापा) का वर्णन है जिसमें उसको गुहिलवश के राजाओ में चन्द्र के समान (तेजस्वी) और पृथ्वी का रत्न कहा है और उसके धनुष के टकार का कुछ वर्णन[35] है परन्तु लेख का वह अश नष्ट हो गया है। छठे श्लोक में बप्पक के वशज किसी राजा का (सभवतः नरवाहन के पिता अल्लट का) वर्णन है परन्तु उसका नाम बचने नहीं पाया। सातवें और आठवें श्लोको में राजा नरवाहन को, जिसके समय में वह प्रशस्ति बनी, वीरता की प्रशसा है। श्लोक ९ से ११ तक में लकुलीश[36] की उत्पत्ति का वर्णन यो किया है कि पहले भृगुकच्छ (भडौच)

---

35 अस्मिन्नभूदगुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्र
श्रीवप्पक क्षितिपति क्षितिपीठरत्नम् ।
ज्या घातघोष
(बम्बई एशि० सोसा० जर्नल, जि० २२ पृ० ११६)

36 लकुलीश (लकुटीश, नकुलीश) शिव के १८ अवतारो में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायो में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, दक्षिण (मईसोर तक), बगाल और उडीसा में लकुलीश की मूर्तिया पाई जाती है। उस मूर्ति के सिर पर बहुधा जैन-मूर्तियो के समान केश होते है। वह द्विभुज होती है। उसके दाहिने हाथ में बीजोरा और बांये मे लकुट (दण्ड) रहता है जिसमे उसका नाम लकुटीश (लकुलीश) पडा। वह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है। लकुलीश, ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है,

प्रदेश में विष्णु ने भृगु मुनि को शाप दिया तो भृगु ने शिव की आराधना कर उनको प्रसन्न किया। इस पर उस मुनि के सम्मुख हाथ में लकुट लिए हुए शिव का कायावतार (अवतार) हुआ। जहाँ उनका यह अवतार हुआ वह स्थान कायावतार (कारवान्) कहलाया और उसकी रमणीयता के आगे वे कैलाश को भूल गए। बारहवें श्लोक में किसी स्त्री (पार्वती ?) के शरीर पर के आभूषणो का वर्णन है परन्तु वह किस प्रसग का है यह पूरा श्लोक सुरक्षित न होने से स्पष्ट नहीं होता। १३ वें श्लोक में शरीर पर भस्म लगाने, वल्कल के वस्त्र और जटाजूट धारण करने, और पाशुपत योग का साधन करनेवाले कुशिक आदि योगियो का (जो लकुलीश के मुख्य शिष्य थे) वर्णन है। श्लोक १४ से १६ तक में उन (कुशिक आदि) के पीछे होनेवाले एकलिंग जी के मदिर की पूजा करनेवाले उक्त सप्रदाय के साधुओ का परिचय दिया है जिसमें उनको शाप और अनुग्रह का स्थान, हिमालय से सेतु (राम का सेतु) पर्यन्त रघु के वश की कीर्ति को फैलानेवाला, तपस्वी, एकलिंगजी की पूजा करनेवाला और लकुलीश के उक्त मदिर का बनानेवाला कहा है[37]।

जिसका चिन्ह (ऊर्ध्वलिंग) मूर्ति में बना रहता है [न (ल) कुलीश ऊर्ध्वमेढ् पद्मासनसुसस्थित। दक्षिणेमातुलिङ्ग च वामे दड प्रकीर्तित— विश्वकर्मावतार वास्तुशास्त्र]। इस समय इस प्राचीन सप्रदाय को माननेवाला कोई नही रहा, यहा तक कि बहुधा लोग उस सम्प्रदाय का नाम भी भूल गए है, परन्तु प्राचीन काल में उसके माननेवाले बहुत थे जिनमें मुख्य साधु (कनफटे, नाथ) होते थे। माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसग्रह' मे पाशुपत सप्रदाय का कुछ हाल मिलता है। उसका विशेष वृत्तात शिलालेखो तथा विष्णुपुराण, लिगपुराण आदि पुराणो मे मिलता है। उसके अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते थे जिसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई, एक दूसरी से भिन्न, कथाए मिलती है। उसका उत्पत्ति स्थान कायावरोहण (कायारोहण = कारवान्, बडौदा राज्य में) माना गया है। लकुलीश उक्त सम्प्रदाय का प्रवर्तक होना चाहिये। उसके मुख्य चार शिष्यो के नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिगपुराण, २८। १३१) मिलते है। एकलिगजी के पुजारी साधु कुशिक की शिष्य-परम्परा में थे क्योकि उक्त प्रशस्ति में उन्हीका नाम दिया है। इस सप्रदाय के साधु निहग होते थे, गृहस्थ नही और मूंडकर चेला बनाते थे। जाति-पाति का कोई भेद न था।

37 पाशुपतयोगभाजो यथार्थ-
ज्ञानाप्रदानवपुष कुशिकादयान्ये ।

१७वें श्लोक में स्याद्वाद (जैन) और सौगत (बौद्ध) आदि को विवाद में जीतनेवाले वेदाग मुनि का हाल है। १८वें श्लोक में उस (वेदाग मुनि के) कृपापात्र (शिष्य) आम्रकवि के द्वारा, जो आदित्यनाग का पुत्र था, उस प्रशस्ति की रचना होने का उल्लेख है। १९वें श्लोक में उस प्रशस्ति का राजा विक्रमादित्य के सवत् १०२८ में बनना सूचित किया है। २० वां श्लोक किसी की प्रसिद्धि के विषय में है जो अपूर्ण ही बचा है। आगे अनुमानत पौन पक्ति गद्य की है जिसमें कारापक (मदिर के बनवानेवाले) श्री सुपूजितराशि का प्रणाम करना लिखा है तथा श्रीमार्तंड, श्री भ्रातृपुर, श्री सद्योराशि, लैलुक, श्रीविनिश्चितराशि आदि के नाम है।

इस लेख में एकलिगजी के मदिर की पूजा करनेवाले जटाधारी लकुलीश पाशुपत सप्रदाय के साधुओ (नाथो) को रघुवश की कीर्ति को हिमगिरि से सेतु तक फैलानेवाला कहा है। अतएव यह निश्चय करने की

भस्मागरागतरुवल्कजटाकिरीट-
लक्ष्माण आविरभवन्मुनयः पुराणा ॥ [१३]
तेभ्यो . .
क्लेशसमुद्गतात्ममहस, योगिन ।
शापानुग्रहभूमयो हिमशिला व (ब)न्धोज्वलादागिरे-
रासेतो रघुवंशकीर्तिपिशुनाती (स्ती) व्र तप [॥१४॥]
. . श्रीमदेकलिङ्गसुरप्रभो. ।
पादाम्बु (म्बु) जमहापूजाकर्म्म कुर्व्वन्ति सयता. ॥ [१५॥]
अश्वग्रामगिरि (री) न्द्रमौलिविलसन्माणिक्यमुत्केतन
क्षुन्ना (ण्णा) म्भोदतडित्कडारशिखरश्रेणीसमुद्भासित [।]
. . . नरजनीचन्द्रायमाण मुहु-
स्तैरेतल्लकुलीशवेश्म हिमवच्छृङ्गोपम कारितम् ॥ [१६॥]

श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भडारकर ने यह प्रशस्ति छपवाई है (बम्बई एशि० सो० जर्नल, जि० २२, पृ० १६६–६७) और उसका साराश भी दिया गया है परन्तु उसके १४वें श्लोक के "हिमशिलाबन्धोज्वलादागिरेरासेतो रघुवश कीर्तिपिशुना" इस वाक्य खण्ड का अर्थ वे उलटा कर गए। वास्तविक अर्थ यही था कि 'वे (योगी) हिमालय से सेतु पर्यन्त रघु के वश की कीर्ति को फैलाते थे, परन्तु उन्होने उसका अर्थ यह किया कि 'उन योगियो की कीर्ति हिमालय से सेतु तक फैली हुई थी', (पृ० १५२) जो सर्वथा अशुद्ध है और उसमें मूल का 'रघुवश' पद तो रह ही गया।

जर्नल, एशियाटिक रिसर्चेज, भावनगर इन्स्क्रिपशन्स, भावनगर प्राचीन शोध सग्रह (प्रथम भाग विजयशकर गौरीशकर ओझा सम्पादित), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जनरल कनिंगहाम सम्पादित जिल्दें २३), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (डाक्टर बर्जेस सम्पादित जिल्दें ५), आर्किआलोजिकल सर्वे की रिपोर्टें (जिल्दें २–सन् १९०२–३ और १९०३–४ की), पाली, संस्कृत ऐंड ओल्ड कनडी इस्क्रिपशन्स (डा० बर्जेस और फ्लीट सम्पादित), ट्रासलेशस ऑफ इस्क्रिपशन्स फ्रॉम बेलगाव ऐंड कलाडगी डिस्ट्रिक्टस (डॉ० फ्लीट और हरिवामन लिमया सम्पादित), इस्क्रिपशन्स फ्रॉम दि केव टेम्पल्स ऑफ वेस्टर्न इडिया (डा० भगवानलाल इद्रजी और डा० बर्जेस सम्पादित) और आर्किआलोजिकल सर्वे की प्रोग्रेस रिपोर्टें आदि ।

(घ) प्राचीन सिक्के मुद्रा और शिल्प

(अ) प्राचीन सिक्के—भारतवर्ष में चलनेवाले सोने, चादी और तांबे के हजारो प्राचीन सिक्के मिल चुके है, और समय२ पर मिलते ही रहते है । ये सिक्के भी हमारे इतिहास में बडा काम देते है । ई० स० पूर्व की चौथी शताब्दी के पहले समस्त भारतवर्ष में चलनेवाले सिक्कों पर (जो चतुरस्र और गोल दोनो प्रकार के होते थे) राजाओ के नाम नहीं, किंतु सूर्य, चन्द्र, धनुष, पशु, पक्षी, वृक्ष, स्तूप, तारे आदि अनेक भिन्न-भिन्न चिह्नो के ठप्पे ही लगाए जाते थे । ऐसे प्राचीन सिक्के इतिहास में कुछ भी सहायक नहीं हो सकते । सिकन्दर की चढाई के पीछे और खासकर बाक्ट्रिया के यूनानियो का राज्य काबुल, पजाब आदि पर होने के समय से हमारे सिक्को में बहुत कुछ सुधार हुआ, और यूनानियो के सिक्को का अनुकरण किया जाकर उनपर राजाओ के नाम आदि अकित होने लगे । इस देश में सुन्दरता के साथ बने हुए सिक्के प्रथम बाकट्रिया के युनानी राजाओ ने चलाए, जिनकी एक तरफ प्राचीन यूनानी लिपि में यूनानी भाषा का लेख (जिसमें राजा का नाम तथा खिताब होता था) और दूसरी ओर खरोष्टी (गांधार) लिपि में (जो फारसी की नाईं उलटी पढी जाती है), बहुधा उसी आशय का (संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा का लेख[1] मिलता है । यूनानियो के पीछे शको ने भी इस

(1) इन सिक्को पर लेख दोनो तरफ बहुधा किनारो के पास है । बीच में एक तरफ राजा का चेहरा पूरी तस्वीर या और कोई चिह्न, एव दूसरी ओर किसी देवी-देवता या जानवर आदि की तस्वीर होती है ।

देश पर अपना आधिपत्य जमाया जिनके सिक्के[1] भी यूनानियों के सिक्के की शैली के बनते रहे। इसी तरह के कुशनवन्शियो के सिक्के भी बनें, परन्तु उनके पिछले सिक्को में दोनो तरफ ग्रीक लिपि के ही लेख हैं। पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्कों[2] पर एक तरफ प्राचीन देवनागरी लिपि के और दूसरी ओर यूनानी लिपि के लेख मिलते हैं, परन्तु चष्टन के बाद के राजाओ के समय यहाँ वालो को यूनानी भाषा का ज्ञान रहा हो, ऐसा अनुमान नहीं होता, क्योकि उन सिक्को पर के यूनानी लेखो से यही पाया जाता है कि उन पर 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' की तरह लोग यूनानी अक्षरो की नक़ल बना देते थे, जिनसे कुछ भी आशय नहीं निकलता। ई० स० की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्तो के प्रतापी राज्य का उदय हुआ, जिन्होने कुशनवन्शियो की शैली का अपने सिक्को में अनुकरण किया, परन्तु यूनानी लेख को मिटाकर दोनो ओर प्राचीन देवनागरी लिपि का लेख रक्खा, एवम् युनानी, ईरानी आदि देवी-देवताओ की तस्वीरो के स्थान पर हिन्दुओ के देवी-देवताओ की तस्वीरें (उस पर) बनवाईं। गुप्तो के समय से हिंदू शैली के सुन्दर सिक्के बनने लगे, परन्तु उन (गुप्तो) के बाद समय के साथ सिक्को की कारीगरी में फिर भद्दापन आने लगा। यह सब परिवर्तन बहुधा नर्मदा के उत्तर में चलनेवाले सिक्को में हुआ। दक्षिण के सिक्को पर विदेशियो के सिक्को का प्रभाव बहुत ही कम पडा। जिससे बहुत अरसे तक वहाँ पर प्राचीन शैली के अर्थात् बिना लेख के सिक्के ही चलते रहे। (सातवाहनवन्शी राजाओ के सिक्को में नवीन शैली का अनुकरण पाया जाता है) पीछे से वहाँ के सिक्को पर भी राजाओ के नाम आदि अंकित होने लगे, परन्तु उनमें सुन्दरता कम पाई जाती है।

अबतक यूनानी शक, क्षत्रप, कुशान, (तुर्क), आंध्र, मौखरी, मैत्रक, (वल्लभी के राजकर्ता), परिव्राजक (डाहलदेश के जोगिया राजा),

1 शको के सिक्के यूनानियो के सिक्को जैसे सुन्दर नही हैं। उनमें क्रम-क्रम से भद्दापन आता गया।

2 पश्चिमी क्षत्रपो के सिक्को पर एक तरफ राजा का सिर तथा संवत् का अंक, और दूसरी तरफ बीच में चैत्य का चिह्न तथा किनारे के निकट प्राचीन नागरी लिपि का लेख है। जिसमें राजा का तथा उसके पिता का नाम और उनके खिताबो का उल्लेख मिलता है। अतएव सिक्को के आधार पर क्षत्रपो का समय तथा राजक्रम निश्चित होता है।

हूण, चौहान, पड़िहार, परमार, सोलंकी, तवर, राठौड, पाल, कलचुरी (हैहय वन्शी), चन्देल, गुहिलोत, नाग, यादव, काकतीय आदि कई राजवन्शो के तथा काश्मीर, नेपाल, अफगानिस्तान पर राज्य करनेवाले राजवन्शो के सिक्के मिल चुके है। कितने एक प्राचीन सिक्के ऐसे भी मिले है, जिन पर राजा का नाम नहीं, किन्तु किसी जाति, देश या शहर का नाम मिलता है। जिन राजाओ के नाम प्राचीन पुस्तक, शिलालेख और ताम्रपत्रो में नहीं मिलते। उनमें से कई एक के नाम आदि का पता सिक्को से लग जाता है। डिमिट्रिअस आदि २५ से अधिक यूनानी राजाओ ने अफगानिस्तान, पजाब आदि देशो पर राज्य किया, जिनके नाम बहुधा उनके सिक्को से ही मालूम होते है। इसी तरह शक, क्षत्रप आदि राजवन्शो के कितने ही राजाओ के नाम केवल सिक्को से जाने जाते है।

प्राचीन सिक्के इतने बहुत और भिन्न-भिन्न प्रकार के मिले है, जिससे पाठको को उनका कुछ परिचय कराने के लिए भी एक पुस्तक लिखने की आवश्यक्ता रहती है, इसलिए इस छोटे से लेख में केवल उनकी उपयोगिता प्रगट करने के अतिरिक्त उनके विषय में कुछ भी लिखना अशक्य है। हमारे यहाँ के प्राचीन सिक्को का वृत्तान्त और उनके चित्र कितनी ही पुस्तको में छपे है, जिनमें मुख्य निम्नलिखित है:—

'आरिआना ऐंटिका' (एच० एच० विलसन सगृहीत), जेम्सप्रिसेप साहिब के 'एसेज ऑफ ऐंटिक्विटीज' (२ जिल्द, एडवर्ड थोमस संपादित), 'कैटेलाग आफ दी काइस आफ् दी इडिअन म्यूजिअम' जिल्द पहली (वी० ए० स्मिथ, सपादित), कैटेलाग आफ् दी काइन्स कलेक्टेड बाइ सी जे० राजर्स एड परचेज्ड बाइ दी गवर्नमेंट ऑफ दी पजाब हिस्सा तीसरा (सी जे. राजर्स संपादित), जनरल कनिगहाम के 'कॉइस ऑफ एन्श्यट इडिआ'-'काइन्स ऑफ मिडिएवल इडिआ'—काइन्स ऑफ दी इन्डो सीथिअन्स' और 'लेटर इडोसीथिअन्स,' सरवाल्टर इलिअट का 'काइन्स आफ सदर्न इडिआ,' 'कैटेलाग ऑफ इडिअन काइन्स इन दी ब्रिटिश म्यूजिअम, ग्रीक एड सीदिक किग्ज ऑफ बाक्ट्रिआ एड इडिआ' (पर्सीगार्डनर सगृहीत और आर० स्टुअर्टपुल सपादित), 'न्युमिस्मैटिक क्रानिकल,' 'इटरनैशनल न्युमिस्माटा ओरिऐंटेलिआ,' जनरल कनिगहाम की आर्किआलोजिकल सर्वे रिपोर्ट "इडिअन् एटिक्वेरी," रायल, बगाल और बम्बई की एशिआटिक सोसाइटियो के जर्नल आदि।

(आ) प्राचीन मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा अर्थात् मुहर लगाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। ताम्रपत्रो पर और कितने ही ताम्रपत्रो की